दृष्टान्त सरित-सागर

(जीवन के उच्च आदर्शों की प्रतिनिधि प्रेरक प्राचीन कथाएँ)

●

लेखक :

डा० रामचरण महेन्द्र

एम. ए. पी. एच डी.

रचयिता :—देवता कैसे बने ? घर को स्वर्ग कैसे बनाऐं ? चिताऐ कैसे दूर हो ? शक्ति सम्राट कैसे बने ? धनवान कैसे बने ? सुन्दरकैसे बने ? व टेलीपैथी और स्वास्थ्य आदि ।

सम्पादक :

डॉ० चमनलाल गौतम

पूर्व सम्पादक "जीवन" यज्ञ "युग-सस्कृति"

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम
सस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेदनगर)
बरेली २४३००१ (उ० प्र०)

*

लेखक :
डॉ० रामचरण महेन्द्र

सम्पादक :
डॉ० चमनलाल गौतम

*

*

द्वितीय संशोधित संस्करण
१६७६

*

जगदीशप्रसाद मिश्र
देवभाषा प्रिन्टिंग प्रेस,
जैन चौरासी बाईपास रोड
मथुरा. २८१००४

*

मूल्य :
नौ रुपये मात्र।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक की प्रेरक कथाओं में यह तथ्य, स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य में ईश्वरतत्व है। उसका यह दिव्य अंश अनेक स्थलों पर प्रकट होता और सत्य, त्याग, प्रेम, कर्त्तव्य, सेवा, दया के लोकोपकारी पवित्र कार्य कराता रहता है। सद्गुणों का व्यवहार ही मनुष्य में देवत्व का परिचायक है। मानव जीवन का मुख्य आदर्श अपना सुधार करना, नैतिक विकास की ओर अग्रसर होना है। नैतिक रूप का विकास करने से ही हम स्थायी सुख-सफलता प्राप्त कर सकते है। इस उद्देश्य की ओर हमें निरन्तर बढना चाहिए। यदि हम अपने मन और कार्यों में अच्छाई ला रहे है तो कहा जा सकता है कि हमारे अग्रसर होने की दिशा ठीक चल रही है। इन कहानियों के दर्पण में आप देखेंगे कि मनुष्य में कैसे देवत्व का उदय होता आया है और भविष्य में भी होने जा रहा है। हम सबको सदाचार पूर्ण कार्यों में भरपूर सहयोग देते रहना अनिवार्य है। हमें अपने राक्षसत्व हिसा, अहंकार, क्रोध, माया, मोह, लालच, पतिशोध, पापाचार और अधर्म का परित्याग करते रहना चाहिए। सद्-कार्य एक जीवित पुस्तक है जिसे हर कोई पढ़ समझ और पालन कर सकता है। पवित्र काम ससार में व्याप्त सर्वोच्च शक्ति है जिसके अनुकरण कर अन्य भी सदाचार का ओर बढ़ते है। उत्तम कार्य करने की प्रेरणा लकर हम समाज की सबसे बड़ी सेवा कर सकते है।

इन कहानियो में बड़े उपयोगी अनुभवों का समावेश किया गया है। इनमे स्पष्ट किये हुये विचार विचारको, महात्माओं, साधकों और मनोवैज्ञानिकों के अनुभव की बातें है। अतएव हमे विश्वास है कि सफलता और सिद्धि के अभिलासियों के लिए ये मान्ताएँ भारतीय आदर्शो के अनुकूल मार्ग दर्शन के साथ ही आगे बढने की प्रेरणा देगी।

वास्तव मे सदाचार और सत्य प्रेरणा देने वाली कहानियां हिन्दी कथा साहित्य मे वहुत कम है। यो तो मे प्राचीन शैली को की नैतिक धर्म-कथाएँ हिन्दू धर्म ग्रन्थो मे यत्र तत्र जुडी हुई मिलती है, किन्तु व्यवहारिक आदर्श से अनुप्राणित आधुनिक कथा शिल्प सहित नवीनतम प्रयास इस सग्रह-मे मिलेगा।

ये आदर्शवादी कहानिया हिन्दू धर्म, भारतीय सस्कृति और अपने देश की प्राचीन प्रशस्त परम्परा को स्पष्ट करती है। इनमे पुराने उच्च चरित्रो को उभारा गया है और उनके माध्यम से भारतीय विचारधारा, जीवन पद्धति, और देश के उत्कृष्ट आदर्शो का सजीव प्रतिपादन गया है। इनमे आधुनिक मनोविज्ञान का सहारा लिया गया है और आधुनिक शैली को अपनाया गया है। इनमें प्रतिपादित विचार और भावनाएँ लेखक की निजी और मौलिक है। ये देश की नई पीढीं के नव निर्माण मे सहायक है।

इन कहानियो के माध्यम से धर्म को नवीन बदले हुए आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत किया गया है। यह दिखाया गया है कि धर्म सकुचित तप साधना, वैराग्य या भक्ति मात्र ही नही है, प्रत्युत सामाजिक, सार्वजनिक, राजनैतिक और दैनिक पारिवारिक क्षेत्रों मे धर्म एक व्यवहारिक उपयोगी जीवन विद्या है। हमारी प्राचीन धार्मिक कथाएँ वर्तमान सन्दर्भ मे हमे जीवन को सही ढंग से और सुख शान्ति और समृद्धि से जीने की कला सिखाती है। इन्हे पढकर हमारी आस्तिकता और सदाचार के प्रति आस्था बढ़ती है। इन कहानियो में वे सभो धर्मतत्व स्पष्ट किये गये है जिनसे लोक जीवन परम्परा प्रगति और भारतीय करण की रक्षा हो सके।

—रामचरण महेन्द्र
प्रिंसिपल विडला कालिज, भिवानी मन्डी
(राजस्थान)

विषय सूची

क्रमाक		क्रम संख्या
१.	एक लाख रुपये के मूल्य का कीमती श्लोक	९
२.	पुस्तकों का मूल्य हीरे जवाहरात से अधिक है।	३०
३.	सादगी सदाचार और सद्गुण ही सत्पुरुषो के आभूषण है।	३७
४	धर्म भावना की दृढता पर ही सफलता की नीव निमित होती है।	४९
५.	मानवता की रक्षा के लिये साहस पूर्ण बलिदान	६३
६.	सिसकती लाशों में महकती मानवता की सुगन्ध	६६
७	पीडित मानवता की सेवा ही भगवान की सच्ची पूजा है।	७७
८.	पीडितों और दुखियों के लिये सर्वस्व दान	८२
९.	भगवान की परम आराधना का रहस्य	९०
१०.	पूजा से कर्तव्य का स्थान ऊँचा है	९७
११.	महानता का मूल्यांकन व्यक्ति के गुण कर्म, स्वभाव से होता है न कि वर्ण से	१०२
१२.	ब्राह्मणत्व जन्म मे नहीं स्वाध्याय से प्राप्त होता है	११०
१३.	उदारता ही से माहनता का परिचय मिलता है	११७
१४.	गीता के सच्चे पाठ से प्रागों का भय नष्ट हो जाता है	१२१
१५.	शक्ति के सदुपयोग से ही वह स्थिर रह पाती है	१२७

१६. तप से सत्सग और सहयोग का मूल्य अधिक है	१४१
१७. दान से एश्वर्य में कमी नही आती	१४७
१८. देवता मे दमन, मानव में दान और दानव मे दया के गुण विकसित होने ही चाहिये	१५४
१९. राष्ट्रीय संकट मे स्वार्थ के लिये हमे तैयार होना है	१६०
२०. स्वार्थ से जीवन का उद्देश्य अधूरा रहेगा	१६४
२१ दान परोपकार और कर्तव्य की परम्परा अभी समाप्त नही हुई है	१६७
२२ सबसे बडा देवता कौन ?	१७८
२३ ऐसी गुरू दक्षिणा जिसने देश का नव निर्माण किया	१८२
२४ हर व्यक्ति अपने विचारों के अनुरूप ससार को देखता है	१८५
२५ चरित्र की ऊँचाई	१९१
२६ जब कामासक्त युवती से राजा ने मातृत्व के सम्बन्ध जोडे	१९९
२७ दुर्गुणो को स्वीकार करना पाप निवृत्ति का उत्तम पायश्चित है	२०८
२८. मृत्यु का स्मरण पाप मुक्ति सहज उपाय है	२२२
२९. मृत्यु के सहायक काल दूत	२२७
३०. शत्रु के सद्गुणों की प्रशंसा करना शिष्टता का उच्च सोपान है	२३४
३१. वचन का पालन भारतीय शिष्ठता का अंग है	२३९
३२. जैसा खाये अन्न वैसा बने मन	२५१
३३. ममता-मोह के बन्धन का बढ़ता हुआ विचित्र प्रवाह	२५७

३४ संगति ही गुण ऊपजै, संगति ही गुज जाय
३५. धर्म प्रचारक को अपमान और विरोध से
क्षोभ कैसा २७६
३६ सुखी दाम्पत्य जीवन के अमूल्य सूत्र २८५
३७. गृहस्थ की कर्तव्य भावना योग साधना जैसी
ही सिद्धि दायक है
३८ गृहस्थ मे भगवद्-भक्ति और लोक-सेवा दोनो
ही सम्भव है ३०२
३९. पत्नी के लिये पति जीवन की अमूल्य धरोहर है ३१२
४०. जब रवीन्द्र नाथ के मानसिक सन्तुलन ने हत्यारे
के भाव बदले ३२०
४१. गुरू नानक के विचित्र आशीर्वादो का रहस्य ३२८
४२. जेल में नेहरू जी का वजन क्यो बढा ३२८
४३ जब निराश बुद्ध के मन मे आशा की ज्योति जली ३३१
४४. जहा क्रोध वहाँ शक्ति नही ३३४
४५. क्रोध पर विजय प्राप्त किये बिना आत्म विकास
सम्भव नहीं ३४०
४६ कामुक जीवन का भयकर अन्त ३४६
४७. कामुकता से आत्मबल का नाश होता है ३५९
४८ हीरो से चक्की का मूल्य अधिक है ३६९
४९ श्रम और सघर्ष से ही जीवन का निखार होता है ३७७
५० महर्षि मतङ्ग का सामूहिक श्रमदान ३८३
५१ अपने पुरुषार्थ और आत्मबल से ही विपत्ति की
निवृत्ति होती है ३९२
५२. खेत की टूटी मेढ पर लेटने वाला आदर्श शिष्य ३९५
५३. एक लाख नर मुण्डो का पहाड़ बनाने वाले राजा

का मूल्य चार कौडी भी नही ३९९
५४ भारत की सामाग्री को जब स्वय भोजन बनाना पड़ता था ४१०
५५. जब महर्षि गहने बनवाने निकले ४१७
५६ नकली साधु का अभिनय करते करते एक बहरूपिया सच्चा वैरागी बना ४३३
५७ जब स्वर्ग का एक मुकदमा धरती की अदालत में तय हुआ ४४५
५८. प्राण रक्षा के लिए भगवान के विचित्र हाथ ४६१
५९ जिसको राखे साईंयाँ, मार सके न कोय ४६६
६०. ईश्वर की सुनियोजित विचित्र व्यवस्था ४८०
६१. ज ब लक्ष्मी के वरदान से घोर सकट उत्पन्न हुआ ४९०
६२ जब धन को ठोकर मारी जा रही थी ४९६

— — —

दृष्टान्त सरित-सागर

एक लाख रुपये के मूल्य का कीमती श्लोक

प्रथम झाँकी

मानसिक अपराध का प्रायश्चित्त

(कथासूत्र—"किरातार्जुनीय" महाकाव्य के रचयिता महाकवि भारवि का संस्कृत-साहित्य मे बडा गौरव है। महाकवि भारवि शिक्षा समाप्त कर घर पर पठन पाठन, विद्याध्ययन और काव्य-सृजन मे रहने लगे। कविवर भारवि बड़े ही प्रतिभाशाली, कुशाग्रबुद्धि और प्रत्युत्पन्न-मति थे। भारत मे सातवी शताब्दी मे उनकी विद्वत्ता की कीर्ति से चारो दिशाए निनादित हो उठी।

पर हाय ! चन्द्रमा मे दिखायी देने वाली कालिमा की भाँति उनके मन को पीड़ा देने वाली एक बड़ी कष्टदायक बात थी। सभी लोग उनके काव्य की भूरि-भूरि प्रशसा करते थे। जनता का विश्वास करता था कि वे एक असाधारण प्रतिभा के युवक है। चारो ओर से अपनी कीर्ति सुन-सुनकर कविवर भारवि का मन आनन्द का अनुभव करता था, पर भारवि के पिता उनकी विद्या और प्रतिभा की कभी प्रशसा नहीं करते थे। पिता की ये कटु उक्तियाँ सुनकर युवक भारवि को मन में बडी व्यथा होती थी। कभी-कभी तो वे इतने क्षुब्ध हो उठते थे कि उनका मन पिता से बदला लेने की हिंसक भावना से तिलमिला उठता था।)

अपने घर की छत पर टहलते हुये भारवि दिखायी देते है।

भारवि—(दीर्घ नि.श्वास लेकर) अहह ! पूर्णमासी की यह मधुर रात्रि कितनी सुहावनी है ! चन्द्रोदय की किरणो की स्निग्धता से इस समय चकवा और चकोर कितने आनन्दित होगे। कुमुदिनी के फूल खिलकर वायु को सुगन्धित कर रहे होगे ! चारो ओर रजत-चन्द्रिका श्वेत कीर्ति की तरह बिखरी हुई है। और मलय-मारुत की तरह आज भारत मे मेरे काव्य की प्रशसा भी तो ऐसी ही फैली हुई है। अपनी कीर्ति कितनी सुखद लगती है, श्रेष्ठ विद्वान् पुत्र, पतिव्रता पत्नी, उपयोगी विद्या, नीरोग शरीर धन और अच्छे मित्र की तरह सुखद ! ठीक इस चन्द्रमा से निकलने वाली श्वेत ज्योत्स्ना की तरह ! जिस किसी ने मेरे मधुर काव्य का रसास्वादन एक बार किया है, उसकी जिह्वा प्रशसा के बिना चुप नही रह सकी है। आजकल युवक एकान्त मे बैठकर घण्टो दिमाग लड़ा कर कलेजा घुला-घुलाकर, नवीन, प्राचीन भाव जो भी मनमे आया, पद्य के टूटे-फूटे साँचे मे डाल कर प्रसिद्धि चाहते है । कोई करे तो इतनी काव्य-साधना ! रसिक समाज मेरे काव्य मे अवगाहन कर कमल की तरह खिल उठता है। मेरी विद्वत्ता और काव्य की प्रतिभा का कीर्ति चारो ओर वायु की तरह फैली हुई। पर हाय ! क्या कहू ! उच्चारण करते लज्जा आती है। स्वय मेरे पिताजी ही कभी मेरी प्रशसा नही करते। दुनियाँ मेरी भरपूर तारीफ करे, किन्तु मेरे पिताजी निन्दा करते रहे, यह मुझसे सहन नही होता। लोग मेरा काव्य सुधा-रसपान कर मुग्ध हो उठते है—प्रशसा के पुल बाँध देते है। एक से एक बढकर विशेषणो का प्रयोग करते है—अपनी साहित्य-सम्बन्धी विमल कीर्ति सुनकर मन आनन्दित हो उठता है और वास्तव में मैने अपनी योग्यता, विद्या-बुद्धि बढ़ाने

मे बडा श्रम किया है। दिन-दिन और रात-रात बैठकर काव्य-साधना की है, तभी ऐसी सिद्धि भी मिली है—मेरे श्रम का पुरस्कार है यह !

लेकिन क्या करू ? इस पृथ्वी पर सभी मेरा यशोगान करते है, केवल मेरे पिताजी ही निन्दा करते है। हाय ! हाय !! मेरा कैसा दुर्भाग्य है ? (हाथ मलते हुये। निष्ठुर पिताजी के कारण आज मेरी साहित्यिक कीर्ति को बडा धक्का पहुँच रहा है। क्या करू ? कुछ समझ नही आता !

ठीक है ! अब मैंने निश्चय कर लिया है कि निन्दा जैसे काटो को अब अधिक फलने न दूगा—पिताजी की हत्या कर दूँगा। (तलवार निकालता है) यह मेरी कीर्ति का मार्ग साफ कर देगी, और कोई मार्ग नही है। मजबूर हू।

(इतने मे किसी के छत पर आने की आवाज, सीढियो पर चढने की पग ध्वनि सुन पडती है। वे सावधान हो जाते है।)

अरे, यह पद्ध्वनि कैसी ! मेरे पिताजी और माता जी यहां छत पर ही चढे आ रहे है। दीवार के पीछे छिप जाऊं, सुनूं ये क्या कहते है !

(दीवार के पीछे छिपते हैं। भारवि के माता पिता का प्रवेश)

माता—(आह्लादित स्वर मे) अहह ! पूर्णमासी का यह चन्द्रमा आज कितना प्यारा प्यारा दिखायी दे रहा है—चारों ओर धरती पर चाँदी ही चादी बिखरी पडी है ! देखिये, इसके श्वेत प्रकाश से सब दिशाएं कैसी उज्ज्वल हो उठी है। बड़ा मनोरम समय है। चन्द्रमा की यह कीर्ति-द्युति कैसी फैली है ?

पिता—इसकी कीर्ति-द्युति ऐसे ही फैल रही है, जैसे आज काव्य-जगत् मे मेरे प्यारे पुत्र कवि शिरोमणि भारवि की कीर्ति द्युति फैल रही है !

माता—(आश्चर्य भरे स्वर में) आप तो सदा अपने पुत्र भारवि की निन्दा किया करते हे, आज यह क्या कह रहे है ? उसकी कीर्ति-ज्योति इस चन्मा के प्रकाश की तरह चारों ओर फैली हुई है, क्या यह वास्तव में सत्य कह रहे है ?

पिता—और नहीं तो क्या ? भारवि जैसे प्रतिभाशाली पुत्र पर मुझे गर्व है। उसकी विद्वता सत्य ही गहन है। लोग ठीक ही तो उसकी प्रशंसा करते है।

माता–किन्तु आप तो सदैव उसकी निन्दा ही किया करते है। कटु शब्दो का प्रयोग कर देते है—ये कठोर शब्द सुनकर आपका पुत्र मन मे क्या सोचता होगा ?

पिता -अरे, यह सब तो दिखावटी निन्दा है। (नजर न लगे, इसलिये माता-पिता माथे पर काजल का काला टीका लगा दिया करते है।) वास्तविकता यह है कि मै उसकी मन ही मन वडी प्रशसा किया करता हू।, वह वडा कुशाग्रबुद्धि और प्रत्युत्पन्न मति है। ऐसे सुपुत्र अनेक जन्मो के पुण्यस्वरूप प्राप्त होते है। मुझे उस पर गर्व है।

माता–फिर आप उसकी बुराई क्यो करते है ? कभी आप भी प्यार और प्रशंसा के दो शब्द उसके लिये कहा करें।

पिता–मीठा खाते-खाते मीठे मे मिठास कहाँ रहता है ?

माता–आपका क्या मतलव है ? स्पष्ट कीजिये।

पिता–निन्दा इसलिए करता हू, जिससे उसको अपनी काव्य प्रतिभा पर अभिमान न हो जाय। जानती हो ? अपनी कीर्ति सुनते-सुनते उसे घमण्ड हो जायगा, तो वह अपनी उन्नति करनी छोड देगा, फिर उसकी प्रतिभा नष्ट हो जायगी। मनुष्य की कीर्ति की रक्षा उसकी विनम्रता ही करती है। अहङ्कार अवनति का प्रवेश द्वार है–समझी ?

माता–मैं भी अभी तक पिता द्वार की जाने वाली निन्दा का गुप्त रहस्य नही जान पा रही थी।

पिता—नहीं तो, कौन ऐसा पिता है, जो अपने पुत्र की कीर्ति सुनकर आनन्दित न हो ? मेरा प्यारा पुत्र भारवि तो मुझे प्राणो से अधिक प्रिय है।

माता–ओफ् ! तो आज यह रहस्य स्पष्ट हुआ ! आपको वह प्राणो से प्यारा है !

(इतने मे खटपट की ध्वनि से भारवि उनके सामने आते है। तलवार सामने पटक कर चरणो मे गिर पढते हैं। माता-पिता भौचक्के रह जाते हैं कि यह क्या हुआ !)

भारवि–क्षमा, पिताजी क्षमा करें। अपनी निन्दा से क्रुद्ध होकर आपकी हत्या करने का इरादा लेकर मै आज यहां आया था। मैं कैसा मूर्ख था, कैसा पापी। मैने सोचा कि मेरे पिता ही मेरी निन्दा करते है। इससे मेरी कीर्ति को वडा धक्का पहुँचता है–पिता की हत्या कर देने से निन्दक का अन्त हो जायेगा। अभिमान से मेरा विवेक नष्ट हो गया था। पिता की हत्या का महा पाप मुझसे होगया है। मैं वडा पापो हूं। क्षमा, क्षमा, मुझे क्षमा करे !

पिता–(स्नेह से) किन्तु हत्या की कहाँ है ?

भारवि–मुझसे वड़ा भारी मानसिक अपराध तो हो गया है। हाय ! वड़ी आत्मग्लानि हो रही है। हाय ! मैं कैसा पापी हूं ? इस पाप का प्रायश्चित करूंगा। मेरे मानसिक अपराध का क्या दण्ड है ? मुझे सजा दे।

पिता—(परिहास मे) मूर्ख, हठ छोड़ ! जो हो गया, सो हो गया ! तुझे अपनी गलती मालूम हो गयी, वस, यही वहुत है– दुःखी मत हो मेरे पुत्र !

भारवि–जब तक मै प्रायश्चित न करूंगा तब तक मन को शान्ति न मिलेगी। मुझे प्रायश्चित करने दीजिये। पाप प्रायश्चित्त से ही धोया जा सकता है पिताजी!

पिता—बेटा! व्यर्थ ही आग्रह न कर। जो अनजान मे हो गया, उसे मत दुहराना, बस।

भारवि—पाप का प्रायश्चित्त करने से ही मन और आत्मा हलके हो जायेंगे, मै तो प्रायश्चित्त करूंगा। प्रायश्चित्त बताइये ...।

पिता—(हसकर) इसका तो एक ही प्रायश्चित्त है। बस एक—(हसते रहते हैं)।

भारवि—आप जो कहेगे, वही प्रायश्चित्त करूंगा। आत्मा हलकी हो जायगी।

पिता—(परिहास भरे स्वर मे) बारह वर्ष तक ससुराल में जाकर रह!

भारवि ठीक है, पिताजी! प्रायश्चित्त के दण्ड स्वरूप मैं इसी सजा को स्वीकार करता हूं। बारह वर्ष ससुराल मे उपेक्षा तिरस्कार और लज्जा सहूंगा।

पिता—भारवि। मै तो यह सब हसी मजाक मे ही कह रहा था।

भारवि—चाहे आपने हसी की हो, मैं तो अवश्य ही यह दण्ड सहन करूंगा।

पिता—सब बाते मैने हसी मे कही थी। पहले तो मैं तुझको क्षमा करता हू। इससे भी तेरे मन की ग्लानि न जाय, तो यहा घर पर ही कोई प्रायश्चित्त कर डाल।

भारवि—नही पिताजी! मेरे मन की ग्लानि तो बारह वर्ष

तक ससुराल रहकर ही जायगी। अब आप आज्ञा दीजिये, यहीं लज्जा सहूंगा।

पिता—भारवि! तू मेरा इकलौता पुत्र है। बड़ी मुसीबतों से तुझे पाल पोसकर आज इस योग्य बनाया है। तेरी माँ तो तेरे बिना एक पल भी जीवित नही रह सकतीं। तेरे वियोग से हमें कितना क्षोभ, होगा, इसका तनिक अनुमान तो कर बेटा! हठ छोड़ दे।

भारवि—नही पिता जी! मैं ससुराल चला। प्रायस्चित्त करना ही है मुझे तभी मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी। (जाता है)।

पिता—लो, लड़का जल्दबाजी में भाग गया। यीह नह, जानता कि जल्दबाजो गलतियों की जननी है। यह दुष्प्रवृत्ति शक्ति और आतम विश्वास को भङ्ग कर देती है। हाय। अब क्या करूं!

दूसरी झाँकी

भारवि ससुराल में

(ससुराल में रहना लज्जा का जीवन है। पहले कुछ दिन तक तो ससुराल मे भारवि का बडा स्वागत सत्कार हुआ। स्वादिष्ट भोजन, मित्रो के समागम का सुख उनको दिया गया, भोजन के अवसर पर स्त्रियाँ मङ्गलगान करतीं। सभी उन्हे प्यार दिखाते। पर जब ससुराल वालो ने यह सुना कि भारवि बारह वर्षों तक यहीं रहते आये है, तब उनका उत्साह ठण्डा पड़ गया।)

भारवि—(खेत जोतते हुये) पिताजी ने ठीक ही सजा दी है। ससुराल में रहकर मुझे जो लज्जा और तिरस्कार मिल रहा है,वही प्रायश्चित्तका रूप है। इस अग्नि में तपकर ही मेरीआत्मा

पवित्र होगी । चार-छ दिन में ही मेरे हाथों में खेती के लिये हल और बैलो की रस्सी पकडा दी गयी है। कहाँ मैं साहित्य-चर्चा किया करता था। आज कहाँ मैं सारा दिन खेत जोतने, घास खोदने, पशुओ की रखवाली करने और उन्हें चारा-दाना देने में नष्ट किया करता हू । किसानों जैसी सूखी जिन्दगी है । हाय ! कैसी लज्जा का विषय है, ये मुझे अपने घर वालों जैसा साधारण आदमी मानने लगे है। दामाद के प्रति जो सम्मान होता है, वह सब समाप्त हो चुका है । ये लोग मेरा अपमान तक कर बैठते है । क्या करू ? ससुराल में कितनी अप्रतिष्ठा होती है, यह सब सहन कर रहा हू । पर प्रायश्चित्त जो ठहरा । ये कडवे घूंट तो पीने ही पडेंगे। बारह लम्बे वर्षो तक लज्जा ही लज्जा–अपमान ही अपमान । हे परमेश्वर ! पिता की हिंसा के पाप का यह प्रायश्चित ! बस, जिन्दा मौत ही तो है। पत्नी आ रही है, इसके सामने कुछ न कहना चाहिए। यदि इसके परिवार वाले मेरा अपमान करते है तो इसमे इस बेचारी का क्या दोष ?

(पत्नी आती है)

भारवि की पत्नी—(दुःख भरे स्वर में) पतिदेव ! मैं आपके चेहरे से ही जान गयी हू कि मेरे परिवार वाले आपको परेशान करते है । अपमान तक कर बैठते है । व्यग्यबाण जैसे दुर्वचन तक कह बैठते है । हाय ! ये शब्द आपको कैसे बुरे लगते होगे ! मेरी एक सलाह है । आज्ञा दे तो एक सुझाव उपस्थित करू ?

भारवि—(जैसे अन्धकार मे एक प्रकाश किरण मिली हो) तुम सदा ही मेरी सहायता करती रही हो । जब तक पुरुष पर आपत्ति नही आती, तब तक उसे अपनी पत्नी के गुणो का पता नही चलता । विपदा आने पर उसे अनुभव होता है कि

एक लाख रुपये के मूल्य का कीमती श्लोक

उसकी स्त्री सच्ची सगिनी और देवी है। बोलो, क्या करूँ मैं इस विपत्ति में ?

पत्नी—मैं अपने पिताजी से एक प्रार्थना करना चाहती हूं कि हम दोनो को अलग से कुछ खेत दे दिये जाय। हम अलग अपना घर बनाकर गुजर करे गे।

भारवि-(हर्ष से) अच्छा सुझाव है। समुद्र के अन्दर का खजाना इतना महगा नही जितना कि वह आनन्द जो पतिव्रता धर्म पत्नी से पति को मिलता है। (अलग रहना ही ठीक रहेगा।)

पत्नी-रोज रोज की किच-किच से तो यह अच्छा है कि हम अलग रहें, चाहे गरीवी में ही रहना पड़े।

भारवि—ससार वाटिका मे स्त्री सबसे उत्तम फूल है, उसका लालित्य, उसकी सुगन्ध और मनोहारिता विचित्र है। स्त्री की आंखो में ईश्वर ने दो दीपक जला दिये है, जो अपने प्रकाश से मुझ जैसे भूले भटके पुरुषो को स्वर्ग की राह दिखाते है। अलग झोपडी में ही रहेगे।

पत्नी—बस, अब आपकी आज्ञा मिल गई-यहाँ का अपमान नही सहेगे।

भारवि—पृथ्वी पर स्त्री के सच्चे और दृढ प्रेम से बढकर और कोई सुखदायी वस्तु नही है। मधुर भाषिणी और पवित्र स्त्री से ईश्वर भी सदैव प्रसन्न रहते है। तुम मेरे साथ हो तो खेतों पर किसान का काम करते हुए ही सुख है।

तीसरी झाँकी

(भा वि परदेश गए)

(भारवि खेती करने लगे। पर काव्य लिखने वाले कवि से भला क्या खेती होती। सारे खेत चौपट हो गये। सारी उपज चिड़ियाँ और जानवर खा गये। भूखो मरने लगे—फिर नया कष्ट)

पत्नी—(दु ख से) सस्कृत के कवि से क्या खेती होती। आप सारे दिन श्लोक बनाते है, खेतो मे मन नही लगता। व्याकरण की शुद्धिया करते रहते है। क्या खायेंगे अब ?

भारवि मजाक न करो। कोई रास्ता सुझाओ, पेट कैसे भरे ? कोई नया काम करे।

पत्नी—खेती का कठोर धन्धा छोड दीजिये। परदेश जाकर काव्य-रचना द्वारा ही कुछ कमाकर लाइये। परदेश में आपको काव्य-पारखी मिलेंगे। वे काव्य की कद्र कर धन देंगे। उसी से घर की गुजर बसर चल सकती है। यहाँ कविता कोई नहीं समझता है।

भारवि—हाँ, तुम्हारा विचार तो ठीक है। ये काव्य की परख नही जानते। खेती का काम अनुकूल नहीं पड रहा है। मुझे परदेश जाकर कुछ धन कमाकर लाना चाहिये।

पत्नी—किन्तु आपके जाने के बाद मैं अपना पालन-पोषण कैसे करूँगी ? हमारे पास खाने पीने तक के लिये कुछ नही है। आर्थिक सकट आ जायगा। किस के आगे हाथ फैलाऊगी ? परदेश जाने से पूर्व मेरे खर्च का प्रबन्ध तो करते जाइये।

भारवि—कवि के पास पैसा कहाँ ! लक्ष्मी और सरस्वती दोनो का परस्पर बैर है। समाज लेखक का सम्मान करता है, पर उसकी भूख को नही बुझाता।

पत्नी—ऐसी निराशावादी बाते कवि को शोभा नही देती। कला का चाहे आर्थिक मूल्य न हो, वह रसिको को ब्रह्मानन्द-जैसा कल्याणकारी सुख देती है। लोगो को आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाती है। पवित्र लोगो मे नयी आशा और नये साहस का सचार करती है। आपके जीवन का जो सत्य, शिव और

सुन्दर रूप है, जनता के लिए जो हर प्रकार कल्याणकारी है, वह आपके काव्य में मुखारित हो रहा है।

भारवि—ओफ ! तो तुम्हे मेरा काव्य पसन्द है ? उसमे पूर्ण विश्वास है ?

पत्नी—हां, और नही तो क्या ? एक दिन काव्य जगत् के सम्राट आप ही बनने वाले हैं।

भारवि—फिर यह अर्थ सकट क्यो कर टले ?

पत्नी—एक काम कीजिए।

भारवि—परमेश्वर ने स्त्री को पुरुप की अपेक्षा अधिक बुद्धि दी है। तुम सदैव मेरे सकट को दूर करती रही हो। तुम-जैसी धर्मपत्नी पाकर ही मै इस खेत पर भी दाम्पत्य-जीवन का सुख लूटता रहा हूं। आज मुझे अनुभव हुआ कि पत्नी हर स्थिति में सहायता और सहयोग करने वाली जीवन-सहचरी होती है। देवताओं में सभी गृहस्थ हैं। ब्रह्मा की पत्नी सावित्री, विष्णु की लक्ष्मी, शकर की पार्वती, इन्द्र की शची, वृहस्पति की अरुन्धती जैसी ही साध्वी और कुशाग्र हो तुम। इस गुत्थी को भी सुलझाओ।

पत्नी—आप एक श्लोक लिखकर मुझे दे जायें। जब मुझ पर कोई बड़ा अर्थ संकट आयेगा तो वह श्लोक बेचकर काम चलाऊंगी। आप जल्दी ही परदेश से लौट आइयेगा। शायद कोई काव्य का पारखी मिल जाय।

भारवि—(आश्चर्यमिश्रित हर्ष से) अहह। खूब युक्ति सुझायी। मैं अभी एक उत्तम बहुमूल्य स्लोक तैयार करता हूं। पूरा दिन उसमें लगाऊंगा। उसका मूल्य एक लाख रुपया होगा। वह बेचकर तुम काफी दिनों तक घर का खर्च चला सकोगी। मैं अभी से इस महत्वपूर्ण कार्य में संलग्न हो जाता हूं।

(श्लोक को सोचने मे तन्मय हो जाते है। पूरा दिन सोच-विचार के उपरान्त वे एक ऐसा बहुमूल्य श्लोक तैयार करते है, को एक लाख मे विक सकता है। उस श्लोक को धर्म पत्नी को देकर भारवि पैसा कमाने परदेश चले जाते हैं।)

चौथी झांकी

राजा का नया बाजार

(कविवर भारवि के चले जाने के बाद, उसकी धर्म पत्नी ने घर का बचा खुचा अन्न खाकर काफी दिन तक काम चलाया, पर वह आखिर कब तक चलता। एक दिन सब कुछ समाप्त हो गया। घर मे अन्न का एक दाना न रहा। बेचारी भूखो मरने लगी। वहाँ के राजा ने एक नया बाजार लगाना आरम्भ किया था। हर सप्ताह यह बाजार लगता और विक्रेताओ को उत्साहित करने के लिये सायकाल तक न विकने वाली हर बची हुई चीज को राजा स्वय खरीद किया करता था। एक दिन भारवि की पत्नी भी अपना श्लोक वेचने के लिये बाजार मे जा बैठी।)

भारवि की पत्नी—बाजार मे भाँति-भाँति की चीजे विक रही है। लोग खरीदने और बेचने से व्यस्त है। हर तरह की वस्तु का कोई खरीदार है, पर हाय ? मैं कितनी देर से ग्राहक की वाट देख रही हू, मेरे कीमती श्लोक का कोई खरीददार नही है। क्या करूँ ? कोई काव्य का पारखी नहीं मिल रहा है ? यहां कोई श्लोक का महत्व समझने वाला एक भी तो नही आ रहा है। प्रतीक्षा करते-करते शाम होने आयी; सभी से अपना-अपना माल बेचकर पैसे कमा लिये, पर मेरे श्लोक के एक लाख क्या एक हजार भी देने वाला कोई काव्य-पारखी नही आया है;! क्या कोई उच्च साहित्य की कद्र करने वाला इस प्रदेश में नही है ? बाजार उठ रहा है, शाम हो रहा है, मै

भूखी बैठी हू, क्या करू ? अब तो मै इस श्लोक को एक हजार ही में बेच डालूंगी ! कोई ले तो इसे !

राजा के नौकर—(पूछ-ताछ करते हुए) हमारे नरेश का आदेश है कि दिन भर मे जो वस्तुए बाजार में न बिके, वे शेष चीजे राज्य की ओर से खरीद ली जायं। हम यह जाँच कर रहे है कि किसी का क्या वस्तु बिकने से शेष रह गयी है ? आपकी कोई वस्तु बाजार मे विकने से रह गयी है क्या ?

भारवि की पत्नी—जी हा, बड़ी कीमती वस्तु !

नौकर—कहाँ है वह ? दीखती नही ! क्या कोई बहुमूल्य हीरा जवाहरात है, जो छिपाकर रख छोडा है ?

पत्नी—वह संस्कृत भाषा मे लिखा एक श्लोक है।

नौकर—(आश्चर्य से) अरे, यह तो बिल्कुल नये प्रकार का माल है ? (कुछ रुखाई से) क्या दाम लोगी उस श्लोक का !

पत्नी…एक हजार रुपये।

नौकर…(अपने साथियो से) यह स्त्री पागल सी मालूम होती है। भला एक हजार में एक श्लोक कौन खरीदेगा ! तभी तो यह वस्तु बाजार में बिकी नही।

राजा…(नौकर से) सब का माल ले लिया गया ?

(तभी कोलाहल सुन पड़ता है। राजा की सवारी उधर ही आ जाती है। राजा को श्लोक बेचने वाली स्त्री मे भारी दिलचस्पी उत्पन्न होती है।

नौकर…जी, यह स्त्री एक श्लोक लिये बैठी है। इसका मूल्य एक हजार रुपया मागा है। दो पक्तियो का दाम एक हजार। इतना अधिक मूल्य भला कैसे दिया जाय ! सरकार, मुझे तो यह और पागल मालूम होती है।

राजा—(स्त्री से) देखें, तुम्हारा श्लोक क्या है ? किसने लिखा है यह !

पत्नी—सरकार, मेरे पतिदेव सस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि भारवि है। उन्होने यह श्लोक लिखा है। यह बडा महत्वपूर्ण है। दाम तो इसके बहुत अधिक है, पर मै इसे एक हजार रुपये से कम मे कभी न बेचूँगी। देखिये, आप तो इसका गूढ अर्थ समझ लेगे।

(श्लोक राजा को देती है।)

राजा—(श्लोक पढते है)

साहसा विदधीत न क्रिया-मविवेकः परमापदाँ पदम्।
वणुते हि विमृश्यकारिणलुब्धाः स्वयमेव सम्पद ॥

(अर्थ है दैनिक जीवन मे कोई काम जल्दी मे उतावले पन से न कीजिये। जल्दबाजी मे बिना काफी सोचे समझे जो लोग आवेशग्रस्त हो काम कर बैठते है, वे फलस्वरूप भारी विपत्तियाँ पाते है। उतावलापन खतरनाक नतीजे और उलझने पैदा करने वाला है। भविष्य के परिणाम पर पर्याप्त विचार कर काम करने वाले के यहाँ गुण पर मुग्ध हो सम्पदा स्वय आती है।)

राजा—खूब कहा है ! यह श्लोक सचमुच काम का है। जीवन मे कभी काम आ सकता है। (नौकरो से) इस स्त्री को एक हजार रुपये मूल्य देकर यह श्लोक खरीद लो। बात तो लाभ की है। आतुरता और जल्दबाजी मे बिना फल सोचे-विचारे किये गये कामो से बुराई ही निकलती है। प्राय लोगों को हर बात मे बहुत जल्दी रहती है हमारे कर्मचारी, जितना समय और श्रम लगाना चाहिए, उतना नही लगाना चाहते, अभीष्ट-आकाक्षा की सफलता तुरन्त देखना चाहते है। यह अधीरता की सामाजिक कमजोरी जन-समाज के मस्तिष्को मे बुरी तरह प्रवेश

कर गयी है। लोग अपनी आकाक्षाओ की पूर्ति के लिये ऐसा रास्ता ढूँढना चाहते है, जिससे आवश्यक प्रयत्न न करना पड़े और जादू की तरह उनकी मनोकामना तुरन्त पूरी हो जाय। हमारे तत्वदर्शी ऋषि-मुनियों ने मानव-जीवन को सफलता, समृद्धि और शान्ति से परिपूर्ण करने का जो मार्ग सबसे सरल पाया, उसी राजपथ का नाम धर्म एव सदाचार रखा। उन्नति और सदाचरण के मार्ग पर धैर्यपूर्वक चलते रहना ही इस श्लोक का तात्पर्य है।

(नौकरो को आदेश)

'इस महत्वपूर्ण श्लोक को शयनागार, कचहरी, बैठक, भोजनागार, अन्त'पुर आदि मुख्य-मुख्य स्थानो मे कागजो पर लिखवा कर टँगवा दो। यह शिक्षा हर स्थिति, हर उम्र के नागरिक के काम आयेगी। जल्दबाजी के रोग से बचाने के लिये यह श्लोक बडा उपयोगी है। धैर्यपूर्वक सदाचरण के मार्ग पर न चलकर अधीर लोग बहुत जल्दी जल्दी सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहते है। नतीजा यह होता है कि उनके पास स्वयं का भी कुछ नहीं ठहरता। जल्दी ही बहुत धन कमा लेने की कामना से प्रेरित होकर लोग चोरी, बेईमानो, ठगी, हिंसा विश्वासघात, रिस्वत-जैसे अनुपयुक्त रास्ते अपनाते है। अनीति के इन रास्तो को रोकने के लिये यह श्लोक बडा फायदेमन्द रहेगा।'

नौकर--श्रीमान् का जैसा आदेश ! इस स्लोक को अभी सब स्थानो पर टँगवाते है।

(राजा के आदेश का पालन होता है और मुख्य स्थानो पर श्लोक लिखाकर टँगवा दिया जाता है जिससे सभी को चेतावनी रहे, पथ प्रदर्शन मिले।)

पाँचवी झाँकी

नाई द्वारा हत्या का निष्फल प्रयत्न

(उस राजा का भाई राजा की हत्या करवाकर स्वय राज्य का मालिक बनना चाहता है। वह बहुत दिनो से हत्या कराने का षड्यन्त्र रच रहा है। उसने राजा के नाई को रिश्वत का लोभ देकर अपने हाथो मे कर लिया है। हजामत बनाते समय उस्तरे से राजा का गला काट डालने की बात तय हुई है। नाई हजामत बना रहा है—सामने दीवार पर श्लोक लिखा हुआ है। नाई उसे पढकर शिथिल पड जाता है।

राजा—अरे नाई! हजामत बनाते-बनाते तुम रुक-रुक क्यो जाते हो?

नाई—(जिसके मन मे हत्या करने की बात बैठी हुई है) नही तो "हुजुर, नही तो बस थोडी देर और हजामत तो बन चुकी है। अब आपको अधिक देर नही बैठना पडेगा। मै अभी समाप्त करता हूं (उस्तरा तेज करता है)।

राजा—तुम अपना उस्तरा पत्थर पर रगड़-रगड़ कर क्यो तेज कर रहे हो? एक बार ही तेज करके बैठते?

नाई—यह लीजिये बस, उस्तरा तैयार है। हजामत पूरी होने वाली है। (उस्तरे को जैसे ही दाढ़ी पर लगाता है, उसका अपराधी हाथ काप उठता है। वह बुरी तरह थर-थराने लगता है– कापने लगता है।)

राजा—तुम्हारे हाथ काँप रहे है। मुँह पर हवाइया उड़ रही है। तुम्हारे मन मे कोई अपराध वृत्ति छिपी है? बोलो, बोलो, तुम क्या करना चाहते हो?

(नाई राजा के चरणो मे गिर जाता है।)

नाई—(प्राण-भिक्षा मांगते हुए) अन्नदाता! लोभ के कारण आपके भाई के कहने से मैं आपकी हत्या करने को था कि सामने

टँगे श्लोक ने मुझे सावधान कर दिया। मै आपका गला न काट सका। मै हत्या का अपराधी हूं। यदि यह श्लोक न पढ़ता ओर उस पर विचार न करता तो उतावले पन मे मुझ से भयानक अपराध हो जाता। इस श्लोक पर मेरी दृष्टि सहसा जा पडी—

'सहसा विदधीत न क्रियाम्'

(कोई काम उतावले पन मे मत करो।)

मैं यह पढकर शिथिल हो गया। हत्या से वच गया। महाराज! प्राणदान दे। इस श्लोक ने आपके और मेरे—दोनों ही के प्राण बचाये।

राजा—(आश्चर्य से) ओफ! तो तुम मेरी हत्या ही करने चले थे। अब मै बडा सावधान रहूंगा। सम्भव है, वह पापात्मा मेरी हत्या का कोई और षड्यन्त्र करे। यह श्लोक बड़ा महत्वपूर्ण है। मैंने हजार रुपये खर्च किये थे, आज वे वसूल हो गये। खूब कहा है, 'सहसा विदधीत न क्रियाम्।' उतावला सो बावला। उतावले की तुलना बावले से करने का यही मतलब है कि जिस समय आदमी उद्विग्नता में होता है, उस समय उसमे थोड़ी-बहुत वे सारी कमियाँ और विकृतियाँ आयी रहती है, जो किसी पागल व्यक्ति मे पायी जाती है। आवेग, उद्वेग, व्यग्रता, अस्तव्यस्तता, अस्थिरता और असतुलन आदि दोष बावले व्यक्ति के ही लक्षण है। नाई! तुमने सच कह दिया है कि है, इसलिये तुम्हे क्षमादान देते है। भविष्य में पाप गंदे मार्ग पर मत जाना। उतावलेपन से कोई काम मत करना। इस बहुमूल्य श्लोक ने मेरे प्राण बचाये। इसे लिखने वाला कवि कितना बुद्धिमान् होगा।

छठी झाँकी

दुष्ट वैद्य से प्राण बचे

(नाई द्वारा निष्फल प्रयत्न होकर भी राजा का षड्यन्त्रकारी अपराधी वृत्ति का भाई राजा की हत्या की नई-नई तरकीबे सोचता

और करता ही रहा। उसने राजा के वैद्य को मिलाया। सयोग से राजा बीमार पडा। इसी वैद्य की चिकित्सा होने लगी।)

राजा—(बीमारी के कारुणिक स्वर मे) वैद्य जी ! हालत बडी नाजुक है। दिन-पर-दिन कमजोरी वढ रही है। आप कोई ऐसी अचूक दवा दीजिये, जिससे रोग दूर हो। आप पर मेरा अखण्ड विश्वास है।

वैद्य—(दवा में विष मिलाकर पिलाना चाहता है, पर उसकी दृष्टि दीवार पर टँगे हुए श्लोक पर पडती है।) दवा का यह कटोरा आपके लिये खास तौर पर तैयार किया है।

(उसके हाथ कांपने लगते हैं।)

राजा—अरे 'अरे'''यह आप पीपल की पत्ती की तरह क्यों काँप रहे है ? आपके हाथ से दवाई का कटोरा गिरा वह गिरा—आप घबरा क्यों रहे है ? दवाई पिलाते-पिलाते आप रुक क्यो गये ? आप चिन्तित क्यों है ? अरे, आप तो अपराधी की तरह डर रहे है ?

वैद्य—(कटोरा भूमि पर रखकर) यह दवा ठीक नही है, दूसरी दूंगा।

राजा—(आश्चर्य मे) अभी तो आप कह रहे थे कि मेरे लिये खास तौर पर दवाई वनायी है ? आप पर मुझे सदेह है। सच-सच बताइये, आपके मन मे उद्विग्नता क्यो है ? आप क्यो थर-थर काँप रहे है ? मनमे क्या परेशानी पैदा हो गई है ? जरूर कुछ-न-कुछ रहस्य है ? अरे आपका तो मुँह पीला पड़ गया।

वैद्य—(पैरो पर गिर पडता है) क्षमा, महाराज ! मुझे आपके भाई ने घूस दी है कि दवाई मे बिष दे दूँ। जब मै विष-भरा कटोरा आपको पिलाने वाला था तभी मेरी दृष्टि दीवार पर टँगे हुए श्लोक पर पडी 'सहसा विदधीत न क्रियाम्।' इस श्लोक ने मुझे सावधान कर दिया। उतावली बडे-वड़े अनर्थों की जड

है। मै आपकी हत्या द्वारा ऐसा उतावली का काम कर रहा था, जिसका दुष्परिणाम घोर पश्चाताप, परेशानी और व्यग्रता ही होती।

राजा—ओफ ! तुम लोभवश मेरी हत्या करने चले थे। तुमने क्या सोचा था।

वैद्य—(क्षमा की भिक्षा माँगते हुये) मैं यह श्लोक पढकर सोचने लगा कि इस राजा को, जो मेरे विश्वास पर है यदि मैं विष दे दूँगा तो उसका भाई, जो गद्दी पर बैठेगा, वह मेरा विश्वास कैसे करेगा ? और उसकी दृष्टि मे तो मै अपराधी बन जाऊँगा। उफ् ! उतावलेपन मैं क्या अपराध करने जा रहा था। इस श्लोक ने बचाया है। इन्हीं शब्दो ने मुझे पाप से पूर्व सोचने को विवश किया।

राजा—(नौकरो से) मैं राज वैद्यजी को माफ करता हू। हमारे भाई को बन्दी गृह मे डाल दो। संसार कैसा कुटिल है। अपने की हत्या का प्रयत्न–कितना विस्वासघात।

(वैद्य को ले जाते हैं)

राजा–उस श्लोक ने मेरे दो बार प्राण बचाये है। उसमें बड़े महत्वपूर्ण तथ्य छिपे है। अब तो उसका मूल्य लाखो से अधिक है। छोटी-सा उतावली बड़े अनिष्टो को जन्म दे सकती है। उतावली वास्तव में शीघ्रता नही, बल्कि कमजोर मनकी विक्षिप्तता होती है, जो आवेग में भरकर उतावला बना देती है। इस श्लोक ने यह बताया है कि हमें इस जल्द बाजी रूपी मानसिक दुर्बलता से बचना चाहिये। काफी सोच-समझकर ही कामकरने का निर्णयकरनाठीक रहता है। धैर्य धारण करना उत्तम है। धैर्यवान् मनुष्य के अतःकरण में अत्यन्त शान्ति, भविष्य की सुखद आशा और उदारता की प्रवलता रहती है वह कुदिन के फेर मे पड़कर घबराता नहीं बल्कि उन दिनों को हँसते हुए टालने की चेष्टा करता है। श्लोक

मे बडो उपयोगी शिक्षा दी गयी है। मैं चाहता हू कि इसे लिखने वाले का पता चल जाय, जिससे उसे राजाचित सम्मान और इनाम दूं। विद्वानो का सम्मान राजा का प्रमुख कर्तव्य है। ऐसे विद्वान् की तो राजकवि बनना चाहिये।

(दूत का प्रवेश)

दूत—महाराज ! एक कवि आपसे मिलने की आज्ञा चाहते है। परदेश से अपने काव्य के बल पर बहुत-सा धन और सम्मान कमाकर घर आये है। उनकी स्त्री ने एक हजार मे आपकी एक श्लोक बेचा था, पर उनको सदा अपने पति की चिन्ता ही बना रहती थी। आज उसके पति परदेश से लौट आये है।

(भारवि को लाता है)

राजा—(भारवि से) ओह ! तो वह श्लोक तुम्हारा ही लिखा हुआ है ?

भारवि—महाराज ! मैं बहुत दिनो बाद आज घर लौटा हू। घर आकर सस्ते मूल्य मे श्लोक की विक्री का समाचार सुना। उस श्लोक को मेरी धर्मपत्नी ने भूल से बडा सस्ता बेच दिया है। महाराज ! मेरी धर्मपत्नो दारिद्रय के दुःख से पीडित होकर एक श्लोक आपके हाथ केवल एक सहस्त्र मुद्रा ही बेच गयी। यह लीजिए अपने एक हजार रुपये। मेरा वह श्लोक मुझे वापिस कर दीजिये। इतना सस्ता नही बेचूगा। कला का आर्थिक मूल्य कौन जानता हैं ?

राजा—(श्लोक के स्वामी को पाकर अपार आनन्द से उल्लसित हो उठते है।) भारवि ! आगे आओ ! मैं तुम्हें अपने हृदय से लगाना चाहता हूं। तुम्हारे श्लोक ने दो-दो बार मेरे प्राण बचाये है। सचमुच, एक हजार रुपये इसका मूल्य कम है। मे अब इसका सच्चा मूल्य एक लाख रुपये ही देता हूं। इसमे बडी ही उपयोगी वात कही गयी है—'सहसा विदधीत न क्रियाम्।' अधीरता मनुष्य की क्षूद्रता का चिन्ह है, सोच-समझकर ठंडे सन्तुलित मन से काम करना व्यक्ति की महानता का लक्षण है।

एक लाख रुपए के मूल्य का कीमती श्लोक

भारवि—महाराज ! मनु भगवान् ने धर्म के दस लक्षणों की चर्चा करते हुए मनुष्य का सब से पहला धर्म 'घृति' अर्थात् धैर्य बतलाया है। सामने उपस्थित उत्तेजनात्मक परिस्थिति को भी यदि ठीक तरह समझने को कोशिश की जाय, तो वह मामूली सी बात निकलती है। जिन छोटी-छोटी बातो को लेकर लोग दुःख मे करुण-कातर और सुख मे हर्षोन्मत हो जाते हैं, वे वस्तुतः बहुत ही साधारण बात होती है। हमारा उतावलापन एक ऐसी दुर्बलता हैं, जो छोटी-छोटी बातो में उत्तेजित करके हमारा मानसिक सतुलन बिगाड़ देती है। इस स्थिति से वचना ही धैर्य है। मेरे श्लोक का मतलव यही है कि सदा हमारी विवेकशीलता स्थिर रहे।

राजा—और मैंने पाया है कि यह तथ्य जीवन को सुविकसित बनाने के लिए बडा आवश्यक है।

भारवि—यह तभी सम्भव है जब मनुष्य धैर्यवान् हो—अधीरता से बचे। थोडी सफलताएँ, इच्छानुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होने पर, सत्ता, अधिकार, सम्पत्ति मिलने पर प्राय. लोग वडे अहङ्कारी बन जाते है। सत्ता और धन का वाहुल्य हमारे विवेक को पङ्गु बना देता है। उन्ही की ओर सकेत इस श्लोक में है।

राजा—मै यह एक लाख रुपया इस श्लोक का मूल्य देता हूं। इसने मेरे प्राण बचाये है। अब मैं इसे पृथक् न होने दूंगा। (रुपया देता है) आज मे आप हमारे राज-पण्डित हुए।

भारवि—जो आज्ञा महाराज !

(बारह वर्ष पूर्ण होने पर महाकवि भारवि पत्नी को लेकर अपने माता-पिता के पास गए और अपने अपराध का प्रायश्चित्त करके, माता पिता से क्षमा मॉग कर, स्त्री सहित राजधानी मे आकर राजपण्डित की तरह रहने लगे।)

पुस्तकों का मूल्य हीरे-जवाहरात से अधिक है

ईरान के शासक युद्ध में हार गये !

युद्ध मे जो जीतता है उस ी विजय भी हार जैसी ही रहती है, कारण उसमे अपार जनता मारी जाती है, धन का बुरी तरह नाश होता है और पशु प्रवृत्तियाँ अपना ताण्डव नृत्य दिखाती हैं।

सिकन्दर एक महत्वाकांक्षी लडाकू थे। उनकी इच्छा थी कि विश्व विजेता' कहलाने का सौभाग्य प्राप्त किया जाय। उन जैसा योद्धा पृथ्वी पर कोई न निकले।

सिकन्दर की महत्वाकाँक्षा बहुत ही बडी और विरल थी। उसे मूर्तिमान करने के लिए उन्होने एक विपुल सेना एकत्र की कई छोटे राजाओं को मौत के घाट उतारा, देश विदेश में युद्ध और रक्तपात द्वारा अपार कष्ट उठाये और अन्त मे अनेक देशों पर विजय पताका फहराई।

ईरान के शासक दारयवहु हार गये। इस विजय के साथ साथ सिकन्दर महान को बहुत सा धन, स्वर्णमुद्राए और बहु-मूल्य रत्न, हीरे, जवाहरात भेट के रूप मे प्राप्त हुए।

विजय सिकन्दर के सामने ईरान की कीमती चीजों,की भेट सजाई जा रही थी! हारा हुआ हर एक आदमी उन्हे खुश करने का प्रयत्न कर रहा था। मूल्यवान वस्तुओ के तोहफे देख कर उनका मुख मण्डल दीप्तिमान था।

'खूब ! वाह रे वीर सैनिको ! शावाश । तुमने यूनान का नाम उजागर किया है। ईरान से बहुत सी कीमती चीजे लूटी

है। हमारे सामने तुमने लाजवाव भेट पेश की है, जिन्हे देखकर हम खुश है। सिकन्दर ने खुश होकर कहा।

उसका रोम रोम फूल की तरह खिला हुआ था।

बची हुई चीजे तुम ईरान से अपने बाल बच्चों के लिए यूनान ले जाओ। वे भी हमारी तरह तुम्हारी फतह से खुश होंगे। कह कर सिकन्दर ने अपने योद्धाओं को शाबाशी दी।

'हुजूर, एक सैनिक अधिकारी आपको एक खास तोहफा भेट करने आ रहे है। हुक्म हो तो उन्हे आने दिया जाये ?'

'आने की इजाजत है।' सिकन्दर ने उत्सुकता प्रकट की।

बड़े अदब से वह सैनिक अधिकारी सम्राट के सामने हाजिर हुआ। भेट की चीज एक रेशमी वस्त्र मे बधी हुई थी।

'हुजूर, मुझे ईरान में यह लूट मे मिली है। आपकी खिदमत में पेश है। मजूर फरमाये।' रेशम का कपड़ा खोलते हुए वह अधिकारी बोला।

क्या है यह ?'

'सन्दूकची ! अरे यह तो वाकई बडी खूबसूरत पेटी है ! कहाँ मिली यह ? सोने की नक्काशी तो देखने लायक है इसकी। खूब ! चीज वाकई लाजवाब है।'

'हुजूर, एक बडे जौहरी की दूकान लूटी। उसने इसे छिपा रखा था। जब उसे मारने का डर दिखाया गया, तो उसने अपनी सबसे कीमती यह बेहतरीन सन्दूकची लाकर दी। यह इतनी लाजवाव है कि देखकर दिल मचल उठा और फौरन, हुजूर को तौहफा की शक्ल में पेश करने की बात सूझी ! मुझे खुशी है कि सरकार को यह तोहफा पसन्द आया।

सिकन्दर ध्यान से उस छोटी सी खूबसूरत सन्दूकची को देखने लगा। अहह। क्या कहने हैं इस सन्दूकची की बनावट

और नक्काशी के ! चन्दन की लकड़ी ! उस पर आबनूस की नक्काशी ! फूल कढ़े हुए वह फूल सोने के ! चमकदार ... नजर लगी कि बस लगी ही रही—हटी नही। कमाल था।

सिकन्दर के मुँह से अनायास निकला, 'यह स्वर्णजटित सन्दूकची जिस कलाकार ने बनाई है, उसके हाथ चूम लेने को जी करता है ! इससे बेहतर पेटी बन ही नहीं सकती ! यह कितनी सुन्दर है ! कितनी आकर्षक !! कमाल की कलाकृति है यह !'

'हम तुम्हारी भेट से खुश हुए !' सिकन्दर ने सैनिक अधिकारी को शावाशी देते हुये कहा, 'यह स्वर्णजटित पेटी वाकई सबसे अनोखी चीज है। हम इसमे अपनी सबसे कीमती चीज रखेगे, और यह हमेशा तुम्हारी यादगार तरोताजा रखेगी। शुक्रिया।'

सिकन्दर ने खुश होकर उस पेटी को अपने पास रख लिया। प्यार से हाथ फेरने लगे। मनुष्य की कारीगरी का लाजबाव नमूना था। उन्हे वह बडी पसन्द आई।

अब उसका मन एक नई समस्या मे उलझ गया।

'इस स्वर्णजटित सन्दूकची मे क्या रखा जाय ? कौन इसमें स्थान पाने का पात्र हो सकता है ? जितनी यह मूल्यवान कलाकृति है, उतनी ही मूल्यवान वस्तु इसमे रहनी चाहिए। मामूली चीज भला इसमें कैसे रखी जा सकती है ? साधारण काम मे लेना इसके साथ वेइन्साफी होगी।' मन में द्वन्द्व मच गया उस विजेता के।

वे सोचने लगे, 'यह सन्दूकची जितनी खूबसूरत और कलात्मक है, उतनी ही कीमती और बेहतरीन चीज उसमे रखनी चाहिये। जितनी वढ़िया यह चीजे, उतनी ही वहुमूल्य इसके

अन्दर रखने वाली वस्तु होनी चाहिए। जैसा बाहर का भव्य आवरण, वैसी ही उत्कृष्ट अन्दर की वस्तु ! लेकिन सबसे अच्छी चीज क्या हो सकती है ? इस दुनिया में सबसे कीमती चीज क्या है ? कौन सी चीज इस सन्दूकची के लायक है ?

यह सवाल सिकन्दर ने अपने विचारकों के सामने रखा। बोले, सोचकर बताइये कि इस स्वर्णजटित सन्दूकची में रखने लायक सबसे कीमती क्या चीज हो सकती है ?

इस प्रश्न पर सभी विचार करने लगे।

एक ने प्रस्ताव रखा 'शहन्शाह इस खूबसूरत पेटी मे दो सब से कीमती हीरे, जवाहरात ही रखने चाहिए। उनकी कीमत का अन्दाज भी मुश्किल से लगता है।'

'क्या इनसे अधिक कीमती और कोई चीज नही है ?' 'सिकन्दर ने पूछा।

दूसरे सभासद ने सुझाया, 'हुजूर ! इसमें तो सम्राट के वस्त्रा भूपण रखने ठीक रहेगे। वे सबसे ज्यादा मूल्यवान है।

'नही, सरकार यह नही !' तीसरा बोला।

'सरकार, इसमें राज्य-कोष की चाबियाँ रखी जॉय। उन्ही से शहन्शाह का सारा खजाना खुलता है। याद चाबियां खो जॉय, तो सब ताले बन्द रह जाँय, या तुड़वाने पड़ें। आदमी अपने खजाने की कुञ्जियों को सबसे ज्यादा पसन्द करता है। इसलिए राज्य के खजाने की कुञ्जियाँ ही इसमें रखना ठीक मालूम होती है।'

एक व्यक्ति बोला—'सम्राट ! इसमें वे प्रेम-पत्र रखिये, जो आपकी प्रेमिका ने आपको जवानी में लिखे हों।! प्रेम-पत्र वेश-कीमती माने गये है।'

भिक दर सबकी पसन्द सुनता रहा। वह स्वय अपनी पसन्द जाहिर नही कर रहा था। सोच विचार में फंसा हुआ था।

अधिकारी कौतूहल में थे कि स्वर्णजटित सन्दूकची में सम्राट क्या रखेंगे ?

जब सव अपनी अपनी वात कह चुके, तो उन्होने सम्राट से पूछा—

'हुजूर, आप इसमें क्या रखने जा रहे है ? आपकी राय में दुनिया की सबसे कीमती चीज क्या है ?'

सिकन्दर का दिमाग इसी निर्णय में लगा था।

वह सोच रहा था, 'मेरे लिये दुनियाँ की सबसे उत्तम वस्तु क्या रही है ? जीवन मे किस चीज से मैंने सबसे अधिक फायदा उठाया है ?'

'क्या मुझे धन से सबसे अधिक लाभ हुआ है ? मनमें प्रश्न उठा।

उसके विवेक ने जबाव दिया, 'धन तो मूर्खो को भी अनायास ही मिल सकता है। सिकन्दर, तेरी प्रसिद्धि का कारण रुपया पैसा नही है। तू कोई धनिक व्यापारी नही है। तेरी विशेषता कुछ और ही है। तेरा खजाना कोई और है।'

'फिर मेरा असली खजाना क्या है ?' नया सवाल जगा।

उसके विवेक ने उत्तर दिया, 'तेरी असली पूँजी है, शूरता और वीरता। इतिहास के पृष्ठो पर लिखे जाने का गौरव तुझे तेरे साहस के कारण ही है। तु महान अपनी हिम्मत और जवामर्दी की वजह से ही कहलाता है। अपनी शौर्य भावना की तुष्टि के लिये तुने न जाने कितने देशो को रोद डाला है। हजारो लाखो को मौत के घाट उतारा और अपनी सेवा के लिए असख्य सैनिको को समराग्नि में आहुति बना डाला ....

………युद्ध और रक्तपात ! तेरी विशेषता तो पौरुष है। पराक्रम है………वीरता है… ।'

'यह साहस, पराक्रम की भावनाए मुझमे कहाँ से आई ?'

अन्तरात्मा ने उसे याद दिलाया, 'अपनी अतीत की स्मृतियाँ खोजो। याद करो कि किससे तुमने जीवनोत्कर्ष की मजबूत प्रेरणाए पाई है ? किसके विचारो को गुप्त मनमें जमाकर तुम पौरुष और पराक्रम के क्षेत्र मे आगे बढ़े हो ? युद्धमे विजय दिलाने वाला शौर्य तत्व तुम्हें कहाँ से मिला है ? तुम्हें सशक्त और साहसी बनाने वाला कौन ?'

वह सोचता रहा। विचारता रहा। अतीत की स्मृतिया उभरने लगी।

क्या वह आत्मा की पुकार अनसुनी करे ?

यकायक उसे याद आया, 'पौरुष, पराक्रम और साहस का विचार मुझे एक पुराने ग्रन्थ से मिला था। उस ज्ञान से मैं इतना विकसित हुआ हूं। ज्ञान ही मनुष्य की उन्नति की आधार शिला है जब तक मुझे ज्ञान न था, तब तक मैं पशु प्रवृत्तियों से प्रेरित निरा जानवर जैसा ही था। मुझ जैसे अज्ञानी व्यक्ति को कोई सूझबूझ न थी। मेरी सारी शक्तियां मेरे मन और शरीर के अन्दर निरुपयोगी बन्द थी। यदि मुझे अपनी छिपी हुई ताकतों का ज्ञान न होता, तो मैं विश्व विजय करने जैसा बडा संकल्प ही क्यों कर पाता ! ज्ञान की जन्मदात्री ही विवेक बुद्धि है और वही मेरी सारी शक्तियों का स्रोत रही हैं। फिर यह ज्ञान मुझे जहाँ से मिला था वही चीज मेरे लिए सबसे मूल्यवान है।'

यह ज्ञान मुझे पुस्तको से मिला था, जो मैंने बचपन में पढ़ी थी। अपने ज्ञान की अभिवृद्धि तथा बुद्धि विकास के लिए मैंने

अनेक प्राचीन पुस्तके पढी थी। मानव जाति का सारा ज्ञान पुस्तको मे ही तो सचित है! अच्छी पुस्तके महान आत्माओ का जीवन रक्त है, क्योकि उनमे जीवन का विचार सार सन्निहित ह ता है। आदमी मर जाता है, किन ग्रन्थो मे उसका आत्मा का निवास बना रहता है। सद्ग्रन्थो का कभी नाश नही होता। एक पुस्तक मे ही मुझे आगे बढने की प्रेरणा मिली थी।'

'मुझे कौन सी पुस्तक से मार्ग-दर्शन का प्रकाश-स्रोत मिला था ?'

एक-एक कर सिकन्दर को कई उत्तम पुस्तको के नाम स्मरण हो आये। वह उन सभी लेखको के विषय मे सोचने लगा जिनसे उसे उत्तम विचार, उदात भावनाए तथा वीरता की कल्पनाए मिली थी।

'ओफ! याद आ गया। बस वही ग्रन्थ है, जिसने मेरी जिन्दगी को नया मोड दिया था! उसी को इस स्वर्णजडित सन्दूकची मे रखवाना ठीक रहेगा, क्योकि मेरे लिए वही सबसे बहुमूल्य है। उस पुस्तक को इसमे रखने से ही उसका सम्मान होगा और मैं कर्त्तव्य से उऋण हो सकू गा।' उसने निर्णय किया।

अब तक सभा मे बैठे हुए लोगो की दिलचस्पी अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। रह-रहकर वे सिकन्दर का अन्तिम निर्णय जानना चाहते थे।

'हुजूर! फिर इस बेशकीमती पेटी में कौन सी मूल्यवान वस्तु रखो जाय ? हीरे ? ··वस्त्र ? या आभूषण ? सोना? या कुछ और ?

नही इसमे से कुछ भी चीज मूल्यवान नही है, जो इसमें

रखी जाने की पात्रता रखती हो !' सिकन्दर ने उत्तर दिया।

'फिर क्या हुक्म है ? सरकार।

'इस स्वर्णजडित सन्दूकची मे महाकवि होमर लिखित महाकाव्य 'इलियड' रख दो। 'इलियड' जैसे बहुमूल्य ग्रन्थ से ही मुझे शौर्य की भावनाए मिली थी। यह यूनान की सबसे महत्वपूर्ण देन है। होमर जैसे महाकवि को मै दुनिया का सबसे बडा आदमी मानता हू। ट्रौय के युद्ध तथा एचलीज जैसे वीरो की शौर्य कथाओ ने मुझे योद्धा बनाया है।'

सिकन्दर का निर्णय सुनकर सब दङ्ग रह गये।

उस दिन से सिकन्दर के अधिकारी भी धन की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्व देने लगे।

सादगी सदाचार और सद्गुण ही सत्पुरुषों के आभूषण हैं।

महाराष्ट्र मे एक महिला-उत्सव ! सर्वत्र धूमधाम का सगीतमय वातावरण ! आनन्द और उल्लास का सुखद पर्व !

राजमहल में इस उत्सव को राजकीय स्तरपर आयोजित किया जा रहा है। राजमहल का महिला-कक्ष विशेष रूप से सुसज्जित किया गया है । रंग-बिरगी झडियों, सुन्दर द्वारों, चित्र, रगीन पुताई और विविध साधनों से पथ को सजाया-सँवारा गया है।

राज पथ को जाने वाली सडक पर रंगीन मिट्टी लीप-पोत कर भव्य मङ्गलमय चित्रकारी की गयी है । आकर्षक बेलबूटे और भाँति-भाँति के रंगीन कागज लगाकर सजावट को द्विगुणित किया गया है। अहह ! आज राजमहल नयी नवेली दुलहिन सा प्रतीत होता है।

महाराष्ट्र के अधिपति पेशवा माधवराव इस राजकीय महिलाउत्सव को पूर्णत सफ्ल बनाने मे अभिरुचि रखते है। वे सजावट मे स्वय काफी सक्रिय सहयोग प्रदान कर रहे हैं। उन्होने राजकोय आदेश जारी किया है कि यह नारी-उत्सव प्रान्त की गोरवमयी सस्कृति केअनुरूप बडे वैभव से सम्पन्न किया जाय। राजकीय ऐश्वर्य का पूर्णत प्रदर्शन हो। राजधानी की अधिक-से अधिक महिलाए उच्च, मध्य तथा निम्नवर्ग—सभी वर्गो की नारियाँ इस उत्सव मे मुक्त-हृदय से भाग लें। राजकीय कोष का कितना ही व्यय क्यो न हो, पर ऐश्वर्य और परम्परा के अनुकूल ही सास्कृतिक उत्सव का आयोजन रहे।

सभी राजकीय कर्मचारी तथा राजधानी के लब्धप्रतिष्ठित नागरिक सजावट तथा अन्य कार्य क्रम की सफलता के लिये भाग दौड कर रहे हैं। जहाँ विपुल धन व्यय किया जाय, नागरिक और राजकीय शक्तियो का सहयोग हो, वहाँ क्यो न सफलता मिलेगी ?

स्वय पेशवा माधवराव राजसी मूल्यवान् वस्त्र पहिने है, किन्तु सबसे अधिक उल्लास और सौन्दर्य विभूषिता तो महारानी जी है, रेशमी वस्त्र, मणि-माणिक्य और हीरे-मोतियो के कीमती आभूषण धारण करने के कारण वे बडी रमणीय प्रतीत हो रही है।

राजधानी की प्राय सभी उच्चवर्गीय अमीर तथा शासक-वर्ग की महिलाओ को आमन्त्रित किया जा चुका है। रगीन वस्त्रो तथा आभूषणों से सुसज्जित मानो सौन्दर्य के समुह के समूह राजमहल की ओर अग्रसर होते आ रहे है।

उन महिलाओ का हर्षोल्लास से स्वागत किया जा रहा है। लीजिये, देखते-देखते समस्त राजकीय कर्मचारियो की धर्म

पत्निया उत्सव के लिये आपहुची है केवल पेशवा माधवराव के प्रधान न्यायाधीश की धर्म पत्नी अभी नही पहुँची है, उनकी प्रतीक्षा उत्सुकता पूर्वक की जा रही है। वे राज्य की सबसे उच्च वर्ग की प्रतिनिधि है। उनके न आने से उत्सव फीका सा है। उनकी देरी के कारणो का अनुमान लगाया जा रहा है।

'राजकीय प्रधान न्यायाधीश की धर्म पत्नी जी उत्सव में सम्मिलित होने के लिये अभी तक नही पधारी ? इतने बड़े राजकीय उत्सव मे उनकी अनुपस्थिति सबको बड़ी खटक रही है।' महारानी पूछ रही है।

'कदाचित् वे महिला उत्सव के अनुरूप साज़ श्रृङ्गार न कर पायी होगी अभी तक।' एक महिला ने अनुमान लगाया।

'किसी का तुरन्त उनके घर भेजकर मालूम कराओ कि इस हर्ष और उल्लास के साँस्कृतिक पर्व मे भाग लेने के लिये वे यहाँ कितनी देर से पहुँच रही है ? इतने उच्चस्तर की महिला का साज श्रृङ्गार राजकुल के अनुरूप च्उच कोटि का होना चाहिये, इसमें क्या सदेह है ?' महारानी ने कहा।

फिर क्या था, दो तीन दासियाँ तुरन्त महामन्त्री के गृह भेजी गयी। अब तक राज्य में रहने वाली सभी ऊच्च घरानों की महिलाएँ राजभवन मे पहुंच चुकी थी। राज महल तालाव मे खिले रंग विरंगे कमल के पुष्पों के समान सुरभित था।

उधर स्वयं महारानी जी भो अपने रूप श्रृङ्गार को वढ़ाने और साज सज्जा को निखारने मे लगी हुई थी। वे प्रतिक्षण अपनी भाव भङ्गिनाए देखने के लिए आदमकद शीशे के सम्मुख खडी होती और स्वयं अपने ही सौन्दर्य की प्रशसा करती मन ही मन ऊस पर मुग्ध होती। उनकी दवी हुई इच्छा थी कि कोई

उनके रूप लावण्य का भरपूर प्रशसा करे। बडी उम्र की स्त्रियो मे भी प्राय यह कमजोरी होती है।

'लीजिये, प्रधान मन्त्री जी की धर्म पत्नी जी पधार ‒ी है।'

सव के उत्सुक नेत्र पपीहे के स्वाति नक्षत्र की ओर लगे नयनो की तरह उधर लग गये।

उन्होने दूर से ही महारानी को नमस्कार किया।

'अ‚ह ! आइये, आपकी तो बडी देर से प्रतीक्षा की जा रही है।' —महारानी जी ने उसका स्वागत करते हुए हर्षमिश्रित मधुर स्वर मे कहा।

'देरी के लिये क्षमा करे !' कहते हुए प्रधानमन्त्री की सीधी सादी धर्म पत्नी ने आदर पूर्वक उत्तर दिया। लज्जा का भाव था उनके मुख-मण्डल पर।

लेकिन ओह ! उन्हे साधारण गृहणी की तरह सीधे-सादे वेश और मामूली वस्त्र पहिने देख महाराष्ट्र की महारानी आश्चर्य के सागर मे डूब गयी।

साधारण से सफेद वस्त्र, हाथो मे दो-दो काँच की लाल-लाल चूडियाँ, गले मे मङ्गल सूत्र, नाक मैं मामूली-सी सोनै की लोग और कर्णफूल कानो मे। पूरा वेश जन-साधारण-जैसी मामूली, सद्गृस्थ नारी की तरह।

राज्य के इतने ऊँचे राज्य-अधिकारी की धर्म पत्नी के शरीर पर न हीरे, न वहुमूल्य जवाहरात ! न रेशमी वस्त्र ! न तडक-भड़क, न सौन्दर्य प्रदर्शन !

महारानी जी को आशा थी कि इस राजकीय महिला-उत्सव पर तो कम-से-कम वे उच्च श्रेणी का वनाव-श्रृङ्गार करके तो आयेगी ही।

पर उफ् ! इस सीधी-सादी वेशभूषा को देखकर उनकी रंगीन कल्पनाओं पर तो जैसे तुषारापात ही हो गया। महामन्त्री की सादगी से वे मन-ही मन व्यग्र हो उठी। यह उन्हें राजकीय स्तर से गिरी हुई अपमान जनक स्थिति प्रतीत हुई। मन-ही-मन आत्मग्लानि से वे ऐसी व्यथित हुई, मानो सैकड़ों जहरीले बिच्छू उन्हे अन्दर ही-अन्दर काट रहे हों।

वे मन में कहने लगीं—'अरे ! ऐसो साधारण वेशभूषा में इतने बडे राजकीय उत्सव में सम्मिलित होना तो राज्यकुल और महाराष्ट्र प्रान्त की निन्दा है। जब अन्य महिलाए इन्हें मेरे साथ राजसी वैभव के साथ देखेंगी, तो संभ्रान्त परिवारों की महिलाएँ न जाने क्या-क्या व्यंग्य-वाण हम पर फेंकेंगी। कैसे-कैसे कटु तानें देंगी !!'

उन्होने दवे स्वर में इसी प्रकार के विचार पास खड़ी एक महिला से कहे। उसने उत्तर दिया—'जी हाँ, प्रधान मन्त्री और राज्य के प्रधान न्यायाधीश को धर्मपत्नी को इस प्रकार दरिद्र-वेश के देखकर राज्य का अपमान होगा।'

'यही नही, महारानी जी ! इसमे तो श्रीमन्त पेशवा महाराज की कृपणता भी टपकेगी।, दूसरी रमणी व्यग्यं पूर्वक कहने लगी।

'फिर आप सवकी क्या राय है ?' महारानी जी ने सवसे सलाह माँगी।

'अशिष्टता के लिए क्षमा करें। अव उत्सव का समय निकट है। अव इन्हें वापिस घर जाकर वस्त्र और आभूषण वदलने ता भेजा नही जा सकता।' एक महिला ने कहा।

'फिर क्यों न राज परिवार से ही वस्त्र आभूषणों का प्रवन्ध किया जाय ?' सहृदयता पूर्वक महारानी जी ने सुझाव दिया।

'महारानी जी ! इससे बढकर तो और कोई समयानुकूल बात ही नही हो सकती ।'

'और इसमें उनका सम्मान ही है। उन्हे तो खुशी होनी चाहिये कि उन्हे आज महारानी जी के बहुमूल्य वस्त्र और वेश-कीमती रत्नो वाले आभूषण धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होगा ।'

'ठीक है'—महारानी जी ने निर्णय लिया। 'आप सबकी सलाह उचित ही है ।'

'फिर स्वय आप ही इन से कह दीजिये, अपने मन की यह शुभ बात ।'

महारानी जी के सुझाव को अस्वीकार करना आसान न था। फिर उन्होने बड़े शिष्ट और मधुर शब्दो मे श्रीरामशास्त्री जी की धर्म पत्नी से आग्रह किया था कि 'वे राजकीय गौरव को बनाये रखने और राजकीय स्तर के अनुकूल आज तड़क-भड़क और वैभवशाली वस्त्राभूषण धारण कर लें ।'

'लेकिन मेरे पतिदेव को यह बाह्याडम्बर-दिखावा पसन्द नही—प्रधान मन्त्री जी की धर्मपत्नी कहने लगी। 'भला शान-शौकत, मिथ्या प्रदर्शन और बाहरी दिखावे से क्या होगा ? भडकीली पोशाक के बल पर मनुष्य कितने दिन दूसरो को धोखा दे सकता है ?'

'नही, नही, सो बात नही ।'—महारानी जी समझाने लगी –'यह वस्त्राभूषण तो आप कुछ देर के लिये महाराष्ट्र की राजसी शोभा बनाये रखने के लिये धारण करेंगी। महज मेरा मन रखने के लिये ।'

क्या यह बेहद जरूरी है ?'

'यह तो समस्त महाराष्ट्र के सम्मान का प्रश्न है ।'

'तो क्या मनुष्य का सम्मान उसकी बाह्य वेश-भूषा और आधूषण आदि पर आधारित है ?' श्रीरामशास्त्री जी की धर्म पत्नी ने पूछा ।

'आप मेरा आग्रह मानें'—महारानी हठ करने लगी । 'आज महिला-उत्सव में आपका व्यक्तित्व, सजधज राज्यकुल की वैभवश्री बढायेगी । कृपया मेरा प्रेम पूर्ण आग्रह स्वीकार कीजिये—सिर्फ मेरे लिये ।'

बार-बार इतनी बडी महिला का अनुनय-विनय देखकर अन्त मे उनका मन रखने के लिये आखिर राजकीय वस्त्राभूषण धारण करने का आग्रह वे मान ही गयी ।

महारानी जी का हृदय बाँसो उछल रहा था । महिला उत्सव पर उनका आग्रह स्वीकार कर लिया गया था । उन्होंने स्वयं जाकर अपने वस्त्रों के कक्ष खोले । राजकीय आभूषणों की आलमारियों क्या थी, मानों किसी वडे जौहरी की खूबसूरती से सजी हुई दूकाने ही हो । नये से नये डिजाइनों के हीरे मोती-मानिक—पन्ने तथा जवाहरातो के अनगिनत गहने सजे थे ।

महारानी जी न स्वय ही महामन्त्रीजी की धर्म-पत्नी को बहुमूल्य शानदार राजसी वस्त्र पहिनाये । फिर अपनी मनपसन्द के आभूषणो से उनको सजा दिया । साज-श्रृङ्गार और सौन्दर्य-प्रसाधन धारण कर आज श्रीराम शास्त्रीजी की धर्म-पत्नी भी महारानी जैसी ही लग रही थी ?

महामन्त्रीजी की धर्म-पत्नी जो सदा सादगी से सन्तुष्ट रहती थी, आज सङ्गदोष से राजसी वस्त्रो में स्वर्ण रत्न-आभूषणों से अलकृत अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रही थी । एक तो राजकीय सम्मान, दूसरे उच्च शासकीय पद और उस पर यो राजसी

ठाट-वाट ! मन मे छिपी वामना जग उठी और उन्हे आज जीवन एक सुखद स्वप्न-सा मादक मोहक प्रतीत हुआ ।

राजकोय महिला उत्सव सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। आज समस्त महाराष्ट्र अपने स्वर्णिम अतीत पर गर्वित था। नव-मधुर-भावो से पूरित !

'आज हमारा एक और आग्रह माने ?' —महारानीजी ने श्रीराम-शास्त्री की धर्मपत्नी से पुन निवेदन किया।

'आज्ञा दीजिए ?'

'काश ! आपकी यह शोभा—यह सौन्दर्य आपके पतिदेव देखते ?' अपने-अपने मन का आनन्द ! उन्हे क्या पता कि इनके पतिदेव इस सौन्दर्य से सुखी होगे या दु खी।

श्रीरामशास्त्राजी की धर्मपत्नी सकोचवश कुछ वोल न सकी।

तब तक महारानीजी ने राज के कहारो को आज्ञा दी।

आपको इसी ठाट-वाट से प्रधान मन्त्री जी के घर पर शाही पालकी मे बैठाकर पहुँचा आओ ?

'जो आज्ञा, महारानी जी !'

श्रीरामशास्त्रीजी की धर्मपत्नी आयी तो थी पैदल, किन्तु विदाई के समय उन्हे मराठ राज्य कुल की शोभा वढाते हुए शाही पालकी मे बडे शानशौकत से बहुत-सी महिलाओ के माथ विदा किया। एक छोटा-सा जुलूस कोलाहल करते हुए शास्त्री जी के मकान पर पहुँचा।

कहारो ने श्रीरामशास्त्रीजी का दरवाजा खटखटाया। वाहर शोर गुल था। शास्त्रीजी आश्चर्य मे डूब हुए वाहर निकले।

अकस्मात् आये हुए जुलूस, इस कोलाहल और राजकीय टीपटाप को देखकर विस्मित रह गये।

'अरे ! कौन हैं ये सब लोग ? यह पालकी किसकी है ? यह सब क्या है ?' शास्त्रीजी को अपने नेत्रों पर विश्वास न हुआ ? क्या वे एक अजीब सी घटना घटी ! रहस्य और रोमांच से परिपूर्ण ?

जैसे ही शास्त्री जी ने अपनी धर्मपत्नी को सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों मे पहचाना, तो एकाएक दरवाजा बन्द कर लिया।

अरे, यह क्या हुआ ? यह क्यो हुआ ?

घर का दरवाजा स्वय अपनी ही धर्मपत्नी के लिए बन्द हो गया था ? सबके सामने ! प्रधान मन्त्री को धर्म पत्नी को आत्म ग्लानि के कारण मार्मिक वेदना हुई ? इतने व्यक्तियों के सामने अपमान ! उफ् ! क्या सोचेंगे ये सब लोग ?

कहार चतुर थे ? भांप गये कि श्रीराम शास्त्री नाराज हो गये। उन्होंने द्वार फिर खटखटाया।

'द्वार खोलिये ! कृपया इन्हे अन्दर ले लीजिये ?'

लेकिन किवाड फिर भी अन्दर से बन्द रहे।

थोड़ी देर बाद अन्दर से आवाज आयी, 'बहुमूल्य शाही वस्त्राभूषणो से सुसज्जित ये राजकीय घराने की कोई देवी मालूम होती हैं।'

'नही, नहीं, श्रीमन्त ! ये तो आपकी धर्मपत्नीजी जी ही उत्सव से ही वापस पधारी है। उसी वेशभूषा में ! कृपया इन्हें अन्दर ले लीजिये।'

'मेरी सीधी-सादी पत्नी ऐसे चमकीले भड़कीले शाही वस्त्राभूपण धारण नहीं कर सकती। तुम भूलकर रामशास्त्री के द्वार पर चले आये हो !' दृढता से आवाज आयी।

'कृपया द्वार खोल दीजिये। देर हो गयी। इन्हे अन्दर ले लीजिये ?'

किन्तु बार-बार आग्रह करने पर भी श्रीरामशास्त्री ने अन्दर से दरवाजा नहीं खोला। उनकी धर्मपत्नी शास्त्रीजी के हठी और कट्टर स्वभाव से भली-भाँति परिचित थी।

मन में निराश और सबके समक्ष लज्जित होकर उन्होंने कहारो को आज्ञा दी, 'पालकी वापस राजमहल मे ले चलो ?'

सभी वहाँ इस अद्भुत नाटकीय घटना पर विस्मय प्रकट कर रहे थे। अजीब सनकी व्यक्ति है ये महाराष्ट्र के महामन्त्री न्यायाधीश श्रीराम शास्त्री! अपनी ही धर्मपत्नी को भरी जनता मे अपमानित करके लौटा दिया ?

भला, ऐसा भी क्या फितूर है इनके दिमाग मे ?

महारानीजी ने सब हाल सुना, तो वे भी चकरा गयी। कुछ रहस्य समझ न पायी वे ?

'देखिये महारानीजी! मैंने आपसे निवेदन किया था न कि मेरे पतिदेव दिखावट और यह राजसी वस्त्राभूषण पसन्द नही करेंगे ?'

क्या बतावें, आपके पतिदेव का रहस्यपूर्ण व्यवहार कुछ समझ मे नही आया ?' महारानीजी ने दुःख प्रकट करते हुए कहा।

उनकी धर्मपत्नी ने वे राजसी तडक भडक वाले बहुमूल्य वस्त्र और हीरे-जवाहरात वाले कीमती आभूषण उतार डाले! फिर वह पहिले वाले साधारण वस्त्र ही धारण कर लिए। जैसे भारतीय गृहस्थी की सीधी सादी नारी के रूप मे आयी थीं, वे फिर वैसी ही मामूली हिन्दू नारी बन गयी।

'इन शाही वस्त्रो और आभूषणो ने तो मेरे घर और परि-

बार का द्वार ही बन्द कर दिया है'—उन्होंने क्षोभ पूर्ण दबे स्वर में वेदना उंड़ेलते हुए कहा—'लीजिये, इन सबको सधन्यवाद सेवा मे वापस करती हू ।'

इस वार वें महारानियो की तरह शान शौकत वाली पालकी में न बेठकर मामूली स्त्रियों को भॉति पूर्ववत् पैदल ही अपने घर वापस गयी ।

स्वय ही पुकारा, मै आपकी सहर्धमिणी आयो हू । कृपया अंदर आने दीजिये ?'

इस स्वर में न जाने कैसा माधुर्य और आकर्षण था कि इस बार उनके प्रेमपूर्ण स्वागत में घर का द्वार खिल हुए फूल की तरह खुला हुआ था । वे खुशी-खुशी अन्दर गयी । पति से क्षमा मॉगी । एक बार फिर पति-पत्नी दाम्पत्य स्वर्ग का सुख लूट रहे थे । वे वातावरण प्रेममय और सौहार्दपूर्ण था । बाते करने के बाद वे कुछ सतुलित हुई ।

'क्योजी, तब आपको क्या हो गया था ?' श्रीरामशास्त्री की धर्मपत्नी ने प्यार उंढेलते हुए पूछा ।

वे चुप थे । उन्होने दुहराया—

'आपने अपनी धर्मपत्नी के लिये ही क्यों घर का द्वार बन्द कर वापस लौटा दिया था ?

वे कुछ नही बोले । उनकी पत्नी बार-बार आग्रह करने लगी, 'कुछ तो वताइये, आपको क्या जिद हो आयी थी ! क्या था आपका दृष्टिकोण ?'

अब श्रीरामशास्त्री को कुछ उत्तर देने के लिये विवश होना ही पड़ा ।

'बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण या तो राजपुरुषों को शोभा देते है या मूर्ख उनके द्वारा अपनी मूर्खता, अज्ञान और छिछोरापन छिपाने का प्रयत्न करते है ।

'ओह ! यह क्या कहा ! क्या मतलब है आपका ? तो आभूषण क्या है फिर ?

'प्रिये ! सत्पुरुषों के आभूषण तो उनके सद्‌गुण, सदाचार और सादगी है। जीवन मे सरलता ही सुखद है। आदमी के व्यव हार मे सरलता और आचरण की स्वच्छता तथा स्पष्टता बनी रहे, तो समाज मे कुछ भी परेशानियाँ नजर न आये। सच जानो, हमारी झूठी शान शौकत—यह राजसी दिखावा—यह फैशन परस्ती और असली परिस्थिति से भिन्न रूप दिखाना ही जटिलताएं उत्पन्न करता है। यही झूठा दिखावा मुझे पसन्द नही आया था।'—सकुचाते हुए श्रीरामशास्त्री ने उत्तर दिया।

'ओफ ! आप मुझे इस गलती के लिये क्षमा करे। ससर्ग-दोष के कारण ही आपकी सहधार्मिणी से यह भूल हो गयी थी।'

और फिर दोनो पति-पत्नी दाम्पत्य-जीवन के स्वर्ग मे बिहार करने लगे। गलतफहमी आकाश मे घिरें काले-काले बादलो की तरह दूर हो गई। युग-युगान्तरो के दि य ईश्वरीय संस्कारो के परिणामस्वरुप ही यह दाम्पत्य स्वर्ग मिलता है। पति-पत्नी की सम्मिलित इकाई के अनुपात मे ही तो पृथ्वी पर स्वर्ग बिखरा पडा है। शास्त्रो मे कहा भी है—

भार्या पत्युर्व्रत कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्।
ससारोऽपि सारवान् स्याद् दाम्पत्योरेकभाव क

यदि पति-पत्नी एक हृदय हो, तो यह असार ससार भी सारवान् बन सकता है। यहाँ इसी धरती मे भी स्वर्ग के दर्शन करने हो, तो सद्‌गृहस्थ को अपने दाम्पत्य जीवन मे प्रेम, स्नेह, आत्मीयता और अभिन्नता (एक दूसरे की, रुचि सुख, सुविधा का ध्यान) की भावना पैदा करनी चाहिए।

●●●

धर्म-भावना की दृढ़ता पर ही सफलता की नींव निर्मित होती है।

सायंकाल का समय था। रात्रि का अन्धेरा सघन होता जा रहा था। दिन भर के परिश्रम के बाद श्रमिक थके-हारे अपने घरो को वापिस लौट रहे थे। पक्षी रात्रि के लिये विश्राम-स्थल की खोज में थे। गोधूल रजनी के काले अञ्चल में छिपने जा रही थी।

एक वृद्ध ब्राह्मण एक सुन्दर युवती को लेकर एक सम्पन्न गृहस्थ के द्वार पर खड़े थे। वे द्वार खटखटा रहे थे। रात्रि में कही ठहरने की इच्छा थी।

'क्या पुरन्ध्र इसी मकान मे रहते है? उन्होंने पूछा।

'कौन से पुरन्ध्र ?'

'वे ही जो ब्राह्मण परिवार के है ?' एक व्यक्ति ने पूछा।

'वे तो इस क्षेत्र में प्रख्यात है।' वृद्ध ने स्पष्ट किया।

'जी हाँ, पुरन्ध्र केवल ब्राह्मण होने के कारण ही सम्मानित नही है, प्रत्युत ज्ञान और सद्गुणो की दृष्टि से भी वे महान है। धर्मशील पुरन्ध्र इसी मकान में रहते है। उनका परिवार हर तरह सुखी-समृद्ध और सम्पन्न है। आप ठीक ही खोजते-खोजते आये हैं।'

'ठीक है। हम उन्ही को पूछते-पूछते आये है।'

पथिको ने फिर पुरन्ध्र के मकान का द्वार खटखटाया। पुन: आवाज लगायी, 'दरवाजा खोलिये। दरवाजा खोलिये।'

'आता हूं। ठहरिये !' की आवाज से धीरे-धीरे द्वार खुला, जैसे कली खिलकर पुष्प बन गयी हो।

एक सौम्य आकृति के पुरुष बाहर निकले। उनके शान्त मुख मण्डल पर प्रसन्नता और सन्तोष की शुभ्र आभा खेल रही थी।

पुरन्ध्र थे तो उच्च वर्ग के विद्वान् और सम्पन्न ब्राह्मण, किन्तु एक मेहनती किसान की तरह वे दिन भर परिश्रम करते थे। धर्म मे उनकी बडी आस्था थी। अन्तरिक्ष मे रहने वाले अदृश्य देवताओ की तरह यह प्रत्यक्ष दिखायी देने वाले भू-लोक-वासी ब्राह्मण देवता उस क्षेत्र में सबके श्रद्धापात्र थे। देवोपम गुणो को अपने चरित्र और जीवन मे उतारने के कारण 'सौभाग्यलक्ष्मी' उनके परिवार मे निवास करती थी।

आस्तिकता के महान् आदर्शो के प्रति निष्ठावान् बने रहने और आत्मनिर्माण की कठोर जीवन-साधना के कारण उनका यश चारो ओर फैला हुआ था। इसीलिए 'यश-लक्ष्मी' भी उनके कुटुम्ब मे रहने लगी थी। उनका कुल अपने प्रेम, सौहार्द, आतिथ्य धर्म और सचाई के कारण जाना-पहचाना था। पुरन्ध्र अपनी धर्म पत्नी, पुत्र, कन्या और पुत्रवधू आदि सबको भगवान् का प्रतिबिम्ब मानकर उनका यथोचित आदर-सत्कार और सेवा करते थे। उनका कुल उस क्षेत्र में आतिथ्य-धर्म के लिये प्रसिद्ध था। सौहार्द और सद्भाव के पवित्र वातावरण से आकर्षित होकर ही 'कुल-लक्ष्मी' का उनके घर में निवास था।

इस प्रकार सौभाग्य-लक्ष्मी, यश-लक्ष्मी और कुल लक्ष्मी—तीनो महादेवियो के पुण्य-निवास के कारण पुरन्ध्र का परिवार धर्म, पुण्य, चरित्र और सम्पन्नता की दृष्टियो से उस क्षेत्र में प्रसिद्ध था। प्रायः अतिथि आते रहते थे। मस्तिष्क की प्रखरता, बुद्धि, विचारधारा, तर्क-विवेचना, सूझ-बूझ के कारण वे ब्राह्मणत्व के प्रतिनिधि थे।

× × ×

एक बार ईर्ष्यावश पाप और वासना ने ब्राह्मण पुरन्ध्र के चरित्र की परीक्षा लेने की एक कुटिल योजना बनायी थी। असुर-जगत के लोग अपने बुरे स्वभाव के कारण सहज ही सत्पुरुषों से द्रोह करते है और उन्हे गिराने तथा उनके सुखी जीवन में बाधा डालने का प्रयत्न करते रहते है। वे चुपचाप कुछ न कुछ उत्पात करते ही रहते है। यहाँ भी वे प्रयत्नशील थे।

'पाप' बहुत दिनों तक पुरन्ध्र के घर के चारो ओर चक्कर लगाता रहा था, पर अभी तक घुस नही पाया था। 'वासना' ने भी उसके परिवार में प्रविष्ट होकर उत्पात मचाना चाहा था, पर कोई छिद्र न मिला था। पाप और वासना के सब प्रयत्न अब तक निष्फल सिद्ध हुए थे।

इन दोनो शत्रुओं ने सुखी परिवार के सदस्यो में फूट, कलह और मनमुटाव उत्पन्न करने के प्रयत्न किये थे, किन्तु विवेक और सद्बुद्धि के कारण वे इन दुष्टों के पंजे मे न आये थे। उनके कुटिल प्रयत्न अब तक चल रहे थे।

एक दिन पाप को चिन्तित देख वासना ने उससे पूछा—'आप प्रतिदिन दुखी दिखायी देते है। क्या आप अपना मानसिक वेदना मुझ पर स्पष्ट करेंगे?'

चिन्तित मुद्रा तथा दुखी स्वर में पाप ने उत्तर दिया—

'मै पुरन्ध्र के पुण्य और पुरुषार्थ को जाँचने तथा उन्हे धर्म पथ से भ्रष्ट करने की युक्तियाँ सोचा करता हूं। इनके परिवार को दुखी और कलहपूर्ण बनाना चाहता हूं, पर असफल हो रहा हू। आज सर्वत्र पुरन्ध्र का यशोगान हो रहा है। वह मै सहन नहीं कर सकता।'

वासना बोली, 'जब तक इसे धर्म से विमुख न किया जायगा तब तक यह विपत्तियो के जजाल मे न फँसेगा। धर्म को दृढता से पकड़े रखने वाले पर हम लोगो का वश नही चलता। पर क्या इनमे कुसस्कार सर्वथा नही है ?'

'है क्यो नही ? मनुष्य मे जन्मान्तरो के कुसस्कार और दुष्ट मनोविकार छिपे रहते है, पर पुरन्ध्र ने उन्हे अपने वश मे कर लिया है। इसी से वह नीचा नही देख पा रहा है।'

वासना ने उत्तर दिया, 'मैं आपके साथ हूं।' कोई बदला लेने की युक्ति सोचिये। विकट परीक्षा हो जाय।'

दोनो रात भर कूट मन्त्रणा करते रहे।

सुबह हुई। तब तक उनकी दुष्ट योजना बन चुकी थी। बड़ी कुटिल युक्ति थी।

पाप के रूप अनेक है। वासना तरह-तरह से परेशान करती है। पाप के चगुल में फँसकर मनुष्य बार-बार दु.ख पाता है। वासना के भ्रम जाल में वह अपने वास्तविक लक्ष्य को भूल जाता है। उसका विवेक उसे अधर्म में प्रवृत्त होने से नही रोक पाता।

विषयो मे प्रवृत्ति के कारण ही प्राय लोग पाप कर्म करते है। पाप हमे ठगने के तरह-तरह के रूप बनाता है। उसका मायाजाल अनायास ही समक्ष में नही आता। पता नहीं वह किने, कब, किस रूप मे अपने पजे मे दबोच ले ?

वह सारा दिन तरह-तरह की कुमन्त्रणाओ मे व्यतीत हुआ। उन्होने अपनी युक्ति सोच ली थी।

वे दोनों रात की प्रतीक्षा देख रहे थे। पाप कर्म प्राय अंधेरे मे ही होते है दोनो से छद्मवेश धारण किये और चरित्र की परीक्षा लेने पहुंच गये।

पाप को अपना रूप बदलते क्या देर लगती ! उसके पास मायाजाल का विपुल भण्डार था। वह इच्छानुसार जेसा चाहे, वैसा ही वेश धारण कर सकता था।

'आओ, अब हम अपना कुटिल नाटक प्रारम्भ करे।'

वासना ने आज्ञा का पालन करते हुए कहा—

जो आज्ञा, लोजिये योजना के अनुसार मैं विश्व को मुग्ध करने वाली सौन्दर्य-विभूषित युवती का रूप धारण करती हूं। मेरा यह रूप-रंग पुरन्ध्र जैसे धर्मशील ब्राह्मण को कर्त्तव्य से विचलित करके रहेगा।'

देखते-देखते दोनो अपने रूप बदलने लगे।

क्षणभर मे उनके रूप बदल गये। वासना बदलकर एक बड़ी सुन्दरो कन्या बन गई। उसका यह आकर्षक रूप किसी को भी अपने मोह-पाश मे फँसाने के लिये यथेष्ट था।

पाप ने क्षणभर मे अपना रूप वदलकर एक अवि वृद्ध ब्राह्मण का छद्मवेश धारण कर लिया। उसकी कमर झुकी हुई थी, त्वचा पर झुर्रियाँ थी, केश श्वेत और दात टूटे हुये थे। वह एक लकड़ी हाथ मे लिये कुबड़ाकर लड़खड़ाता चल रहा था।

इस प्रकार एक वृद्ध और उसके साथ एक सुन्दरी युवती! ये ही दोनो पुरन्ध्र का दरवाजा खटखटा रहे थे।

'हमे आपसे जरूरी काम है। दरवाजा खोलिये!'

× × ×

पुकार सुनकर चकित और जिज्ञासु पुरन्ध्र बाहर निकले। आप कोन है? मै आपकी क्या सहायता कर सकता हूं?

'महाभाग पुरन्ध्र! आपका यशोगान सुनकर यहां तक चले आये है हम लोग। हम मुसाफिर है। वहुत दूर से चले आ रहे

है। बीच मे रात पड गयी है। रात मे आश्रय चाहते है। विपत्ति मे है।'

'क्या विपत्ति आ पडी आप पर ?'

'महाभाग पुरन्ध्र ! मुझ वृद्ध ब्राह्मण को आज रात ही अगले गाँव मे जरूरी पहुंचना है। आप देख रहे है, रात्रि होने को है। खतरा है सामने।'

'फिर मेरे घर मे—।'

'वही तो निवेदन कर रहा हू। ऐसे अँधेरे मे मै अपनी युवती पुत्री के साथ आगे यात्रा नही कर सकता। रास्ते में चोर-डाकुओ का आतङ्क है। नदी-नालो और हिंस्र जानवरो का भय है। दुष्ट प्रकृति के आदमी भी शठता कर सकते है।

आपसे मेरी बस, थोडी-सी प्रार्थना है। विपत्ति मे सहायता दीजिये ...।'

'आप अपनी बात स्पष्ट नही कह रहे है।'

'मुझे मालूम है कि आप विख्यात धर्म परायण पुरन्ध्र है। पुण्य और धर्म के लिए हर किसी के प्रिय पात्र है। कोई बिना सहायता के आपके द्वार से खाली नही गया है।'

'मुझे आत्मश्लाघा पसन्द नही है। आप अपनी इच्छा सक्षेप मे कह डाले।'

'वही तो कहने जा रहा हू'—वृद्ध ने कहा। मै आगे अपनी युवती कन्या को रात मे नही ले जा सकता। हर तरह का खतरा है। उधर मुझे जरूरी काम है, इसलिये रुक भी नही सकता। अपनी पुत्री को कुछ देर तक आपके धर्मशील परिवार में छोड़ने की समस्या है। कृपाकर मेरे लौटने तक इसे अपने यह शरण दे। मै जल्दी ही वापस आकर अपनी धरोहर सँभाल लूगा।'

पुरन्ध्र थोडी देर सोच-विचार मे पड गये।

अरे ! आप किस चिन्ता में पड गये यह तो छोटी सी प्रार्थना

'कछ नही, यो ही कुछ सोच रहा था।'

'आप जैसे धर्मशील व्यक्ति के चरित्र पर अविश्वास की नो कोई गुंजाइश ही नही है।'

'ठहरिये, मुझे तनिक और सोच लेने दीजिये।'

'पुरन्ध् के मन म उलझन थी। वे समस्या पर हर दृष्टि से विचार रहे थे।

पाप फुसलाकर कह रहा था–'मेरी दुर्बल अवस्था को देखिये। भय से विकल होकर शरण पाने के लिये उस पुरन्ध् द्वार पर आया हूं, जो पुण्य और धर्म के प्रति निधि माने जाते है। क्या अतिथि को घर से निराश वापिस करेंगे आप ?

पुरन्ध् के मन मे द्वन्द्व चल रहा था। वे सोच रहे थे, 'अपने द्वार पर आये हुए अतिथि को तनिक सी प्रार्थना को न मानना भी धार्मिक मर्यादा के प्रतिकूल होगा। भला यह ब्राह्मण की पुत्री कितना खा-पी लेगी ? घर में कितना स्थान ले लेगी ? और फिर अधिक दिनो की याचना भी तो नही की जा रही है। सचमुच मार्ग मे चोर-डाकुओ का भय है। गुंडे युवती कन्या को परेशान कर सकते है। गरीब ब्राह्मण-कन्या को शरण दें देना आतिथ्य-धर्म है। धर्म की रक्षा तो करनी ही चाहिये।'

अन्त मे उन्होने अपना निर्णय दे दिया।

'ठीक है ब्राह्मण देवता, आपकी भयानक परिस्थिति देखकर मै आपके लौटने तक आपकी पुत्री को अपने परिवार मे रख लेता हू। यह मेरी पुत्री और पुत्रवधू के साथ रह लेगी।'

प्रसन्न होकर वृद्ध बोला, 'मैं धन्य हो गया। ले बेटी, अब तू महा भाग पुरन्ध् के यहाँ रह। मै जल्दी ही वापस लौटूंगा।'

इस प्रकार उस युवती को पुरन्ध् के परिवार मे स्थान मिल

गया । पाप ने अपनी कुटिल योजना कार्यान्वित करनी प्रारम्भ कर दी।

× × ×

पाप की जड जमते ही उसका विषवृक्ष फैलने लगा ।

वासना-सुन्दरी ने परिवार मे अपना कुटिल मायाजाल फैलाना आरम्भ कर किया । वह तरह-तरह के श्रृङ्गार बनाती और अपने रूप-योवन मे पुरन्ध्र के शौचादि के जल से लेकर उनके स्नान पूजन तक का समस्त दैनिक कार्य वह कुटिल स्त्रियोचित मिथ्या प्रेमाभिनय के साथ सम्पन्न करती । वह सदैव उनके सामने ही आकर्षक भाव-भङ्गिमाओ से अभिनय करती रहती । हर प्रकार उन्हे धर्म पथ से च्युत और पाप की ओर आकृष्ट करने के प्रयत्न करती रहती । वह युवती पुरन्ध्र के पूजन निवृत्त होने पर उनसे प्रेममिश्रित मधुर बातें करती । प्रेम की कथाए सुनाती मन मे पवित्र भाव रखते हुए भी वे उस माया-विनी वासना के जाल मे फँसकर ध्यान से उसकी बातो मे कुछ रस लेने लगे । पाप का कुप्रभाव बढने लगा । यद्यपि उनके मन मे धर्म रक्षा का भाव ही था ।

पुरन्ध्र का मन अपने मुख्य कार्य से हटने लगा । अब उनकी प्रवृत्ति श्रम की ओर कम होने लगी । उन्हे आलस्य और काम चोरेपन ने घर दबाया । उनकी प्रसुप्त वासनाएँ और कुसंस्कार जाग्रत् से होने लगे । आलस्य, प्रमाद कुछ-कुछ प्रकट हो गये । काम मे मन न लगाने के कारण उनकी आमदनी कम हो गयी । उनकी सम्पन्नता दरिद्रता में बदलने लगी अब वे देर तक सोया करते । अपनी आय को सतुलित रखने की ओर उनका ध्यान कम होने लगा । व्यसन की ओर भी उनकी प्रवृत्ति बढ़ी ।

एक रात पुरन्ध्र सो रहे थे । अचानक उन्हें एक विचित्र स्वप्न दीखा। उन्हे ऐसा लगा जैसे कोई दिव्य ज्योतियुक्त देवो उन्हे जगाकर कह रही हो—

पुरन्ध्र ! अब मै तुम्हारे घर से असन्तुष्ट होकर जा रही हू। बहुत दिन आनन्द से रही, अब तुम धर्म को दूर हटाने लगे हो। अत मै यहाँ नहीं रह सकती।'

'लेकिन आप कौन हैं देवी।'

देवी जा रही थी। पुरन्ध्र ने उद्विग्न होकर करुणाजनक स्वर में फिर पूछा, 'आप कुछ तो बताइये ! क्यो जा रही है !'

'मै तुम्हारी सौभाग्य लक्ष्मी ! ओह, मैं कितना भाग्यशाली हू। पर…… हाय आप क्यो मुझे छोड़कर जा रही है देवी ! क्या अपराध हुआ है मुझ से ?' उनके स्वर में कायरता थी ।

'तुमने वासना को अपने घर में आश्रय दिया है।'

'कौन-सी वासना !'

'मूर्ख, यह युवती छद्म रूप मे वासना का बदला हुआ रूप ही तो है।'

'ओह ! वासना का परिवर्तित रूप ?'

'उसे परिवार मे आश्रय देने के कारण तुम्हारा भाग्य बदलने लगा है। तुम्हारे धर्म, पुण्य, पुरुषार्थ का क्षय हो रहा है। जहाँ वासना का राज्य है, वहाँ मै नही ठहर सकती।'

'रुको कृपा करो देवी सौभाग्य लक्ष्मी ! मै आपको न जाने दूँगा। बिना सौभाग्य के सब व्यर्थ है।'

जैसे ही पुरन्ध्र ने सौभाग्य लक्ष्मी को पकड़ने का प्रयत्न किया कि उनके नेत्र खुल गये । देखते-देखते सौभाग्य लक्ष्मी पुरन्ध्र के घर निकल गयी।

उनके जाने से पुरन्ध्र का सौभाग्य समाप्त सा हो गया। उनकी सम्पन्नता समाप्त होने लगी । उनकी सचित यश और

गौरव अब समाप्त हो चले। लोग उनके चरित्र के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें करने लगे। अनेक प्रकार की कमजोरियां बताने लगे।

'पुण्य और धर्म का प्रति निधि पुरन्ध्र अब दुराचारी हो गया है।' कोई कहता।

दूसरा व्यङ्ग कसता, 'उसने एक युवती को घर मे रख छोड़ा है और उससे अवैध सम्बन्ध जोड़ लिया है।'

'अब वह पाप की ओर प्रवृत्त होने लगा है।'

पड़ौस मे जितने मुँह थे, उतने ही दृष्टिकोण और उतनी ही आलोचना।

पुरन्ध्र अब भी पूजा, अर्चना, सन्ध्या और नित्य कर्म करते थे पहले ही। उनके मन पर वासना का अधिकार नही हो पाया था। अब वे उस कन्या को सशय के नेत्रो से देखने लगे थे। वे उधर से सतर्क रहने का प्रयत्न करने थे।

पर बड़े धर्म भीरु थे वे। उस पर दया आ जाने से, कन्या-को निराश्रित बाहर भी कैसे निकालते! वे नित्य उसके पिता के आने की प्रतीक्षा करते रहते। उसका पिता आये और अपनी पुत्री को सम्भाल ले। उन्हे मुक्ति मिले उस जजाल से। दूसरे की धरोहर को कैसे फेंके! अजीब उलझन थी।

उनके नेत्रों मे एक क्षण के लिये जरा भी दूषित भाव का उदय नही हुआ था, किन्तु भावुक भुलक्कड़ जनता को तो संतुष्ट नही किया जा सकता था।

कुटिल ब्राह्मण कन्या वासना अब पुरन्ध्र के और भी अधिक समीप रहने लगी थी। वह उन्हे पाप की ओर ले जाने का अधिकाधिक यत्न करती रहती थी। वह अब और भी आकर्षक रूप, रङ्ग और मादक, मोहक हाव-भाव प्रकट करने लगी। वह

उनसे वासना उद्दीप्त करने वाला हास्य और विनोद करती अपने रूप, यौवन और माया जाल में उन्हे अपने धर्म-कर्म को भुलाये रखने का पाप प्रयत्न करती रहती थी।

इस प्रकार मोह जाल और वासना के कुचक्र में कुछ सप्ताह बीत गये। उनके पॉव वासना की कीचड़ में बुरी तरह फँस गये। दया के कारण ही हुआ, पर वासना को समीप रखने के कारण उन पर असर तो हुआ ही, सन्देह दृष्टि होने पर भी वे उसकी ओर कुछ खिच से गये, वह कन्या उन्हें भली मालूम होने लगी। पवित्र हेतु से किया हुआ भी 'बुरा संग' पतन करने वाला होता है।

एक रात फिर सोते समय स्वप्न मे एक और अपूर्व दिव्य ज्योति प्रकट हुई और बोली, 'पुरन्ध्र ! उस ब्राह्मण कन्या रूप वासना के माया जाल मे लिप्त रहने के कारण मै भी तुम्हारे परिवार से जा रही हूं।'

'कौन हो तुम देवी !' करुण स्वर में उन्होने दूसरी देवी से पूछा।

'मै हू तुम्हारी यश लक्ष्मी ! मेरे ही कारण तुम्हारी प्रसिद्धि सर्वत्र फैली हुई थी। सभी तुम्हारे पुण्य और पुरुषार्थ के गुण-गान करते थे। मेरे ही कारण तुम यशस्वी हो धर्म क्षेत्र में।'

'मत जाइये देवी !' करुण स्वर में पुरन्ध्र ने प्रार्थना की।

लेकिन यश लक्ष्मी ने एक भी अनुनय-विनय न सुनी। वे गायब हो गयी।

पुरन्ध्र करुणा से प्रेरित होकर रो दिये !

यश छिन जाने से लोक-समाज, मे पुरन्ध्र की अप्रतिष्ठा होने लगी। कोई उन्हे उच्च पद न देता, उनका स्वागत-सत्कार न करता। सार्वजनिक अवसरों पर उन्हें आमन्त्रित तक न किया जाता। और तो और, स्वयं उनके परिवार ने उनकी अप्रतिष्ठा

करनी शुरू कर दी। वे पृथक हो गये। पुरन्धू के पास केवल वह ब्राह्मण-कन्या ही अवशेष रह गयी। वे उसके वृद्ध पिता के लोटने की प्रतीक्षा उत्कटता से कर रहे थे।

एक दिन फिर उसी प्रकार की एक दिव्य ज्योति स्वप्न में प्रकट हुई।

'कौन है आप देवी!' पुरन्धू ने सशङ्कित स्वर मे प्रश्न किया।

'मैं हूं तुम्हारी कुल लक्ष्मी! तुम्हारे कुल का गौरव मेरे पास था। पर इस बदनामी के कारण अब मैं तुम्हारे परिवार मे नही रह सकती।'

रोकते-रोकते कुल लक्ष्मी पुरन्धू से रूठ कर चली गई।

'कब आयेगा इस ब्राह्मण कन्या का पिता!' झझलाकर पुरन्धू कह उठते—'वह इस मुसीबत को ले जाये, तो मेरा छुटकारा हो। मैं गिरता ही जाता हू।'

वे उत्सुकतापूर्वक उस ब्राह्मण की प्रतीक्षा करते रहे। पर यह सब तो पाप का माया जाल था। वह लौटकर क्यो आने लगा? उसने तो वासना को सदा की सङ्गिनी बना रखने के लिए यहाँ छोडा था। पर अब पुरन्धू सावधान हो गये थे। उनके अन्तकरण में तो पवित्रता थी ही।

फिर कुछ सप्ताह उसी प्रकार बीत गये।

एक रात्रि मे फिर उन्हे स्वप्न हुआ। एकाएक उन्हे एक ज्योति पूर्ण दिव्य पुरुष घर से बाहर निकलता-सा प्रतीत हुआ।

कई बार ऐसा ही हो चुका था। उन्होने सोचा, इस देव पुरुष को घर से न जाने देगे। चाहे कुछ भी क्यो न हो। उन्होने उनके पाँव पकड लिए।

श्रद्धा पूर्वक उन्हे प्रणाम करते हुए वे पूछने लगे—

'भगवान् ! आप कौन है ? मेरे घर से क्यो बाहर जा रहे है ?'

'मैं धर्म पुरुष हूं । तुम्हारे परिवार से सौभाग्य, यश, और कुल—जैसी देवियाँ चली गयी है । अब भला, इन सबके बिना मै तुम्हारे परिवार में अकेला रहकर क्या करूंगा ? मैं भी निकलता हुं इस दूषित वातावरण से ।'

'नही, नही ऐसा कदापि न होने दूंगा—मै धर्म को न जाने दूगा ।' वे उस देव पुरुष के पांवों मे पड़ गये । अनुनय विनय करने लगे ।

करुणा भरे स्वर और नेत्रों में आँसू भर कर वे कहने लगे—'देव ! बुरा न माने । मैंने जो कुछ किया है, वह केवल आप (धर्म) की मर्यादा के लिए ही तो किया है । मैंने उस कन्या को घर मे शरण दी केवल आपके ही कारण । आपकी प्रेरणा से अतिथि धर्म की रक्षा के हेतु ही । मैने अतिथि-भावना को पाला है । वासना से मेरा कोई सरोकार नहीं है । मेरा अन्तर आपके लिये उसी प्रकार श्रद्धा पूर्ण है । मेरे हृदय में आपका शुभ सिहासन सदा ही सुरक्षित है । मेरे जीवन मे आपके मुझे कदापि न त्यागे । मैं धर्म के विना एक क्षण भी नहीं रह सकता, मैं आपके बिना कुछ भी पसन्द नही करता । धर्म तो सबकी रक्षा करता है । मेरी रक्षा कोजियं भगवान् !'

पुरन्ध्र ने कस कर उस देव पुरुष धर्म के चरण जोरो से पकड लिये, धर्मराज को अच्छी तरह पता लग गया कि पुरन्ध में अब भी वही धर्म रक्षा का पवित्र भाव, वही सात्विकता, पवित्रता, श्रद्धा और वही पुण्य की सभी भावनाएं है । केवल उन पर माया का हल्का-सा आवरण आ गया है । उस पाप के

आवरण को मेरे भक्त के मन से मुझे दूर करना चाहिए। पुरन्ध्र परीक्षा में सफल हुए।

धर्म बाहर न जा सके। चुपचाप धर्म पीछे लौट आये और पुरन्ध्र की देह मे अन्तलीन हो गये। धर्म के आते ही पुरन्ध्र फिर प्रदीप्त हो उठे। देखते-देखते उनका काया कल्प हो उठा। उनका व्यक्तित्व चमक उठा। आशा, उत्साह, संन्तोष, सन्तुलन का उज्ज्वल प्रकाश मुख मण्डल पर दिखाई दिया।

धर्म को बाहर न जाते देचकर उनके सौभाग्य, यश और कुल लक्ष्मियाँ फिर नयी-नयी प्रसन्नता लेकर वापस लौट आयी। जहाँ धर्म का निवास है, वहाँ इनका रहना अनायास ही जरूरी था।

इस प्रकार पाप का कुचक्र असफल हुआ। वह छद्मवेशी वासना कन्या गायब हो गयी। धर्म के रहने से फिर सौभाग्य, यश और गौरव उनके शाथ रहने लगे।

दृढ व्रती पुरन्ध्र पुन पहले की तरह धर्म भावना की नीव के कारण सौभाग्य, यश और कुल की विभूतियो से परिपूर्ण हो गये। जहाँ धर्म है, वहाँ सब कुछ स्वयं ही निवास करने लगता है। धर्म को साधने से सब कुछ सध जाता है। धर्म मे सव कुछ सम्मिलित है।

मानवता की रक्षा के लिए साहसपूर्ण बलिदान

"क्या कोई ऐसा साहसिक व्यक्ति है, जो अपने अंगो पर रेडियम के प्रयोग की अनुमति देकर कैंसर की चिकित्सा को आगे बढा सके ?" यह एक चुनौती थी।

चिकित्सा का क्षेत्र डाक्टरों तथा अनुसंधान-कर्त्ताओं के लिए तो कष्ट साध्य है ही रोगों के कीटाणुओ सम्बन्धी प्रयोग भी कम खतरनाक नही है ऐसे किसी साहसिक व्यक्ति की तलाश थी जो कैंसर जैसे भयानक रोग सम्बन्धी परीक्षणों के लिए अपना शरीर बलिदान कर सके ! अनुसंधान के लिए शहीद हो सके !!

आज हर एक समझदार व्यक्ति जानता है कि कैंसर कैसा खतरनाक रोग है ! इसके साथ मृत्यु जुडी हुई है। अमुक व्यक्ति को कैंसर हो गया है, यह सुनकर रोंगटे खडे हो जाते है ! मौत की घण्टी सुन पडती है।

उन रोगियो की कल्पना कीजिये, जो कैंसर से पीड़ित हो जाते है तिल-तिल कर फोडा गलता जाता है। गलते-गलते अन्त मे मनुष्य संज्ञाशून्य हो जाता है। फिर दर्दनाक मौत ! उफ् !!

उस मृत्यु का दारुण कष्ट कोई सहृदय व्यक्ति ही अनुभव कर सकता ! उनकी पीडा को अपनी आत्मा मे कौन अनुभव कर सकता ! शायद बहुत कम, हजारों में केवल एक ! कैंसर का आक्रमण मृत्यु का ही दुखद कारुणिक सन्देश है।

चिकित्सा शास्त्री गत वर्षो में कैंसर की चिकित्सा के लिये भांति-भाँति के प्रयोग कर रहे थे। यह रोग कैसे फैलता है ?

इसके कीटाणु क्यों कर जन्म लेकर बढते और शरीर का क्षय करते है ? इसका उपचार क्यो कर किया जाय ? आदि अनेक समास्याये चिकित्सकों के सामने थीं।

आज रेडियम द्वारा कैंसर का उपचार सरल और सुगम हो गया है, किन्तु यह प्रसङ्ग उस समय का है, जब चिकित्सक उसके विविध प्रयोगों में लगे थे और रोग पर इसकी प्रतिक्रिया को खोज कर रहे थे।

रेडियम का उपचार एक इतना खतरनाक उपाय था कि डाक्टरो की हिम्मत इसका प्रयोग करने मे हारती थी। कारण यह था कि रुग्ण अङ्ग के अतिरिक्त रेडियम की किरणें रोगी के जिस अङ्ग पर पड जाती थी, वह बिल्कुल गल जाता था। ऐसी दशा मे उसकी वैज्ञानिक जॉच पडताल किये बिना उसका प्रयोग बुद्धिमानी नही समझा जाता था।

लेकिन अनुसधान कर्त्ताओ को वैज्ञानिक प्रगति के लिये प्रयोग के साधन और सुविधाए चाहिये। नए से नए औजार, औषधियां और ऐसे साहसिक व्यक्ति चाहिए, जो अपने अङ्गों पर प्रयोगो की अनुमति देकर वैज्ञानिक प्रयोग को आगे बढाने मे सहायक हों जो मानवता की प्रगति मे अपनी आहुति दे डालें। शरीर का मोह न करें। उसे समाज के हित और प्रसन्नता के लिये अर्पित कर दें।

यह कार्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि डाक्टर की बुद्धि और खोज की नई दिशा ! जो व्यक्ति प्रयोग के लिये अपना बहुमूल्य शरीर देता है, वह भला युद्ध मे देश के लिये शहीद होने वाले व्यक्ति से क्या कम है !

अपने अगो पर रेडियम के प्रयोग की अनुमति देकर वैज्ञा-

निक प्रगति के कार्य को आगे बढाने का दूसरा ममलब था प्राणोत्सर्ग !

'क्या कोई ऐसा साहसी व्यक्ति है, जो रेडियम की प्रतिक्रिया को अपने कीमती शरीर पर करने दे ? शहीद होने को तैयार हो जाये ?' डाक्टर पुकार रहे थे । उन्हे ऐसा जीवित आदमी चाहिए था जो रोग को अपने शरीर मे फैलते हुए देखे और मरने को हर क्षण तैयार रहे । अपनी ऑखो से अपनी मौत देखे ।

पर ऐसा कोई धीर वीर व्यक्ति न था, जो मानवता की भलाई और उन्नति की वेदी पर अपना दान कर सके ।

यह पुकार एक वीर महिला ने सुनी और वह रेडियम के उपचार के खतरनाक प्रयोग को अपने शरीर पर करवाने को तैयार हो गई । इस साहसी महिला का नाम श्रीमती एना—राव्टंस !

श्रीमती एना सव्टर्स यह कहते हुये प्राणोत्सर्ग के लिये तैयार होगई—' यदि मेरे एक प्राण जाने से सहस्रो रोगियों की प्राण रक्षा हो सके और मनुष्य के रोग-शोक दूर करने में चिकित्सा-विज्ञान प्रगति कर सके, तो मुझे मरने में शोक नही, हर्ष ही होगा । यह शरीर मानव मात्र की उन्नति और अनुसधान के लिये बलिदान है । यदि इस एक शरीर के जाने से सैकडो हजारो रोगियो को चिकित्सा में सहायता मिल सकती है, तो मे सहर्ष अपने शरीर पर प्रयोग करवाने और फलस्वरुप मरने को तैयार हूं ।'

कैसा साहस पूर्ण सकल्प ! मानवता की रक्षा के हेतु कितना बड़ा वलिदान !!

उन्होने अन्त मे अपना बचन पूरा कर दिखाया । धन्य है वे आत्मा जो मानवता की सेवा और रक्षा मे प्रयत्नशील है !

सिसकती लाशों में महकती मानवता की सुगंध !

रात्रि का अन्धकार ! एक टिमटिमाती हुई लालटेन ! हलके से प्रकाश मे ढीले-ढीले वस्त्र पहिने एक मनुष्य । उसके हाथ में कुछ नजर आ रहा है, किन्तु साफ पहचाना नहीं जा रहा है ।

क्या है वह ? यह मनुष्य क्यो युद्ध भूमि में फिर रहा है ? यह सिसकती लाशो मे क्या ढूँढ रहा है ?

आइये, इसे समीप से देखे ।

पोशाक से यह व्यक्ति पठान सा दिखायी देता है, वही ढीली ढाली सलवार ! लम्बा मैला सा कमीज, सिर पर साफा और पावो मे अफगानी सैण्डिल ! लम्बी सी दाढी और मूछे ! उनमे बुजुर्गी के प्रतीक बर्फ से श्वेत बाल । ढलती हुई आयु ! लड-खडाते कदम ... ।

यह इसके हाथ मे क्या ? एक हाथ मे लालटेन तो स्पष्ट पहचानी जाती है, पर दूसरे हाथ मे क्या है ?

क्या यह कोई वस्त्र है ? क्या यह कोई दवाई है ? वह तो कोई बरतन सा दिखाई देता है । कौन सा बरतन है यह ? वह बड़ी संभाल कर सावधानी से बरतन को हाथ में लिये है ।

यह तो एक लोटा है । शायद इसमे कुछ भरा है । बिखर जाने के डर से यह धीरे-धीरे युद्ध भूमि मे सिसकती लाशो मे किसी को ढूँढ रहा है ।

उसे तनिक ठोकर लगी । लोटे से बिखरा जल ! तो पानी है इस लोटे मे । फौजी अरब के हाथ मे जल से भरा लोटा है ।

लेकिन जल से भरे लोटे की इस युद्ध भूमि मे

क्या आवश्यकता आ पड़ी ? एक हाथ मे टिमटिमाती लालटेन दूसरे में जल से भरा लोटा।

× × ×

हजरत मुहम्मद की मृत्यु के कुछ वर्षो बाद अरवो और रूमियो मे घनघोर युद्ध हुआ था दोनो पक्षो से मुसलमान ही युद्ध कर रहे थे। मुस्लिम इतिहास मे इस युद्ध का अनेक बार उल्लेख किया गया है। इतिहासकार लिखते है कि इस युद्ध में प्रलय जैसा दृश्य उपस्थित हो गया था। दोनो पक्षो में असंख्य अरब और रूमी लोग जिन्दगी की होली खेल बैठे। अरवो और रूमियों में घायलो का तो अनुमान ही लगाना कठिन था। ऐसा लगता था कि आदमी में शैतान जाग उठा हो। शैतानियत के निर्दय, निर्मम और रौद्र रूप ने दसो दिशाओ में हाहाकार मचा दिया था।

ि.पुल जन सख्या की हत्या रक्तपात और मार काट को देखकर ऐसा लगता था मानो शिव का ताण्डव हो रहा हो। जैसे अनीति, अनैतिकता, उद्दण्डता से क्षुब्ध होकर शिव न अपना विध्वसकारी रौद्र रूप प्रकट कर लिया हो। उसके गले में पड़े हुए भगवान सर्प विष भरी फुफकारे हुंकार रहे हों। उनके डमरू के नाद से दसो दिशाएँ काप रही हो। नर-मुण्डों से उनकी श्रृङ्गार सज्जा की जारही हो। औघडदानी के रक्तिम खप्पर से कुछ दुष्ट पापियों का गरम-गरम रक्त भरा हो ! शिव के प्रलयङ्कारी ताण्डव की हर थिरकन में मौत की भीषण ज्वालाए उठ रही हों। उस गगनचुम्वी दावानल से पाप, दुष्टता और समाज को उदण्डता सदा के लिये दग्ध होने जा रही हो।

× × ×

उस दिन घमासान युद्ध होता रहा । अरब और रूमी लोग खब जमकर लडे । उस भयङ्कर विभीषिका मे दोनो पक्षो के सैकड़ो सैनिक मारे गये । हजारो घायल सिपाही मौत के कगार पर खडे हो करुण चीत्कार से युद्ध भूमि के श्मशान जैसे वातावरण को विक्षुब्ध कर रहे थे । युद्ध स्थल में मरे हुये सैनिको का रक्त विखरा पडा था अर सूखे रक्त की 'दुर्गन्ध फैल रही थी। सैनिको के अङ्ग-प्रत्यङ्ग यत्र-तत्र कटे पड़े थे । मौत का अट्टहास युद्ध भूमि मे दिखायी दे रहा था । मनुष्य मे जो राक्षस छिपा हुआ है, यह सब उसी की हिंसा थी । रक्त की क्रूर होला ।।

लेकिन वे दिन मानव जीवन मै सत्य, प्रेम न्याय से भी खाली न थे । दैनिक जावन और समाज में सात्विक नैतिक नियम भी काम मे आते थे । वे जनता के दैनिक जीवन के अविभाज्य अ ग थे । लडाई होती जरूर थी, पर युद्ध के उपरान्त थकने पर रात्रि मे सैनिको के लिए विश्राम और चिकित्सा की व्यवस्था थी ।

प्राय दिन भर दोनो पक्षो मे भयङ्कर युद्ध होता रहता, खूब जमकर लड़ाई होती, भयङ्कर रक्तपात चलता रहता, पर सायकाल थके मादे, घायल सिपाहियो के थके हुये या क्षत-विक्षत शरीरो को विश्राम देने की व्यवस्था थी । दोनो शत्रु पक्ष इस निर्णय मे एक मत थे कि युद्ध की रात में किसी प्रकार का कोलाहल, उत्पात, प्रहार या धोखेबाजी से आक्रमण न किया जाय ।

प्रात काल से ही दोनों ओर मोर्चे बँध जाते, दिन भर खूब युद्ध होता, उसमे अनेक सिपाही सदा के लिये मौत के क्रूरजबडो द्वारा चबाये जाते, किन्तु सायंकाल होते होते लड़ाई बन्द होने का बिगुल बजता । तब थके हुए सैनिक अपनी थकान उतारते या चिकित्सा कराते ।

एक दिन सायकाल ऐसे ही वह युद्ध वन्द हुआ। रूमी कौर अरब सैनिक थके हुए थे। थके हुये सैनिक आराम करने लगे, घायलो की मरहम-पट्टी होने लगी। मरे हुये सैनिको को छोड़-कर लोग चले आये। युद्ध भूमि मे भीषण श्मशान की मायूसी छा गई।

युद्ध भूमि मे मरते हुए सैनिक शारीरिक पीड़ा से अब भी कराह रहे थे। उनका दु.ख-दर्द पूछने वाला वहाँ कौन था ? अपने सगे-सम्बन्धियो से दूर वे मौत के सपने देख रहे थे। कुछ अन्तिम घड़ियां गिर रहे थे। मरने का क्रम अब भी जारा था। जिसे देर सबेर मरना है, उसकी कौन परवा करे !

× × ×

इसी युद्ध की एक रात की घटना है।

एक फौजी अरब सैनिक अपने चचेरे भाई के पुत्र को, घायल सिपाही को युद्ध स्थल में ढुंढ़ने निकला। अपने सम्बन्धी के प्रति अचानक उसके मनमे स्नेह और ममता जाग्रत हो उठी, जैसे मरु प्रदेश मे हरियाली !

क्रूर सैनिको के भी हृदय है और है उसमे प्रेम, स्नेह, भ्रातृत्व और ममता का मधुर और कोमल स्पन्दन !

फौजी अरब सिपाही उनकी मरी हुई, सिसकती-कलपती ठडी और गरम लाशो में अपने चचेरे भाई के पुत्र का शव तलाश कर रहा था। लाशो पर रोशनी डालकर ढूँढ़ता भालता आगे बढता जाता था। प्राय अधिकाँश लाशे निर्जीव थी, कुछ अन्तिम श्वास ले रहे थे। जब उसका ध्यान लाशो पर अधिक केन्द्रित हो जाता, तो उसके दूसरे हाथ के लोटे का जल छलक कर गिर पढ़ता। वह एक-एक बूँद पानी को सम्भाले हुए था।

'कहाँ है मेरा वह सम्वन्धी ! मै उसको सँभालने आया हूं।

प्यासे लड़के की प्यास बुझाने के लिए जल से भरा यह लोटा लाया हू। मेरा वह सम्वन्धी यह शीतल जल पीकर कितनी सुखद शान्ति का अनुभव करेगा ? मेरे प्यार से उसकी पीडा कितनी कम हो जायगी ?' यह यही सोच रहा था।

'यदि दुर्भाग्य से इस लड़के के प्राण निकल गये होगे, तो विधि-पूर्वक दफना दू गा और उसकी आत्मा की शान्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करूँगा।

उसका मन नये-नये विचारो से परिपूर्ण था। उसने आगे सोचा, 'युद्ध मे मरने वाले सैनिको को प्राय घायल अवस्था में बड़ी प्यास लगा करती है। वे पानी की एक-एक घूँट के लिये तरसते हैं। वार-वार पानी मागते है। कही मेरा पुत्र भी प्यासे न तड़प रहा हो। उसकी तृषा-निवारण के लिये जल से भरा एक लोटा भी साथ ले चलता हूं। पहले उसकी प्यास बुझाऊँगा फिर प्रेम से उसकी मरहम पट्टी करूँगा। सान्त्वना और प्रेरणा दूँगा। वह ठीक हो जायगा…… …।'

वह अरवी सैनिक पुत्र की तलाश मे युद्ध स्थल में मुर्दों को ध्यान से देखता चल रहा था। ममता का स्नेह पूर्ण बन्धन भी कितना मजवूत है।

उधर युद्ध भूमि मे सर्वत्र अगणित सैनिकों की क्षत-विक्षत सिसकती या मृत्यु की चिरनिद्रा मे निमग्न लाशे बिछी थी। अनेक सैनिक मर चुके थे, उनके घावो से रक्त बह रहा था। मुर्दों की दुर्गन्ध फैली हुई थी। फिर भी अरब सैनिक ढूंढ भाल करता हुआ किसी प्रकार की घृणा का अनुभव नही कर रहा था। उसे अपने घायल पुत्र को ढूँढ़ने की एक मात्र वलवती इच्छा थी।

वह फौजी अरब सैनिक उन सिसकती लाशो मे तेज दृष्टि

डालता ढूँढता-ढूँढता आगे बढता जाता था। हाथ के लोटे का जल कई बार छलककर धरती पर गिर जाता था। वह लोटे को ध्यान-पूर्वक सँभालता और सडती लाशो मे फिर लडके को ढूँढने लगता। फिर सोचना—

'कहा है मेरे भाई का पुत्र ! मै उसकी मरहम-पट्टी करने आया हूं। प्यासे पुत्र की तृषा निवारण के लिए जल से भरा लोटा लाया हू। मेरा प्यारा पुत्र शीतल जल पीकर कितना सुखद शान्तिपूर्ण अनुभव करेगा ! मेरे स्नेह से उसकी पीड़ा कितनी कम हो जायगी ?

स्थान पर वह झुककर एक घायल के चेहरे को ध्यान से देख रहा था। एकाएक उसके चेहरे पर हर्ष की रेखाएँ खिच गया। एक फीकी सी मुसकान-सन्तोष की भावना दिखाई दी। आशा का दीप जल उठा। उसे लगा कि अन्तत वह अपने कार्य सफल मनोरथ हो गया था जिसकी तलाश थी, वह आखिर मिल गया था।

उसने अपने भाई का पुत्र निर्बल घायल रक्त रंजित और कराहता हुआ मिल गया। ममता से अभिभूत वह उसके समीप बैठ गया। जल से भरा लोटा एक ओर रख लिया। युद्ध मे लड़के को सङ्गीन-चोटें आयी थी। उसकी बन्दूक समीप ही पड़ी थी। उसकी खाकी वर्दी मे लगकर खून जम गया था। ताजे घावों से रह-रह कर अब भी खून बह निकलता था। उसकी बडी नाजुक हालत थी।

लड़के का कण्ठ उसके अनुमान के अनुसार प्यास से सचमुच सूख रहा था। वह बहुत देर से 'पानी·······पानी ···· ·प्यास लगी है। एक घूँट पानी·······हाय ! पानी ·····पानी · ··।' चिल्लाता रहा था।

पर युद्धभूमि मे किसे पड़ी थी कि घायल सैनिक को, जिसके मरने मे अधिक देर नही थी, पानी पिलाता। प्यास से उसका गला सूख रहा था। ओठो पर पपडी जम गयी था।

फौजी अरब ने परिस्थिति की गम्भीरता समझते हुये साव-धानी से लालटेन जमीन पर टिकायी और जल से भरा छोटा उठा कर घायल लडके की प्यास बुझाने का उपक्रम करने लगा। उसने घायल पुत्र को सहारा देकर गोद मे बिठाया। पानी का लोटा उसके ओठो को लगने वाला था कि घायलो में से कही से एक करुण पुकार उसके कानो तक आयी—

अरे, कोई मुझे पानी दो ···पानी के बिना मर रहा हूं ······ प्यास ···प्यास से प्राण निकल रहे है ·पानी की एक ·· घूट ·पाना दो और मेरे प्राण बचाओ · ।'

उस स्वर मे मासिक पीडा थी। बेबसी और व्यथा शब्द शब्द से प्रकट हो रही थी।

यह क्या ! करुण पुकार सुनकर उन घायल लडके ने जल का लोटा बिना स्पर्श किये ही हटा दिया। लड़लडाती जिव्हा से बोला—

'उसे पहले पानी दीजिये वह बिना पानी मर जायेगा···· मैं स्वार्थी नही बनूँगा मै स्वय पानी पी लू ··और मेरे सामने मेरा दूसरा सैनिक प्यास से मर जाय ··नही, नहीं ··· ·यह तो खुदगर्जी होगी· ··हैवानियत होगी···· ···इन्सानियत का तकाजा है कि पहले मुझसे अधिक जरूरत मन्द की मदद हो····आप पहले मुझे नहीं, उसे जल पिलाइये ·बचा तो मैं पानी बाद में पी लूँगा ·· ···।'

फौजी अरब यह शब्द सुनकर चकित हो गया ··अस्पष्ट से शब्द अब तक उसके कानों मे आ रहे थे ··।

उसकी जरूरत मेरी जरूरत से ज्यादा बड़ी है····आदमी का जन्म मानवता की सेवा के लिए हुआ है····इन्सानियत की रक्षा से बड़ा सुख दूसरा नही है····उसे पानी पिलाइये 'मै बाद मे पीऊंगा ·· ··।'

फौजी अरब ने जल पात्र नीचे रख दिया। अपनी गोदी से लड़के का सिर सख्त धरती पर रख दिया। उस करुण स्वर को लक्ष्य कर वह इस नये घायल सैनिक की ओर बढा—ढूढता-ढूंढ़ता वह सैनिक के समीप पहुँचा। उसने देखा एक अधेड घायल सरदार, फौजी अफसर, प्यास से मर रहा था। जल के अभाव में वह बुरी तरह तड़प-तड़प रहा था। अधेड अफसर की असह्य वेदना उससे देखी न गयी। उसे ऐसा लगा कि यदि फौरन पानी न पिलाया गया, तो दो-चार मिनट में ही शायद वह मौत की चिर-निन्द्रा में निमग्न हो जायेगा।

अरब सनिक ने दया, करुणा और ममता से अभिभूत जल का लोटा उन सरदार की ओर बढा दिया, बोला

'लीजिए सरदार साहब! आपके लिए पानी हाजिर है। आपका तालू प्यास से सूखा जा रहा है। शब्द मुँह से नही निकल रहे है। आपकी कमजोरी बढती जा रही है। अपनी प्यास बुझा लीजिये····ईश्वर ने मुझे आपके पास पानी देकर भेजा है ··पानी लीजिए····।

अधेड सरदार ने पानी देखा और सुख की श्वास ली। अहह! आखिर उसे पानी मिल गया था। लाशो से पटी श्मशान-जैसी युद्धस्थली में रात के समय भी भगवान् ने उसे पानी भेज दिया था। ईश्वर की लीला कैसी विचित्र है। वह मन ही मन भगवान् की असीम कृपा और दैवी सहायता को धन्यवाद अर्पित कर रहा था।

अरब सैनिक ने पानी का लोटा घायल सरदार की ओर बढा दिया। सहारा देकर बैठाया। प्यासे ओठ शीतल जल की ओर बडी उत्सुकता से बढे। कितनी प्रतीक्षा के बाद यह पानी उसे मिला था।

लेकिन इससे पहले कि वह एक घूँट जल पिये, घायलो मै से फिर एक करुण पुकार सुन पडी—

पानी ··एक घूँट पानी इस प्यासे सिपाही को दो। ओह ! मै प्यासे मर रहा हूँ ··· ··· क्या कोई पानी नही देगा ! पानी···· पानी ··· ··बिना पानी मेरे प्राण निकल रहे है····· कोई दाय करो ·· ··बस,एक घूँट पानी पिला दो ·· ······।'

घायल सैनिक सरदार के मन मे अचानक मानवता की करुणा और दया जाग्रत हो उठी। उसने सोचा, 'इन्सानियत का तकाजा है कि पहले अपने से ज्यादा जरूरतमन्द का ध्यान रक्खा जाय, अपना स्वार्थ बाद मे रहना चाहिए। मरते दम तक यदि इस शरीर से परोपकार हो जाय, तो जीवन धन्य है। त्याग से ही मानव जीवन का पुण्य फल प्राप्त होता है।'

घायल सैनिक सरदार ने उस करुण ध्वनि की ओर सकेत करते हुए आदेश दिया, 'मेहरबानी कर मुझे छोड यह जल का लोटा उस सिपाही के पास ले जाइये। उसकी जरूरत मेरा जरूरत से ज्यादा महत्व की है। पहिले वह सैनिक पानी पीयेगा। मेरा नम्बर तो बाद में ही आ सकता है · ··· उधर पानी ले जाइये· ··· 'जल्दी कीजिये वह प्यास की वजह से दम तोड रहा—मालूम होता है।

विवश हो फौजी अरब सैनिक जल का लोटा लिए तीसरे घायल सिपाही की कातर ध्वनि की ओर बढ़ा।

उसने दुःख भरे नेत्रो से देखा कि एक अति दुर्बल सैनिक

जो बहुत ही बुरी तरह घायल है, लाशों के मध्य घोर पीड़ा से कातर है। क्रूर मृत्यु के राक्षसी जबड़े उसके सिर पर हर क्षण उसे निगलने को तैयार खड़े है।...

वह बोला, 'लीजिये ...पानी हाजिर है ...जल पीकर स्वस्थ्य हूजिये ...प्यास के कारण आप में निर्बलता बहुत बढ गयी है ... बोल भी नहीं निकल रहा है... जल परमात्मा की अमृतपम ओषधि है। जल पीजिए ...यह लोटा ओठों तक लगाइये।

उसने ज्यो ही उस निर्बल घायल सैनिक को पानी पिलाने का प्रत्यन किया कि उसकी गोद में ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये! हाय! वह जल की एक घूंट भी तालु के नीचे न उतार सका या कही दो चार बूंदे उतरी होंगी। लोटे में पानी भरा का भरा ही रह गया! मनुष्य का जीवन कितना क्षण भगुर है! एक क्षण का पता नही! परोपकार का एक स्वर्णिम अवसर उसके हाथ से निकल गया था। अब क्या करें।

उस अरब सैनिक के मन में आया, यह बेचारा तो बिना पानी ही चल बसा, अब उस घायल सरदार सैनिक को ही यह जल पिला कर परोपकार करना न्याय सङ्गत है... किसी का हित होना चाहिए।'

वह उलटे पाँव लौट पड़ा, जल पात्र लिये!

सरदार के पास पहुँचा। वह प्यास के कारण जल से निकली मछली की तरह तड़प रहा था। उसके ओठों में रक्त शेष न रहा था। चेहरा एकदम काला पड़ गया था। उसने जल्दी-जल्दी उसका सिर उठाया और जल पात्र ओंठो से छुआया—

उफ! यह क्या! उसका सिर तो एक ओर गिर गया—उसने दु:ख पूर्ण नेत्रों से देखा कि अत्यधिक पीड़ा के कारण

एकाएक उसको गोद मे ही अधेड सरदार के हृदय की गति थम चुकी थी :वह भी मौत को गोद मे सो गया था।

एक और आघात उसके हृदय पर लगा ! परोपकार के दो अवसर देखते-देखते उसके हाथों से निकल गये थे।

ओफ! मृत्यु भी कैसी क्रूर है! एक पल भी न रुकी!

अब वह फिर सोच रहा था। क्या करे!

तब उसे फिर अपने चचेरे भाई के पुत्र की स्मृति आयी। दूसरों का कुछ भला न हो सका तो अपने सम्बन्धी का ही हित किया जाय।

वह घायल पुत्र की ओर जल पात्र लिये दौड़। दो मृत्युएं उसके हाथों में हो चुकी थी। वह लम्बे पगो से उसके समीप पहुँचा........!

उफ! पुत्र के पास पहुँचा, वहां उसने जो देखा, उससे और भी तीव्र मानसिक आघात लगा।

ठीक समत पर जल न मिलने के कारण वह भी अन्तिम श्वास ले चुका था। वह पछता रहा था कि यह भी अवसर उसके हाथो से निकल गया था।

पानी का लोटा उसके हाथ मे था, पर एक दूसरे के लिये त्याग करने, अपने श्वार्थ की अपेक्षा दूसरे का पहले ध्यान रखने के कारण तीन लाशे उसके सामने से गुजर चुकी थी।

विधि का क्रूर विधान! तीनो घायल सैनिको ने अपने से अधिक जरूरत सन्द के लिये त्याग किया पर जल किसी को भी न मिल पाया।

***

पीड़ित मानवता की सेवा ही भगवान की सच्ची पूजा है !

उन दिनों कलकत्ता में प्लेग का भारी प्रकोप था। बड़ी संख्या मे संक्रामक बीमारी प्लेग से ग्रस्त बीमार मर रहे थे। मौत का कराल ताण्डव देख मन आतङ्कित हो उठता था ! डाक्टर और हकीमों ने अनेकों मरीजों की चिकित्सा की, किन्तु एक ठीक होता, तो चार नये रोगी प्लेग की चपेट में आ जाते रोगियों की संख्या बढ़ती चली जा रही थी। सरकार की ओर से रोकथाम के प्रयत्न भारी पैमाने पर किये गये थे, किन्तु ये भी स्थिति की भयानकता को कम नहीं कर पा रहे थे।

उन दिनों स्वामी विवेकानन्द योग-साधना मे निमग्न थे। वे दिन रात योग की नाना जटिल प्रक्रियाओं में तन्मय रहते। वे साधना में इतने ऊँचे उठ चुके थे कि समाज और जनता की कोई खोज-खबर न थी उन्हें। योग के क्षेत्र में उनकी बड़ी प्रसिद्धि हो रही थी।

लेकिन वह प्लेग साधारण संक्रामक बीमारी न थी। वह ऐसी फैली कि श्मशान की चिताएँ बुझ न पायी ! कलकत्ता की गलियां मरे हुए रोगियों के सगे-सम्बन्धियों की करुण-कराहों से चीत्कार कर उठी ! जो बीमार पडा, उठ न पाया।

पीड़ित मानवता मृत्यु के मुँह में तड़पने लगी।

स्वामी विवेकानन्द की साधना भी इस चीत्कार से विचलित हो उठी ! वे सोचने लगे 'समाज जब प्लेग से पीड़ित है, तब मैं एकाकी वैरागी होकर सिर्फ अपनी ही आध्यात्मिक उन्नति में लगा रहूं ? क्या पीड़ित समाज के प्रति मेरा कोई

दायित्व नही है ? क्या ईश्वर मुझ से योग उपासना ही चाहता है ? नही-नही, में गलती पर हू । मैं केवल अपना ही भला सोच रहा हूं । मुझे पीडित मानवता की बात भी सोचनी चाहिए। सेवा भी तो धर्म का एक प्रधान अङ्ग है ।'—यह सोचते-विचारते स्वामी विवेकानन्द अपनी कुटिया त्याग समाज में आ गये ।

'अब धर्म का क्या रूप हो ? इस स्थिति में धर्म का क्या' आदेश है ? वे नये सिरे से सोचने लगे ।

वे अपनी सेवा योग उपासना छोड प्लेग से ग्रस्त रोगियों की सेवा में जुट गये । दिन देखा न रात, सारा दिन उन्हें दवाई देना, सेवा-शुश्रूषा करना, भोजन का प्रबन्ध करना, पथ्य और आवश्यक चीजो को उपलब्ध करना—योगी का यह एक नया रूप था। वे चिकित्सक और सरक्षक सभी कुछ थे। रोगियों के लिये साक्षात् भगवान की तरह ।

जब कभी किसी रोगी की अवस्था अधिक चिन्ता-जनक हो जाती तो वे मा-बाप की तरह व्याकुल हो उठते । उनके प्राण बचाने के लिये व्यग्र हो उठते । हर तरह की भाग दौड करते। चिकित्सा करते और कुछ उठा न रखते।

यदि रोगी वच जाता, तो आनन्द से फूल उठते। यदि मर जाता तो बच्चो की तरह फूट-फूट कर रोते। अपनी चिकित्सा और सेवा को और भी सुव्यवस्थित करते।

उनके भक्त उनकी सेवा भावना से परेशान था। अरे, स्वामी जी तो अपनी समस्त साधना और योग उपासना भूल गये है !

उन साधको के मन मे शंकाओं का समुद्र उफन उठता । वे तरह-तरह के प्रश्न उठाते । कुछ पूछते, तो दूसरे शका ठहर जाते । इस योगी को क्या हो गया है ? यह तो पथ-भ्रष्ट हुये दीखते हैं ।

मूक शंकाओं ने प्रश्नों का रूप धारण किया।

साधकों ने पूछा, स्वामी जी, आप तो वीतराग है। दुनियादारी को छोड चुके है। कोई मरे या जिये, इससे आपको क्या मतलब ? फिर दिन-रात इन रोगियों की सेवा मे लग कर आप अपनी साधना और उपासना को क्यो मिटटी में मिला रहे है ?

स्वामी जी कुछ देर उनकी शकाओं पर विचार करते रहे। क्या उत्तर दे ? नयी परिस्थितियो में धर्म के स्वरूप को कैसे स्पष्ट करे ?

फिर प्रश्न किया गया, 'योगी तो बस साधना में तन्मय रहता है। उसे मरती-जीती पीडित दुनिया से क्या मतलब ?'

अब स्वामी जी को अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने की आवश्यकता पड़ गयी। धर्म का व्यावहारिक रूप स्पष्ट करना चाहिए।

'योगी होने के कारण ही तो मैं प्लेग के रोगियों के विषय में इतना चिन्तित हूं'—वे बोले।

'क्या योग प्लेग के रोगियों की चिकित्सा को साधना में विघ्न नहीं मानता है ?'

'नहीं, भक्तों ! पीडितों, शोषितों, संकट-ग्रस्त आदमियों की पीडा को अपने समान समझना, उनके दुःख को अपना समझना-यही तो सच्चा योग है। योगी की न तो अपनी कोई पीड़ा होती है. और न अपना कोई दुःख। उसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं होता।'

'फिर वह दुःखी क्यों होता है ?' भक्तों ने पूछा।

'दु.ख में फँसे आदमियों का दुख-सुख ही उसका अपना दु ख सुख होता है। आज मै प्रत्येक पीड़ित की पीड़ा को अपने

मे अनुभव करता हूं और उनकी सेवा को अपनी सेवा मानता हू ।'

'लेकिन इस चिकित्सा में तो आपको पैसे की भी जरूरत पड सकती है । उधर योगी पैसे को हाथ से स्पर्श तक नहीं करता ?' फिर लोगों ने पूछा ।

'ठीक है । सेवा मे पैसे की जरूरत होगी, तो उसका भी कही से प्रबन्ध किया जायेगा ।' वे बोले ।

सयोग से कलकत्ता में प्लेग का प्रकोप काफी दिन चला । चिकित्सा मे दान ले-लेकर बहुत व्यय किया गया फिर भी अर्थ सकट आ गया ।

अब क्या किया जाये ? परिस्थिति विकट थी । पैसे का काम तो पैसे से ही सम्भव है ।

'रोगियों को बचाने के लिये किसी न किसी प्रकार पैसे का प्रबन्ध करना ही होगा ।'—स्वामी जी कुछ भी तय न कर पाये थे ।

उन्होने निर्णय किया—'पैसे के प्रबन्ध के लिये मुझे राम कृष्ण-स्मारक' का भूमि को बेच देना होगा । सैकडों रोगियो की प्राण-रक्षा करने के लिये वह त्याग करने की जरूरत पड गयी है ।'

'ओफ ! तो भगवान् ! क्या आप अपने गुरुदेव के पवित्र स्मारक की भूमि को बेच देंगे ?

रोगियों की करुण-चीत्कारें स्वामी जी के कानो को फाडे डाल रहीं थीं । उस समय अस्पताल और रोगियो की दशा दयनीय थी ।

स्वामी जी बोले—'रोगियों की सेवा, उनके प्राणों की रक्षा ही परमात्मा की सच्ची पूजा है । दवा और चिकित्सा के लिये

आवश्यकता पड़ने पर इन मठ-मन्दिरों की आवश्यकता ? जब तक इनकी उपयोगिता है, ये मठ और मन्दिर देवालय है । भगवान के निवास-स्थल हैं । पूजा की जगह है ।

किन्तु जब ये पीड़ित मानवता के काम नही आते, तब मिट्टी के व्यर्थ स्तूपो के समान इनका कोई मूल्य नही रह जाता । इस मठ का एक-एक कण मानवता की पीडा दूर करने मे लग जाने पर गुरुदेव की आत्मा को अधिकाधिक शान्ति और सन्तोष होगा ।'

एक श्रद्धालु भक्त बीच मे बोल उठा, 'सम्पत्ति का श्रेष्ठतम उपयोग क्या हो सकता है ?'

मधुर मुस्कान चेहरे पर लिये हुये स्वामी विवेकानन्द कहने लगे, 'बन्धु ! जो सम्पत्ति पीडितो की सेवा और मानवता का दु:ख दूर करने के काम नही आ सकती, वह वास्तव में मिट्टी ही है । उसका होना, न होना समान है ।'

'स्वामी जी ! मनुष्य का शक्ल में होते हुये भी कौन वास्तव मे मनुष्य नही है—यह बताइये ?'

'जो मनुष्य परपीडा से कातर नही होता, दु:खी की सेवा नही करता, जो समाज के उत्तरदायित्वो से भाग कर एकान्त साधना और योग-उपासना करता है, वह आदमी होते हुए भी दरअसल आदमी नही है । अपने समान ही पीडितो का दु:ख अनुभव करना ही सच्ची मानवता है । रोगियो और शोकग्रस्तों की सेवा करना ही भगवान की सच्ची सेवा और असली भक्ति है । हर प्राणी भगवान् का स्वरूप है और उसकी उन्नति या दु:ख दूर करने के लिये किया हुआ हर काम भगवान का काम

धर्म व्यावहारिक स्वरूप की यह व्याख्या सुनकर शिष्य चकित रह गये ।

पीड़ितों और दुःखियों के लिए सर्वस्व दान

एक बार मिथिला नरेश अपने राज्य का विस्तार चाहते थे। जब आदमी अपने स्वार्थ तथा गर्व में चूर हो जाता है, तब निर्बल और छोटे-छोटे लोगों पर आतङ्क स्थापित करना चाहता है। बड़े राज्य छोटे राज्यो को हड़प लेते है। बलवान् पुरुष दुर्बलो को दबा कर शोषण कर डालते हे। मिथिला नरेश भी इसी प्रकार अपने सैन्य बल पर गर्व कर रहे थे। वे अपने राज्य के विस्तार मे सलग्न हो गये। आस पास के छोटे राज्यो पर उनकी हिसक दृष्टि जम गयी।

उनके समीप का एक कमजोर राज्य था। कौशल राज्य। यह छोटा तो था, पर था हर प्रकार सुसचालित, समृद्ध और सम्पन्न।

कौशल राज्य में सभी कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। छोटा राज्य था और उसकी आय भी साधारण हो थी, पर फिर भी समृद्ध। आवादी भी कम थी पर जनता उदात्त विचारो वाली थी। सेना थोडी थी, क्योकि वे अधिकतर आय जानता के लिए उपयोगी कार्यों मे व्यय करते थे। अपने आप में ही सीमित, पर विकासोन्मुख और सज्जन प्रकृति के।

किन्तु घमण्डी राजा गरीब और निर्बल राजाओ पर कब दया करते है। राज्य लोलुप मिथिला नरेश ने कमजोर कौशल राज्य पर चढ़ाई कर दी। उन्होने सोचा, 'यह छोटा सा राज्य है। क्यो न आसानी से हडप लिया जाय ! हमारे विशाल राज्य के सामने कब टिक सकेगा ?'

कौशल-राज्य की समृद्धि ही उसकी मुसीबत का कारण बनी। आखिर युद्ध हुआ। कौशल नरेश भारी विपत्ति में फँस गये। उनकी थोडी-सी सेना बडी वीरता से लडी। मरता क्या न करता! उनका किला शत्रुओ की सेनाओं से गिर गया। घमासान सग्राम हुआ। युद्ध भूमि सैनिको की लाशो से पट गयी। अपने यश और स्वतन्त्रता को वचाये रखने के लिये धन और जन की बडी क्षति हुई।

लेकिन कौशल नरेश हार गये।

वे चुपचाप रात्रि के अन्धकार में गुप्त द्वार से किले को छोड कर भाग निकले। शत्रु उनके पीछे लगे थे। पता नही, कब कौशल नरेश अपने खोये हुए राज्य को वापिस लेने का प्रयत्न करे। इसलिए मिथिला के राजा ने कौशल नरेश को सदा के लिये मार्ग से हटाने की युक्ति सोची। न रहेगा बास, न बजेगी बाँसुरी। कौशल नरेश की हत्या हो जानी चाहिये।

उन्होने अपने सारे राज्य मे घोषणा की—

'राज्य की ओर से यह घोषणा की जाती है कि जो कोई शत्रु पक्ष के राजा कौशल नरेश को जीवित गिरफ्तार कराएगा, उसे मिथिला राज्य की ओर से एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ इनाम के रूप मे दी जाएगी। कौशल नरेश हमारे शत्रु है। उन्हे पकडना या पकड़वाना हम सबका काम है।'

एक हजार स्वर्ण मुद्राओं का लोभ साधारण व्यक्ति के लिए कम नही है।

क्षुधा-पीड़ित समाज में कौन न चाहेगा कि शत्रु को गिरफ्तार कराकर एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त कर लेनी चाहिऐ? भूखा पेट जो पाप कर्म न कराऐ, थोडा है। पेट की खातिर लोग पाप

और दुष्कर्म करने पर उतारू हो जाते हैं। किसी भी समाज में ऐसे क्षुद्र लोगो की कमी नही है, जो पेट के लिये झूँठ कपट करते हैं।

बेचारे कौशल नरेश राज्य तो खो ही चुके थे, इधर-उधर जङ्गलो में अपने प्राण बचाते फिरते थे। हर व्यक्ति उन्हे खूनी निगाहो से देखता था। उनके वस्त्र ऐसे थे कि कोई अनायास पहचान न सके। मामूली गरीब आदमी की पोशाक मे वे इधर उधर मारे मारे फिरते थे। किसी भी नगर मे दो-चार दिन से अधिक नही रहते थे। कभी गाव तो कभी शहर—सारा जीवन ही भूख, अभाव, मानसिक अशान्ति. शत्रु से रक्षा मे ही लगा रहता था। कौन मरना चाहता है।

एक दिन वे एक नगर मे पहुँचे। वह एक पिसा-कुटा दुखी नगर था। युद्ध की श्मशान जैसी काली परछाई उस पर पडी हुई थी। उन्होने जिधर देखा, उधर उन्हे केवल स्त्रियाँ और छोटे बच्चे या अतिवृद्ध ही दृष्टिगोचर हुए। युवक कोई भी न था।'

आश्चर्य से उन्होने एक वृद्ध, पूछा, 'क्या इस नगर मे कोई युवक नही है ? कोई जवान नजर नही आ रहा है ? क्या कारण है ?'

'तुम्हे नही मालूम, मुसाफिर ! एक वृद्ध ने दुःखी होकर उत्तर देते हुये कहा, 'मिथिला नरेश ने हमारे कौशल राज्य को हडपने की कोशिश की थी। हमारा प्रदेश खतरे मे था। हम कैसे सहन कर सकते थे कि दूसरा प्रदेश हमें गुलाम बना ले। खतरे की घण्टो वजी। देश भक्ति की लहर व्याप्त हो गयी। स्वदेश की रक्षा और शत्रु को खदेड़ने के लिये हमारे यहाँ के युवको ने अपना तन देश के चरणो मे समर्पित कर दिया।' 'तो

कोई भी युवक नही है, इस नगर मे ?' राजा ने आश्चर्य से पूछा—

'मुसाफिर, जन्म भूमि की प्रतिष्ठा में ही सब की प्रतिष्ठा छिपी है। जिसकी धूलि में लेट-लेटकर हम इतने बड़े हुए है, जिसने हमें जल और भोजन दिया है, उसकी सेवा और रक्षा से विमुख होना कृतघ्नता है। वास्तव मे माता और मातृ भूमि के ऋण से मनुष्य मृत्यु तक मुक्त नही होता। इन दोनो के इतने उपकार होते है कि मानव उनसे आजीवन उऋण नही हो पाता है। हमारे नगर के युवको ने मान रक्षा के लिये अपने आपको बलिदान कर दिया है।'

राजा चित्र लिखित सा इन शब्दो को सुनता रहा। बिलक्षण बलिदान।'

वृद्ध आगे कहने लगा, 'केवल स्त्रियाँ, बूढे और छोटे बच्चे ही इस नगर मे शेष रह गये है।'

'चारो ओर बडा दैन्य और गरीबी दृष्टि गोचर हो रही है। क्या कोई और भी कारण है ?'

'इस वर्ष खेती भी नष्ट हो गई है' नेत्रो में आंसू भर कर वृद्ध बोला—'सारा नगर तथा आस-पास का इलाका आपत्ति ग्रस्त हो रहा है। कितने ही बालक और वृद्ध बीमार पड़े तडप रहे है खाने को कुछ नही है। सभी नरककाल से जर्जर हो रहे है। अकाल ··भूख, बेवसी····लाचारी है····।'

'ओफ ! ऐसा सङ्कट है ! बडी विपत्ति आ पडी है।'

'यही नही, कितने ही भूख से प्राण गवाँ रहे है।'

'गरीबी ···मृत्यु ··अकाल ···और फिर विमारी····अरे, इतनी परेशानियाँ है ··· ···। क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि ये संतप्त लोग बच सके ?' वह सोच विचार में पड गया।

मातृ-भूमि के निवासियो की करुण गाथा सुनकर कौशल नरेश की आखो मे आँसू आ गये। देशवासियो के सुख दु खो को ही वे अपना सुख-दुख मानते थे। छोटे-छोटे अज्ञानी पशु-पक्षियो तक को जन्म स्थान तथा उसके प्राणियो से मोह रहता है। पक्षी दिन भर न जाने कहा उडते रहते है, किन्तु सन्ध्या होते ही वे दूर दूर दिशाओ से पख फडफडाते हुये जन्म भूमि पर लौट आते है। नगर से दूर निकल जाने वाली गाय दिन-भर घूम फिर कर शाम को खूँटे की स्मृति मे रँभाने लगती हैं। घर पर आकर ही उसे सन्तोष मिलता है। कौशल नरेश अपनी प्रजा के दु खो को अधिक न सुन सके।

वे अनुभव कर रहे थे कि उनकी प्रजा को आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी। जिस देश का राजा या शासक अपने देश के कल्याण मे अपना कल्याण, अपने देशवासियो के अभ्युदय मे अपना अभ्युदय और अपनी प्रजा के कष्टो मे अपना कष्ट समझता है, वही सच्चा शासक है और वही उन्नति करता है।

किन्तु वे तो आज स्वय फटी हालत मे थे। अपनी प्यारी प्रजा को सहायता देने के लिये उनके पास एक फूटी कौडी न थी। सब कुछ दिन चुका था। कोई राजसी जेवर भी नही था, जो बेचकर कुछ सहायता पहुँचाते वे तो आज अपने प्राण बचाने के लिये खुद ही मिथिला राज्य की खूनी नजरो से बचे फिर रहे थे।

वे किसी को क्या आर्थिक सहायता देते?

वे सोचने लगे, 'जिस देश के बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ और युवक अपने राष्ट्र की बलवेदी पर अपने स्वार्थों का चढा कर उस पर तन, मन, धन न्यौछावर कर देते हैं, वही देश ससार मे महान् शक्तिशाली राष्ट्र समझा जाता है।… भारत मे अनेक देश भक्तो

की वीर-गाथाएँ भरी पडी है, जिन्होने देश के हित के लिये बड़े से बड़े त्याग किये हैं। यही कारण है कि भारत में गौरवशाली परम्पराएँ चली आ रही है। हमारे यहाँ के देश भक्तो ने अपनी स्वाधीनता और देश की खातिर हँसते-हँसते अपने प्राण बलिदान कर दिये। .. लेकिन मै क्या करूँ ? प्रजा की आर्थिक विपत्ति को क्यो कर दूर करूँ ? ...कैसे इन्हे कुछ धन सम्पत्ति का सहारा मिले ?' वे सोचते रहे.... ...।

जो गहाई से सोचता है, उसे अन्तत: कोई उपाद मिल ही जाता है। कौशल नरेश के मन मे अटूट देश प्रेम था। वे प्रजा को प्राणो से भी बढकर मानते थे। उन्होने निर्णण किया कि अपने दु:खी देशवासियो के लिए वे व्यक्तिगत लाभ-हानि की ओर ध्यान देकर पूर्ण शक्ति से कुछ करेगे।

वे उस गाँव के कुछ वृद्ध पुरुषो को साथ लेकर निर्भयता पूर्वक अपने प्राणों के प्यासे दुष्ट मिथिला नरेश के यहाँ जा पहुँचे।

जिनके लिए राजा ने एक हजार स्वर्ण मुद्राओ के इनाम की घोषणा की थी, उन्हें स्वयं ही आते देख मिथिला नरेश आश्चर्य में आ गये।

'मैंने इस व्यक्ति को गिरफ्तार कराने के लिए इनाम की घोषणा की थी। कोई इसे न पकड़ सका। अहा ! आज वह सोने की चिंडिया स्वयं ही पिजरे मे आ फँसी है। अब इसे फाँसी के तख्त पर लटका कर हमेशा के लिए काटा निकाल डालूँगा।'

लेकिन वे गाँव के कुछ वृद्ध पुरुष आपके साथ क्यो है ?'

'मै कौशल नरेश हूं। मेरी ही गिरफ्तारी के लिए एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ देने की घोषणा आपने की थी। ये वृद्ध आज कल आर्थिक परेशानियो मे है। इनकी वर्ष भर की खेती नष्ट हो

गयी है। खाने को गाव में कुछ भी उत्पन्न नही हुआ—दाने-दाने को मुहताज है।… सभी युवक मेरी फौज मे भर्ती होकर आपके विरुद्ध लडकर प्राण गवा चुके है … ।'

'हम समझे नही, क्या मतलब है आपका ?' शत्रु पक्ष के राजा ने पूछा।

मिथिला नरेश ! मेरे पकडने के लिए एक हजार स्वर्ण-मुद्राएँ देने की जो घोषणा आपने की थी, सो वे मुद्राएँ गाव के इन वृद्ध पुरुषो को दे दी जाये। उससे ये अपना तथा गाव के गरीब परिवारो का भूखा पेट भरेंगे। देश के लिये मेरा शरीर विक जाय, मेरी प्रजा को कुछ राहत मिले, तो मैं मरना पसन्द करता हू। इस मुसीबत के समय इन्हे आर्थिक सहायता देने के लिये अपने शरीर के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नही है। वह शरीर देश का है ।….मै तो प्रजा का सेवक मात्र हूं।…यह शरीर देश को ही अर्पित है शरीर नाशवान् है। आज नही तो कल नष्ट होना ही है। …यदि यह देशवासियो के लिये बलिदान हो, तो इससे बड़ा सुख भला राजा के लिये क्या हो सकता है ? ….मै देशवासियो को आर्थिक सहायता देने के लिये आपको बेचता हू।

लोग यह सुनकर चकित रह गये।

देश भक्त राजा के आत्म समर्पण की बात सुनकर सब पर बडा अद्भुत प्रभाव पडा। जब इन्हे पूरी घटना विदित हुई कि भूखे मरते प्रजाजनो की आर्थिक सहायता के लिये कौशल नरेश अपना सर्वस्व दे रहे है, तो उनकी उदारता और देश भक्ति देखकर श्रद्धा से सबका मस्तक नीचा हो गया।

मिथिला नरेश को स्वयं अपनी नीचाशयता, क्रूरता और गर्व पर पछतावा होने लगा।

'हाय ! मैंने क्षुद्र स्वार्थवश होकर कौशल-राज्य को कैसा उजाड दिया है। असंख्य युवको की मृत्यु का पाप मेरे सिर पर चढा हुआ है। मैं कितना क्षुद्र हूं कि निर्बल राज्य पर यों अत्याचार कर रहा हूं। मेरे हाथो मे हत्याओं का उष्ण रक्त लगा है, जो कभी न धुल सकेगा ? उफ् ! मैंने कैसा जघन्य नैतिक अपराध किया है। कितने ही निरपराधियो को यों ही प्रमादवश मौत के घाट उतार दिया है।'

पश्चात्ताप की अग्नि धधक उठी उनके हृदय में और उसने वहाँ जमे हुये स्वार्थ, निदयता आदि के दुर्गन्ध भरे कूड़े कर्कट को जलाकर शुद्ध कर दिया। अत. उन्हे प्रायश्चित्त का एक उपाय सूझा।

मिथिला नरेश ने आगे बढकर बड़े स्नेह से उनको गले लगा लिया और कहा 'राजन् ! आप जैसे मनस्वी ही संसार के मुकुटमणि है, जो सब तरह के विरोधों की परवाह न कर एकाग्रता से लक्ष्य की ओर बढ़ते रहते है। मैंने आज आपसे सीखा है कि शुभ कार्यो मे लगने वाले यथार्थ उन्नति और विमल विकास की ओर बढने वालों के समक्ष एक ही मार्ग है—दृढ़ता से अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिशील रहना। एक बार शुभ लक्ष्य और उत्कृष्ट मार्ग का चुनाव कर फिर उस ओर निरन्तर आगे बढ़ते रहना कर्मवीरों के लिये आवश्यक है। मार्ग मे क्या मिलता है, किन अवरोधो का सामना करना पड़ता है, क्या परेशानियाँ उठानी पड़ती है, इसकी परवाह किये बिना देश सेवा करते चलना—ऐसे उदार हृदय देशभक्त तपस्वी का राज छीनकर मै अपने को कलङ्कित नही करना चाहता।

उन्होने जीता हुआ सारा इलाका कौशल नरेश को लौटा दिया और क्षतिपूर्ति के लिये भरसक प्रयत्न किया। तब से वे

हर प्रकार कौशल राज्य के विकास के लिए सहायता करते रहे ।

उपकारिषु यः साधु. साधुत्वे तस्य को गुणा. ।
अपकारिषु य. साधु स साधु सद्भिरुच्यते ॥

अर्थात्—जो पुरुष उपकारी व्यक्ति के प्रति सज्जनता दिखलाता है, उसकी सज्जनता का कोई मूल्य नही है। सज्जनता या साधुता तो वही है, जो दुर्जन के प्रति सज्जनता पर्ण व्यवहार दिखलाये और सच्चा साधू भी वही है, जो दुष्ट के प्रति भी साधुता का ही व्यवहार करे ।

***

भगवान् को परम आराधना का रहस्य

चैतन्य महाप्रभु दक्षिण की यात्रा कर रहे थे उनका जीवन लोक सेवा में अर्पित था। वे दीन हीन या गिरे हुओ को उठाना और उनमें आत्म-विश्वास उत्पन्न करने को सत्पुरुपो का एक कर्त्तव्य माना करते थे। सारा दिन दु खी और अभिशप्त लोगों का प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति देकर जीवन के प्रति आस्था जगाना वे धर्म का एक अङ्ग मानते थे ।

एक बार अपनी यात्रा के सिलसिले मे घूमते फिरते चैतन्य महाप्रभु आन्ध्र प्रदेश के गञ्जाम जिले में स्थित कूर्माचल ग्राम मे पहुँचे। वह जिधर से गुजरते, वहा भगवन्नामो का उद्घोप करते जाते। लोगो को समझते थे कि मानव-जीवन उन्नति के लिये एक अमूल्य निधि है। भगवान् की सेवा के लिये सुअवसर

है। यह जीवन कुत्साओ और उद्विग्नताओ की कीचड़ में पड़े रहकर नारकीय यातनाएं सहते हुये मृत्यु के समीप पहुँचने के लिये नही है, वरन् इसलिये है कि हम शुभ कार्य करे, जिनसे ईश्वर प्रसन्न हो सकते हैं। अपने पवित्र कर्मो से परमात्मा को खुश रखना ही मानव-धर्म है। यही पक्ष समाज के लिये उपयोगी। व्यक्तिगत पक्ष से धर्म का उपयोगी सामाजिक पक्ष अधिक महत्वपूण है। समाज मे सुविधाजनक परिस्थितियाँ विकसित करना धर्म का लक्ष्य है। जिज्ञासु चैतन्य महाप्रभु की मनोहर वाणी और उपदेश सुनकर उन्हे चारों ओर से घेर लेते और वे उन्हे धर्म ग्रन्थों मे से ज्ञानरूपी अमृत पिलाते।

इसी ग्राम मे वासुदेव नाम के एक परम वैष्णव ब्राह्मण रहते थे। जन्मजात पवित्र सस्कारो के कारण उनकी साधु महात्माओ मे बडी प्रीति थी। वे उनकी सङ्गति में रहने को वडा महत्व देते थे।

जहाँ भी कोई विद्वान साधु पधारते, वे उन महात्मा के दर्शनो को आतुर हो पहुंच जाते थे। उनसे धर्म के सम्बन्ध में जिज्ञासाएँ शान्त करते और ज्ञान-लाभ करते।

परन्तु प्रारब्ध कर्मो का फल हर एक को देर सबेर मिलता है। चाहे कुछ दिन बीत जाय किन्तु पुराने सचित शुभ अशुभ कर्मो का फल जीव को भुगतना पड़ता है। ब्राह्मण वासुदेव को पुराने प्रारब्ध कर्मो से गलित कुष्ट हो गया।

जो प्रारब्ध में हो, उसे वह कर्मो का भोग समझकर शान्तिपूर्वक सहन करते थे। जब कुछ बदला न जा सके, तो ईश्वर की इच्छा समझकर सहन करने में ही भलाई है।

वासुदेव के कुष्ट मे कीड़े पड गये थे। उनमें बदबू उठती थी पर जीव हत्या को पाप और अहिसा को परम धर्म मानने वाला

वह भक्त अपने घावों में से कीड़ों को निकालने की चेष्टा नहीं करता था। वे बढ़ते जाते थे और घाव मे कुलबुलाते फिरते थे। उसे अन्दर ही अन्दर काटते और असह्य वेदना पहुँचाते थे, पर वह उसे सहता था।

यदि कोई कीड़ा सयोग से नीचे गिर जाता, तो वह उसे उठा कर घाव मे रख लेते ओर कहते, 'नन्हे जीव ! कहाँ जाते हो ! इस स्वार्थी और कठोर पृथ्वी पर तुम्हे कोई क्षण भर मे पीस कर समाप्त कर देगा ! यह देह किसी के काम आ रही है, किसी को जीवन दान दे रही है, इसमे मुझे सन्तोष है। जो जितना अधिक देता है वह उतना ही अधिक जीता है। यही मेरा विश्वास है।'

वासुदेव को जब चैतन्य महाप्रभु के आगमन का शुभ समाचार मिला तो उनके हृदय में देवी तत्वो ने जोर मारा। सत्सङ्ग द्वारा मनुष्य देवी प्रकाश की ओर चलता है। उपदेश सुनने से जन-कल्याणकारी प्रवृत्तिय। विकसित होती है। वे चतन्य के सत्सग के लिये गये।

चैतन्य महाप्रभु के दर्शनो से उन्हे बडा आन्तरिक सुख मिला वे भी ऐसे पवित्र सस्कार वाले व्यक्ति से बडे प्रेम पूर्वक मिले।

'अरे ! आप तो मुझसे गले मिल रहे हैं ! तनिक मुझे देखिये तो !' चैतन्य को रोकते हुए वासुदेव ने रोका।

'क्यो ? आखिर तुममें क्या दुर्गुण है ? सर्वत्र प्रभु ही प्रभु तो है। जो प्रभु मे है, वही तुममें व्याप्त है। एक ही आत्मा सब में निवास करती है। हम सब बन्धु है।'

'महाप्रभु जी, मुझे कुष्ट है। यह रोग भयानक होता है।

अत सभी मुझसे घृणा करते है ! आप भी बचे रहे। कही रोग का प्रकोप न हो जाये !

'क्या कहा ? तुम्हारा मतलब है।'

'प्रभुजी, यह घातक सक्रामक रोग है। आपको भी अपना शिकार बना सकता है। सावधान करना चाहता हूं। मैं तो अपने प्रारम्भ कर्मों से गलित कुष्ठ का कष्ट सहन कर रहा हू। आपको गलित कुष्ठ हो गया, तो गजब हो जायगा !'

'वासुदेव ! जो लोग नीच और घृणित मनुष्यों को अपना समझकर, अपने समान ही प्रेम-सहानुभूति देते है, वे ही तो सार्थक जीवन जीते हैं। हम अपने प्राणों की रस-गागर दूसरों में जितना उँड़ेलेगे, उतना ही इस पृथ्वी पर हरियाली फैलेगी। यह कहते-कहते उन्होने भावुकता से वासुदेव को हृदय से लगा लिया।

'सम्हालिये महाराज ! मैं एक संक्रामक कुष्ठ का रोगी हूं। आप मेरे रोगी और घृणित शरीर का स्पर्श न करें। आपका सोने जैसा सुन्दर शरीर है। यह भयानक रोग पीव से फैलकर आपको भी रोगी बना देगा। आपके द्वारा धार्मिक समाज की जो सेवा हो रही है, वह रुक जायेगी। प्रभु, इस रोगी का स्पर्श न कीजिये।'

वे बार-बार दूर बचने का प्रयत्न करने लगे।

लेकिन सद्आग्रह में लगे, प्रभु प्रेम में पगे चैतन्य महाप्रभु कब मानने वाले थे ! वासुदेव दूर हटता, तो चैतन्य महाप्रभु प्रेमाभिभूत हो उसके समीप आने का प्रयत्न करते ! उसको स्पर्श सुख पहुँचाने का प्रयत्न करते।

'वासुदेव ! तुम अपने आपको घृणित कुष्ट रोगी कहते हो !'

'जी हाँ, प्रारब्ध कर्मो से देखिये, मेरे सम्पूर्ण अङ्गों मे गलित कुष्ट हो गया है। कितना घिनौना हू मै ! छि. छि. !! आप दूर हो रहे !'

'हो सकता है ! तुम केवल ऊपरी दृष्टि से ही अपने को देख रहे हो। तुम एक निःस्वार्थ भगवद् भक्त हो। तुम परमात्मा की विशाल व्यापक और व्यवस्थित सृष्टि के सिरमौर हो ! आत्म कल्याण, आत्म-मुक्ति एवं आत्म-विस्तार में निरत रहते हो। ऐसे भगवद्भक्त का स्पर्श कर मै स्वयं को पवित्र करना चाहता हूं !' यह कह कर उन्होने प्रेम मे कुष्ट रोगी को हृदय से लगा लिया।

'शिव ! शिव ! यह क्या अपवित्र कार्य कर रहे है, महा-प्रभु !'

'भगवान् को प्रसन्न कर रहा हूं !'

'भगवान् किन किन बातों से खुश होते हैं, यह तो स्पष्ट कीजिये, महाप्रभु !' वासुदेव पूछने लगे। बार-बार आग्रह करने लगे।

'यह जिज्ञासा पूर्ण करता हूं। सुनो—

'न हीदृश सवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥

(म० भा० आदि० अ० ८७—१२)

'परमेश्वर का वशीकरण ऐसा तीनों लोको में नहीं है, जैसा कि दुःखियो पर दया करनी, बराबर वालों से मित्रता, उदारता और मीठी वाणी।'

तप्यन्ते लोक तापेन प्रायशः साधवो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषास्याखिलात्मनः ॥

प्राय. करके सज्जन पुरुष लोक ताप से तप जाते है। अर्थात मनुष्यों पर विपत्ति देख उसको दूर करने के लिए दुःख उठाते है। यही उपाय (दूसरों का दुःख दूर करना) भगवान की परम आराधना है।

वासुदेव पूछने लगे, 'इस विषय मे और जानने की मेरी वलवती इच्छा हो उठी है। कृपा कर विस्तार से मुझे वताइये कि भगवान् किन-किन बातो से प्रसन्न रहते है ?'

'यदि यही इच्छा है तो और आगे सुनो विस्तार से वताता हूं—

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्ठया येन केन वा।
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जर्नार्दनः॥'

(भागवत ४।३१।१९)

'सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करने से, अनायास से मिले पदार्थ मे, सदा प्रसन्न रहने से और इन्द्रियों के निग्रह से भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं।

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् संप्रसीदति॥

(भागवत ४।११।१३)

अर्थात् सहनशीलता, करुणा, सम्पूर्ण प्राणियों से मित्रता और सबके साथ समता (पक्षपात न करना) का शुभ सात्विक व्यवहार करने से भगवान् प्रसन्न होते है।

चैतन्य पूछने लगे, 'वासुदेव, तुम इस विषय में भारी दिलचस्पी रखते हो, यह शुभ प्रवृत्ति है। क्या तुम्हे विष्णु पुराण में लिखे वे वचन याद है, जो उन्होंने राजा सगर के प्रति कहे थे ?

'नही महाप्रभु ! वे तो मुझे स्मरण नहीं है। सुनने नी तीव्र इच्छा है। कृपा कर सनवाये और उनका अर्थ भी स्पष्ट कीजिये।

'अच्छा वासुदेव, सुनो-

परपत्नी परद्रव्य परहिंसासु यो मतिम् ।
न करोति पुमान् भूम तोष्यते तेन केशव ।।
परापवाद पैशुन्यमनृत च न भाशते ।
अन्योद्वेगकर चापि तोष्यते तेन केशव ।।
देवद्विजगुरुणा यो शुश्रूषासु सदोद्यत. ।।
तोष्यते तेन गोविन्द: पुरुषेण नरेश्वर ।
यथात्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तया ।।
हियकामो हरिस्तेत सर्वदा तोन्यते सुखम् ।
यस्य रागादिदोषेण न दुष्टं नृप मानसम् ।
विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन सर्वदा ।।

(विष्णुपुराण ३८।१३-१७)

वासुदेव, इसका मर्मानुवाद यह है कि पराई निन्दा, चुगलखोरी, असत्य, पीड़ा जनक बचन, पर पत्नी, पर द्रव्य और हिंसा से जो बचा है, देवता, ब्राह्मण, माता-पिता और गुरु की सेवा करता है, अपने तथा पुत्र के समान सबका भला चाहता है और जिस मनुष्य का हृदय रोग द्वेष, ईर्ष्या, छल, कपट से मैला नहीं है, अर्थात् जो पूर्ण शुद्ध चित्त है, उससे भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं ।'

'महाप्रभु, आज मेरे ज्ञान के नेत्र खुल गये ! मैं धर्मका मर्म समझ गया । भगवान् को प्रसन्न रखने का रहस्य मिल गया ।'

यह कहकर वासुदेव चैतन्य महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़ा । वह गद्गद् हो रहा था । अपूर्व दृश्य था ।

पूजा से कर्त्तव्य का स्थान ऊँचा है

भागिये ! भागिये ! गजब हो गया !

'क्यो ? आखिर क्या हुआ ? ऐसे घबड़ाये हुये क्यो हो ? कुछ कहो भी तो ? बडे बदहवास नजर आ रहे हो ?

वह कुछ बोल न सका ।

मै कालेज में पढ़ा रहा था । मेरी तो हवाइयाँ उड गई ।

'क्या बात है ?' मैने आगन्तुक से फिर पूछा ।

'चाची छत से गिर पडी ! बडी चोट आई हैं । बुलाया है आपको ।'

'ओह ! वे तो पहले ही कमजोर थी ! अब कैसी है ?'

'वे सख्त घायल हो गई है ! आप तुरन्त चलिये ! डाक्टर को दिखाना है । देर मत कीजिये । उनके प्राण खतरे में है !'

मै भागा-भागा घर आया । देखा, सचमुच चाची के सर में चक्कर आने से वे छत से नीचे गिर पड़ी थी । घातक चोट लगी थी । सर फट गया था । कई स्थानों से रक्त बह रहा था । अधिक रक्त निकल जाने से उन्हे मूर्छा आ गई थी । सभी मर-हम पट्टी कर रहे थे । कुछ रोने से होकर 'हाय' हाय ! अब क्या होगा ?' कह रहे थे ।

दृश्य में भय और करुणा मिश्रित थी ।

मै एक दम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उठा । मुझे देख कठ इतना भय लगा कि कुछ भी निश्चित न कर सका कि क्या करूँ ?

'फौरन डाक्टर को बुला लाओ ! रुको मत ! प्राणों पर सङ्कट है ?'

अब मुझे याद आया कि सचमुच डाक्टर को फौरन ले आने की बात मेरी स्मृति मे गायब ही हो गई थी। हम मामूली समझ के चिकित्सा के मामले में कर भी क्या सकते थे ?

मैं ठीक तरह कपडे भी न पहिन सका। उधर चाची के प्राण निकल रहे थे, भला कपडो को पहिनने की चिन्ता किसे पडी थी ? भागा भागा डाक्टर के बंगले पर पहुँचा। आध घण्टे का रास्ता पन्दरह मिनिट मे ही तय कर लिया।

डाक्टर के दरवाजे पर एक चपरासी खडा था।

'अरे भाई, फौरन डाक्टर साहब से मेरे यहाँ चलने को कहो !' डाक्टर के घर पर खडे चपरासी से मैने बडे विनीत स्वर में प्रार्थना की।' मरीज की हालत बडी खतरनाक है। मेरी चाची छत से गिर पडी है और सख्त घायल हो गई है। उन्हे देख लेने के लिए फौरन डाक्टर साहब से कहो। पूरी फीस दूंगा।'

'जल्दी न कीजिये। डाक्टर साहब नहाने गुलसखाने मे गये है। मैं अभी आया हूं तो वे स्नान कर रहे थे। पन्दरह मिनिट में। नहा लेंगे, तभी दुवारा बुलाने जाऊंगा। बार-बार जाने से वे नाराज हो जाते है। ऐसे मरीज तो यहाँ रोज-रोज ही भीड लगाये रहते है। कुछ डाक्टर साहब के स्नान ध्यान, पूजा पाठ का भी ख्याल किया करो।'

'अरे यह ठीक है ! मरीज बड़ी नाजुक हालत में है। खून बह रहा है। इसीलिए तो जल्दी मचा रहा हूं।'

जल्दी तो सभी मचाते रहते है !' उसने पाषाणहृदय से कहा।

तबियत कैसी होगी। पन्दरह मिनिट तक बड़ो की सुइयो पर आंखे गड़ी रही। जब पूरा समय हो गया तो बड़ी आजिजी से फिर प्रार्थना की–

'अब डाक्टर साहब नहा चुके होगे, तुम जाकर मेरे मरीज के विषय में निवेदन करो। वे सख्त घायल हो गई है। बडी जल्दी उपचार की जरूरत है। प्राण खतरे में फँसे है। बहुत देर से यहां खडा हूं। अब जल्दी से उन्हे ले आओ।'

'अच्छा जाता हूं।'

नौकर अन्दर चला गया। मुझे पूर्ण उम्मीद थी कि वह अपने साथ ही डाक्टर साहब को लेकर आयेगा। वे कपड़े पहिन कर जल्दी तैयार हो चुके होंगे। नौकर के हाथ में दवाइयों का बैग होगा और हम लोग बिना देर किये घर पहुँच जायेंगे।

लेकिन थोडा देर बाद नौकर अकेला ही आ गया। मेरी हवाइयां उड रही थी।

'क्यों, क्या डाक्टर साहब ने कपडे अभी तक नही पहिने ? मुझे तो बड़ी जल्दी है।' भर्राई हुई आवाज में बोला।

'डाक्टर साहब नहाने के बाद पूजा पर बैठ गये। उन्हे पूजा पाठ से कौन हटा सकता है। उनका हुक्म है कि जब हम पूजा पाठ करे, जब तक हमें कोई भी परेशान न करे। हम पूजा में उन्हे कुछ भी नहीं कह सकते। वे भगवान की सेवा में है। मजबूरी है।'

'हाय ! मेरा दुर्भाग्य !' कह कर मैने माथा पीटा। लगभग आधा घण्टा प्रतीक्षा में पहले ही नष्ट हो गया था।

अब किसी नये डाक्टर के पास जाऊँगा, तो उसमें भी आधे घण्टे से अधिक लग जायेगा। क्यों न कुछ देर और प्रतीक्षा कर

मन को मसोस कर मै फिर वाट देखने लगा। मेरे नेत्र निरन्तर डाक्टर के किवाडो की ओर लगे हुए थे कि अव वे पूजा से निकले।

'ओफ डाक्टर, भगवान् का एक प्राणी दम तोड रहा है और तुम मूर्ति पूजा मे निमग्न हो। किसी प्राणी के प्राण बचाने से बडी पूजा और क्या हो सकती है।'

एक एक मिनिट पूरे दिन और सप्ताह की तरह मुश्किल से कट रहा था। मेरे मन मे विचार हिलोरे ले रहे थे।

'उस पूजा से क्या लाभ जिससे किसी प्राणी को लाभ न हो? जो समय किसी रोगी की प्राण रक्षा मे लग सकता है, उससे वडी पूजा और क्या हो सकती है। प्राणियो को सेवा ही सबसे बडी पूजा हो सकती है। मानवता की रक्षा ही सबसे ऊँचा साधना हो सकती है।' मैंने सोचा।

कोई घण्टे भर तक डाक्टर साहब की पूजा पाठ का कार्य क्रम चलता रहा। मरीजो की भीड उनके बङ्गले के बाहर एकत्र हो गई। हर एक उत्सुक नेत्रो से उनके बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

मरीजो में बड़ी आतुरता थी। हर पल मूल्यवान था। कब, डाक्टर आये, और मरीजो की सुध ले! हमारी दृष्टि डाक्टर के आगमन में लगी हुई थी।

अन्त मे मेरे धैर्य की सीमा न रही।

आखिर वे निकले! जैसे सव में नया प्राण आ गया हो।

उन्होने पूजा पाठ की थी, पर इस सबमे वे डेढ घन्टे देरी से हमारे घर पहुँचे थे। तब तक चाची की हालत और भी गिर चुकी थी। रक्त अधिक निकल गया था और शरीर निर्जीव सा

हो गया था। वे मरे हुये व्यक्ति की तरह खाट पर पड़ी थी। हम अत्यन्त चिन्तित हो उठे।

'डाक्टर साहब ! कैसी हालत है ?'

'ओफ देर हो गई पहुँचने मे·······हालत नाजुक है·······पर ······मै अभी ताकत का इन्जेक्शन लगाता हूँ। स्वस्थ हो जाने की पूरी उम्मीद है।' उन्होने ताकत का इन्जेक्शन लगा दिया।

'मैने इन्जेक्शन लगा दिया है। ये कमजोर अवश्य हो गई है, किन्तु ठीक हो जायेगी।' डाक्टर साहब कहने लगे, 'अच्छा हो यदि आप इन्हे अस्पताल ले जाये ?'

मै फीस देते हुआ बोला—'क्या वहाँ इन्हे भरती कर लिया जायेगा ?'

अपनी फीस वसूल कर वे बोले–'अवश्य ! मै लिखे देता हूं। भला मेरी बात कौन टाल सकता है।'

और उन्होने नुस्खा लिख दिया। उसमे मरीज को भरती करने की सिफारिश भी की गई थी।

मुझे चाची की हालत खतरनाक दिखाई पड रही थी। हर क्षण मौत के आगमन का अमङ्गल सूचक था।

मैं चाची को फौरन अस्पताल ले गया। वहां उनका दाखला भी हो गया। यत्रवत् चिकित्सा भी हुई।

'काश ! आप इन्हे डेढ घण्टा पूर्व यहा ले आते।' नर्स बोली, 'तो इनकी अवस्था बेहतर होती। खतरे से ये बच जाती।'

'मै क्या करूँ, तब डाक्टर साहब पूजा मे बैठे थे। उन तक मेरी आत्मा की पुकार न पहुँच सकी।'

'क्या मनुष्य के प्राणों की रक्षा पूजा से कम महत्वपूर्ण है ! उसके मुँह से निकला।

'सो तो ठीक है, पर दूसरे इस तथ्य को समझे तब है न !'

डेढ घण्टे मे चाची का बहुत ज्यादा खून निकल चुका था। इस लिये हाय ! वे बच न सकी।

मुझे आज तक पूजा की उस घटना की याद है। उस पर दु:ख भी है और क्षोभ भी ? आदमो पत्थर के भगवान की पूजा करता है पर हाड मास के ईश्वर पुत्रो की अवहेलना !

काश यह डाक्टर भगवान् की पूजा आदि की जगह अपने कर्त्तंव्य को तत्परता से निबाहता, तो सम्भवत: मेरी चाची की जान बच जाती।

महानता का मूल्यांकन व्यक्ति के गुण कर्म, स्वभाव से होता है न कि वर्ण से

'महर्षि, एक गरीब अबोध सरल-हृदय अपरिचित बालक आपसे मिलने की आज्ञा चाहता है।'

'उसके साथ और कोई है ?'

'कोई भी नही। न माता, न पिता।'

विद्यार्थियो का कक्षा में पढाते-पढ़ाते महर्षि गौतम ने अपने नेत्र पाठ्य पुस्तक से उठाये और पूछा—

'महर्षि ! वह किसी गरीब परिवार का पुत्र मालूम होता है, अभावो मे पला, कष्टो मे पनपा हुआ, बस कांटों मे खिलते फूल की तरह। मुझे उसकी सरलता पर दया आ गयी।

कहता है मुझे महर्षि गौतम की पाठशाला मे प्रवेश लेना है।' क्या उसे आपके पास अन्दर ले जाऊँ ?

'दूर से आया है क्या ?'

'जी हाँ, कहता है बहुत दूर नदी पार से पैदल ही चलकर यहाँ पहुँचा है। आज सबेरे तड़के चल दिया था। थकान के चिन्ह उसके चेहरे पर उभरे है, चन्द्रमा के काले धब्बो की तरह ! महर्षि से मिलने का बार-बार आग्रह कर रहा है।'

'पढने को उत्कंठित है। जिज्ञासु-वृत्ति का सज्जन बालक है ?

'जी हाँ, ये गुण तो उसके गुण कर्म स्वभाव से ही स्पष्ट है।'

'तो फिर गरीब है तो क्या हर्ज है। विद्या-अध्ययन का सब को समान अधिकार है। उसे हमारे सामने ले आओ।'

नौकर चला गया।

थोडी देर में एक गरीब कृशकाय फटे पुराने वस्त्र पहने लडका उनके सामने था। उसने झुक कर महर्षि को बड़ी शिष्टता-पूर्वक प्रणाम किया।

'वत्स, तुम्हारा क्या नाम है ?' महर्षि गौतम ने प्रेम-पूर्वक पूछा।

'सत्यकाम ?' बालक ने जबाब दिया, 'मै विद्या पढने की इच्छा से आपके चरणो मे आया हूं। मुझे पाठशाला में प्रवेश दीजिये। विद्या प्राप्त करने की उत्कट इच्छा है भगवन्।'

यह कहते-कहते बालक का कठ अवरुद्ध हो गया। उसने चरणो में गिरकर ऋषि के चरण पकड लिये। टप-टप कर गर्म आँसू उनके चरणो पर गिरे। वे सोचने लगे, 'इस निर्धन बच्चे के हृदय मे ज्ञान प्राप्त करने और विवेकशील बनने की इच्छा

होना, अपनी उन्नति मे लगना, इसके पूर्व जन्म के संचित पुण्यो के ही फल हो सकते है। इसके शरीर मे किसी ऋषि-मुनि की आत्मा का वास है। उठने वाले को सहारा देना भी धर्म का अङ्ग है। लगडा, लूला, अपाहिज, अभाव-ग्रस्त जो हमारा सहारा चाहता है, वह अवश्य देना चाहिये।

उल्लसित मन से वे सत्य काम से बोले—'वत्स, पशु और मनुष्य मे केवल विद्या का ही तो अन्तर है। विद्या से ही मनुष्य का उत्थान और विकास होता है। तुम्हारी योग्यता बढाने की लालसा की मैं प्रशसा करता हू। तुम मे किसी उच्च आत्मा का निवास है।'

'भगवान् ! मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मै विद्या प्राप्त कर ज्ञानवान् बनू ! अपने मन का अज्ञान-अन्धकार दूर करू !'

'वत्स ! जो सच्चे मन से अध्ययन करते है, वे जीवन मे हर प्रकार उन्नति करते है। मै तुम्हे आशीर्वाद देता हू कि पढ-लिख कर विद्वान् बनो।'

महर्षि गौतम ने बड़े प्रेम से अपना वात्सल्य भरा हाथ बालक सत्यकाम के सिर पर रखा। वे बडे खुश थे। उत्तम विद्यार्थियो को पाकर गुरु का प्रसन्न होना अवश्यम्भावी था।

सहसा ऋषि के मन मे एक नया प्रश्न उठा।

'वत्स ! तुम्हारा वण क्या है ?'

'वर्ण क्या होता है ? यह मुझे पता नही है, भगवान् !'

'वर्ण के अनुसार ही विभिन्न विद्याएँ प्राप्त करनी चाहिये। ब्रह्म विद्या का अधिकार ब्राह्मणो को ही है। यह शास्त्र कहता है बालक !'

'भगवन् !' मुझे अपने वर्ण का तो पता नही है। क्या करू मकीमा लूम ही नही किया मैंने !'

'पर वर्ण का पता करना आवश्यक है सत्यकाम !'

'भगवान् ! तो मै अपना वर्ण अपनी माता से जाकर पूछ आता हू।'

'तुम्हे कष्ट होगा। तुम कितने छोटे-से हो ! न जाने कितनी दूर तुम्हे जाना होगा। बच्चो का कष्ट देखा नही जाता इन बूढी आंखो से वत्स !'

'कोई हर्ज नही गुरुदेव ! गुरु पृथ्वी का भगवान् है। उसकी आज्ञा-पालन शिष्य का सबसे प्रमुख कर्त्तव्य है। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मै अपना वर्ण माता से पूछ कर आता हू।' बालक खुश था कि गुरुदेव ने रुचि पूर्वक उससे बातचीत की थी।

वह गुरुदेव से विदा होकर अपनी माता के पास चला। नदी पार कर वह अपनी पर्णकुटी पर पहुँचा। निर्धन माता के उत्सुक नेत्र अपने प्रिय पुत्र के स्वागत के लिए आतुर थे। अभाव और निर्धनता सर्वत्र स्पष्ट हो रही थी। मिट्टी का एक नन्हा-सा दीपक पर्णकुटी के अन्धकार को दूर करने का विफल प्रयत्न कर रहा था। देर हो गई थी, इसलिए माता व्यग्र और चिन्तित थी।

'मां ! मै आ गया महर्षि गौतम की पाठशाला हो आया।' सत्यकाम ! तू आ गया ? क्या महर्षि गौतम ने तुझे अपने गुरुकुल के लिए स्वीकृत कर लिया है ?' क्या निर्णय रहा उनका ?'

अभी नही ! कुछ अड़चने आ गयी।'

'क्या अड़चन आ गयी फिर ?'

'गुरु ने एक प्रश्न पूछा है। जब तक उसका स्पष्टीकरण

न हो जाय, तब तक गुरुकुल मे प्रवेश नही है। वही पूछने चला आया।'

'क्या सवाल पूछा है उन्होने ? सुनू तो भला ?'

बालक ने माता से गुरु का प्रश्न कह सुनाया और फिर पूछा—'माता, मैं किस वर्ण का हूं ? मेरे पिता कौन हैं ?'

सवाल सुनकर माता के तो मानो बिजली का करेन्ट हो मार गया ! वह चुप रह गयी !

किसो ने जैसे उसके मर्मस्थल पर उंगली रख दी थी। ऐसा लगा जैसे वह उस अप्रिय सवाल का जबाव देने को तैयार न थी। लज्जा से उसके नेत्र पृथ्वी पर गड़ गये। वह गहरे सोच-विचार मे पड गयी।

माता ! महर्षि को क्या उत्तर दू ? मैं किस वर्ण का हू, मेरे पिता कौन है ?'

अब माँ अधिक देर तक मौन न रह सकी। उसे अप्रिय सत्य कहना ही पड़ा।

'पुत्र ! बड़ी दरिद्रता-पूर्ण शोचनीय अवस्था मे मैने अपना जीवन व्यतीत किया है। भोजन तक के लिये कष्ट उठाना पडा है। युवावस्था मे उदर-पूर्ति के लिये मुझे अनेक पुरुषो की सेवा करनी पडी है। माता की स्नेहमयी गोद ही तेरे लिये खुली रही है, किन्तु तेरे लिये पिता का व्यवस्थित सरक्षण कोई नही रहा है 'पति कोई नही'।'

बालक ने यह सुना पर अर्थ न समझ पाया। वह उपर्युक्त शब्दों पर विचार करता रहा। उन्हे बार-बार दोहराता रहा। वह रात भर व्यग्र रहा। कब दूसरा दिन आये, कब वह गुरुकुल जाकर महर्षि के प्रश्नों का उत्तर दे !

प्रभात की रश्मियो के साथ ही बालक उठा। वह जल्दी-

जल्दी गुरुकुल की ओर पग बढाये जा रहा था। उसने नदी पार की और गुरुकुल के द्वार पर आ उपस्थित हुआ। उसे आशा थी कि प्रवेश मिल जायगा।

अन्दर सूचना भिजवाई, तो उदार गुरु ने उसे तुरन्त बुलवा लिया। बालक सत्यकाम आया और शिष्टतापूर्वक प्रणाम करके चुपचाप खडा हो गया।

उसे मनमे भय था कि उसके गिरे हुये वर्ण की बात सुनकर महर्षि उसे घृणा पूर्वक वहाँ से निकाल देंगे। जो शब्द उसकी म. ने कहे थे, उन्हे सुनाकर उसे आशाप्रद उत्तर की आशा न थी।

बालक ने सकुचाते-शर्माते दबे हुये स्वर में कहा—

'गुरुदेव! मेरी माता ने कहा है कि उन्होने बड़ी दरिद्रता और विवशता मे अपना प्रारम्भिक जीवन काटा है। युवावस्था मे उदरपूर्ति के लिये उन्हे अनेक पुरुषो की सेवा करनी पड़ी है। वे कहती है कि मेरी गोदी है, किन्तु पति कोई नही। अब मेरी स्थिति दखकर प्रवेश दीजिये। मुझ पर दया कीजिये।

विद्यार्थियों ने यह अजीव-सा उत्तर सुना। वे आपस मे काना फूसी करने लगे, 'यह अवैध सन्तान है। धर्म के अनुसार इसे शास्त्र वेद पढ़ने का कोई अधिकार नहीं। निम्न वर्णो के आदमी तो केवल सेवा मात्र के लिये बने है। उन्हें तो उच्च वर्णो की सेवा में ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। भला हम किस प्रकार इस शूद्र के साथ बैठ कर पढ़ सकते है। यह तो हम सबका अपमान होगा। शूद्रों का मस्तिष्क ही कहाँ है जो पढ लिख कर विवेकशील बन सके…नही, हम इस बालक को पढ़ने न देंगे।' परन्तु महर्षि गौतम उदार और द्रष्टा थे। वे धर्म के तत्व को व्यापक दृष्टि से देखते थे।

वे पात्रता और अपात्रता पर सोच-विचार करने लगे। इस अवैध बालक को वेद पढाये, या न पढ़ाये ? जिसके परिवार मे कोई दोष है, जो समाज से बहिष्कृत है, क्या उसे उच्च वर्णों के साथ पढाया जा सकेगा ? हमारे शास्त्र इस गुत्थी का क्या जवाब देते है ?

उन्होने निर्णय किया आत्म-दोष और परिवार मे पुरानी निर्बलता को निर्भीक सबके सामने कह डालने वाला विद्यार्थी चाहे निम्न वर्ग का ही क्यों न हो, उन्नति की महान् सम्भावनायें छिपाये है। बच्चे सद्गुण है, पवित्र कम की आशा है, शिष्ट स्वभाव है। गुण, कर्म स्वभाव से ही किसी किसी की लघुता और महानता को नापा जा सकता है किसी गिम्न वर्ण मे उत्पन्न होने वाले व्यक्ति मे नीच गुण ही हो, यह जरूरी नही है। सर्वत्र कर्म की ही प्रधानता है । जो जैसे कर्म करता है, उसकी गणना वैसी ही श्रेणी में होने लगती है। पूर्वकाल मे चारो वर्णों का निर्धारण इसी आधार पर हुआ था।

एकाएक उन्हे याद आया—

"एकवर्णमिद पूर्वं,- विश्वमासीयुधिष्ठिर।
कर्म-क्रिया विशेषेण, चतुर्वर्णं प्रतिष्ठितम् ॥"

(महाभारत)

पहले केवल एक ही वर्ण था। बाद मे कर्म क्रिया-वश चार वर्ण हुए।

सत्यकाम उत्सुकतापूर्वक उत्तर की प्रतीक्षा में था।

क्या निर्णय रहा गुरुदेव ! क्या मै निम्न वर्ण का होकर गुरुकुल में प्रवेश पा सकूंगा ? नीची कोटि मे जन्म लेने के कारण क्या मुझे निम्न ही माना जायगा। क्या मुझे उन्नति का मौका मिलेगा ?

महर्षि गौतम अपने आसन पर से उठे।

उनकी भुजाएँ फैली हुई थी। हृदय से स्नेह उद्वेलित हो रहा था। बालक का विद्या-प्रेम और उन्नति के प्रयत्न देखकर वे आल्हादित थे।

उन्होने बालक को वात्सल्य से परिपूर्ण हृदय से लगा लिया, जैसे कमल का पुष्प काले भौरे को अपने आलिङ्गन मे कस लेता है।

गद्‌गद् होकर अवरुद्ध कण्ठ से वह कहने लगे—

'वत्स सत्यकाम ! हिन्दू धर्म में ऊँच-नीच का भाव नही है। हमारे यहाँ गुण, कर्म, स्वभाव से व्यक्ति की ऊँचाई नापी जाती रही है। प्रायः यह होता था कि जो व्यक्ति समाज में कोई अपराध करता था, उसका कुछ दिन के लिये सामाजिक वहिष्कार कर दिया जाता था। जब सजा की अवधि समाप्त हो जाती थी, तो इसे पुन. समाज में मिला लिया जाता था। इस सामाजिक वहिष्कार के भय से कोई अपराध न करता था। उस व्यक्ति के जीवन तक अधिक-से-अधिक सजा चल सकती थी। वाद में दण्ड की व्यवस्था चल पड़ी और इस अपराधी वर्ग को वीच में अपवित्र समझा जाने लगा। छुआछूत और ऊँच नीच की भावनाये हम नही मानते। ये समाज की उन्नति में वाधक है। वास्तव मे जिसमें भी हो, गुण, कर्म, योग्यता, सच्चाई, ईमानदारी और बुद्धि का ही आदर होना चाहिये। तिरस्कार करने मे एक वर्ग हमेशा के लिये पिछड जाता है। यह राष्ट्र के लिये अहितकर होता है। सभी प्राणी भगवान् के है। इसमें भला कौन ऊँचा ! कौन नीचा !! अत सबके साथ समान व्यवहार होना चाहिये। यदि किसी से कोई अपराध हो जाय, तो उसे प्रायश्चित करा देना चाहिए। बाद में उसके साथ अन्य

उच्च वर्णों जैसा ही सद्व्यवहार होना चाहिये। समाज में काम न कोई ऊँचा है, न नीचा। सामाजिक दर्जा सबका बराबर होने में ही कल्याण है। इसलिये वत्स सत्यकाम ! अपने अच्छे गुण, सत्कर्म और साधु स्वभाव के कारण तुम ब्राह्मणों से भी श्रेष्ठ हो।'

सत्यकाम ने अपने को धन्य समझा। वह गुरु के चरणो में गिर पड़ा।

ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं, स्वाध्याय से प्राप्त होता है

बालक ऐतरेय को वह अपमान सहन न हो सका ! काले मेघों से बरसती जलधारा के समान घर लौटकर अपनी माँ शूद्रकन्या इतरा के आचल में सिर छिपाकर वह जितना रो सकता था, रोया ! कैसा कारुणिक था ऋषि पुत्र का वह रुदन ! बार बार उसका अन्तर्मन उससे कहता था कि स्वय उसके पिता महर्षि शाल्विन के द्वारा ही उसकी उपेक्षा और अपमान हुआ था ! उसके आत्म-सम्मान को आघात पहुँचा था।

कैसे हुआ था उसका यह अपमान ?

बात यो हुई कि महर्षि शाल्विन की प्रथम पत्नी श्लेषा एक ब्राह्मण-कन्या थी। बाद मे उन्होने एक और विवाह किया एक शूद्र-पुत्री से। सौभाग्य से महर्षि की दोनो धर्मपत्नियो ब्राह्मण-पुत्री श्लेषा और शूद्र-पुत्री इतरा मे परस्पर सहयोग और स्नेह था। हिन्दू-परम्पराओ के अनुसार पत्नी का गोत्र पति के गोत्र

के साथ च ता है। पति जिस वर्ग जाति, धर्म, सम्प्रदाय का हो विवाह के बाद उसकी विवाहिता भी उसी जाति का हो जाती है। दोनो मे कोई भी जातिभेद नही रह जाता। जाति भेद तो रूढ़िग्रस्त समाज ने निहित स्वार्थो और अन्धविश्वास-वश बना दिया है। इसका कोई वैज्ञानिक कारण नही है। दाम्पत्य-जीवन मे जातीय भेदभाव को स्थान नही है।

जब शूद्र पत्नी इतरा ने महर्षि शाल्विन से विवाह किया था, तो हिन्दू धर्म की परम्पराओ के अनुसार वह समझती थी कि महर्षि के मन मे जातिभेद किञ्चित भी न रहेगा। वे उसे तथा उसकी सन्तान को अस्पृश्य न समझेंगे। उसकी सन्तान को भी बराबरदारी की सामाजिक प्रतिष्ठा मिलेगी। ऊँच-नीच, छूत-अछूत का सामाजिक भेदभाव न बरता जायेगा। महर्षि स्वयं विद्वान है और जातीय भेदभाव की नि.सारता को समझते होगे।

लेकिन उसकी आशा और विश्वास को धक्का लगा। एक दिन उसे अनुभव हुआ कि उसकी यह धारणा गलत थी।

श्लेषा और इतरा दोनों पत्नियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। ईश्वर का चमत्कार देखिये, महर्षि के दोनों पुत्र एक से ही लावण्यमय, बुद्धिमान और पुरुषार्थपूर्ण दिखायी पड़ते थे। लगता था, जैसे प्रकृति ने दोनों को फुरसत में सँवारा हो! दूर से कोई शारीरिक अन्तर न था। कोई भी पहचान न सकता था कि उनमें कौन शूद्रपुत्र है? कौन सवर्ण ब्राह्मण-कन्या की सन्तान है? बुद्धि में दोनों ही समान कुशाग्र दिखायी देते थे!

समय पाकर दोनों ऋषि-कुमार बड़े हुए। उन्हें विद्यालय में प्रारम्भिक अक्षर-ज्ञान कराया गया। उनकी शिक्षा का

समुचित प्रबन्ध हुआ। अच्छे सस्कार और स्वस्थ धार्मिक वातावरण में रहने के कारण दोनो की अध्ययन मे रुचि और गति थी। स्वाध्याय और सत्सङ्ग के कारण उहे कर्तव्य-बोध हो चुका था।

एक दिन वह झटका लगा जिसके कारण उसका जीवन-प्रवाह बदल गया!

उस दिन महर्षि शाल्विन यज्ञ कर रहे थे। संयोग से दोनो ऋषिकुमार यज्ञ वेदी तक आ पहुँचे।

तभी वह घटना घटी जिससे बालक ऐतरेय ने अपने आपको तिरस्कृत और लाछित समझा।

महर्षि ने ब्राह्मण-पत्नी श्लेषा के पुत्र को तो अपनी यज्ञ-वेदी पर यजमान की तरह बैठा लिया, सर शूद्र-पत्नी का पुत्र खडा-खडा देखता रहा! उसे उन्होने नही पूछा! यही नही, उसे डपट कर वहा से भगा भी दिया।

ऐतरेय के लिये यह अपमान असह्य था! ऐसी उपेक्षा उसने अपने जीवन मे पहली बार ही देखी थी। ऋषि अब तक कभी भी जातिभेद नही करते थे। ऐतरेय समझ गया कि शूद्रा-पुत्र होने के नाते उसे उपेक्षित किया जा रहा है। अस्पृश्य समझकर ही उसे यज्ञ-वेदी पर बैठने की अनुमति नही दी गयी। यही नही. पुण्यकार्य मे उसकी उपस्थिति तक अमङ्गल-सूचक मानी गयी।

ऐतरेय यह अपमान सहन न कर सका। भारी मन से वह लौटकर अपनी माता इतरा के पास पहुँचा और अपने पर घटित ऋषि द्वारा जाति भेद की बात कही। कुछ समाधान न पाकर मा के आचल मे मुख छिपाकर खूब रोया!

बेचारी इतरा क्या कहती ! आज उसके आत्मसम्मान को भी भारी आघात पहुँचा था। वह भी महर्षि के व्यवहार को अनुचित मानती थी। पति के दुराग्रह को मन मे रख कर वह केवल भावावेश में क्षोभ के आँसू बहाती रही।

अपमान की चोट खाकर ऐतरेय घर से बाहर निकल गया। वह जाति भेद की घुटन में निवास न कर सका। वह सोचने लगा, "क्यों मुझे तिरस्कृत समझा गया ? महर्षि की दृष्टि में विद्या और बुद्धि ही सबसे ऊँची मूल्याकन की कसौटी है। वे ब्राह्मण-पुत्र होने के कारण मेरे भाई को विवेक, बुद्धि और समझ में मुझसे बढा-चढा समझते है। शूद्र माता का पुत्र होने के कारण उन्होने मुझे बुद्धि में दीन-हीन समझा है। मै मानता हू, मनुष्य का भविष्य निर्माण जन्म नही, बल्कि कर्म और उसका श्रम करते है। मुझे अब अपने कर्म—स्वाध्याय, विद्या अध्ययन, चिन्तन, मनन, सत्सङ्ग द्वारा—अपनी आत्मोन्नति करनी है।

सहसा ऐतरेय को गीता के ये शब्द स्मरण हो आये—

एव ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात् त्व पूर्वैः पूर्व-तरं कृतम् ॥
—गीता ४, १६

'(हे अर्जुन) ऐसा समझ कर कि प्राचीन मुमुक्षुजन करते रहे है, तू भी (वैसे ही) अपना कर्म करता रह, जैसा कि प्राचीन युगों में (हमारे) पूर्वजों द्वारा किया जाता रहा है।'

बस मुझे विश्वास हो गया है कि मेरा जीवन कर्म-रूप है। सजीव और उन्नतिशील बने रहने के लिये मुझे उत्तरोत्तर स्वाध्याय कार्य में लगे रहना है। मुझे यह नहीं सोचना है कि दूसरे मेरे विषय में, मेरी जाति या वर्ण के बारे में क्या सोचते है ? सत्कर्म से, ज्ञान और बुद्धि की तीक्ष्णता से, स्वाध्याय और

शुद्ध विचार से मै इष्ट-प्राप्ति कर सकता हूं। मेरा उद्देश्य उच्चतम ज्ञान और विद्वत्ता प्राप्त करना है। राग द्वेष, क्रोध और अहंकार से अपने मन को सुरक्षित रखना है। ससार को दिखाना है कि श्रम द्वारा कैसे बडे-बडे चमत्कार हो सकते है। एक कर्मयोगी के नाते मुझे पूरा विश्वास है कि अपने आत्मबल से मै उच्चतम विद्वत्ता प्राप्त करूँगा।"

ऐतरेय का उपर्युक्त निश्चय कार्यान्वित होने लगा। वह घर से बाहर प्रकृति के शान्त और मनोरम वातावरण मे एकाग्र चित्त से विद्या अध्ययन, मनन और चिन्तन करने लगा। उसने अध्ययन और स्वाध्याय द्वारा अपनी योग्यता बढायी। वह खूब लिखता और मौलिक ढग से सोचता। चुन-चुन कर पुस्तके पढता। रचनात्मक रूप से विचार करता। गहराई से सोचता हृदय से सफलता के लिए प्रार्थना करता।

फल यह हुआ कि सफलता का द्वार उसके लिये खुला हुआ था। स्वाध्याय और निरन्तर अध्ययन करते-करते ऐतरेय के पास वेदों के भौतिक ज्ञान और रचनात्मक विचारो का मौलिक भण्डार एकत्र हो गया।

उसने वेदो का मन्थन कर डाला। ज्ञान की अद्वितीय पूँजी उसके मन मे उत्पन्न हो गयी।

उसने वेदो की अपने ही ढग से मौलिक व्याख्या लिखनी आरम्भ की। वह लिखता, उस पर सोचता, फिर उसे और भी परिष्कृत करता। अपने विचार और प्रतिपादन को सजाता और सँवारता। लिखता, उसमें अच्छा बनाने के लिये काट-छाट करता, उत्तरोत्तर निखारता।

लिखते-लिखते उसने कई वर्षों के परिश्रम से अपनी रचनाओं की पाण्डुलिपि तैयार की।

वह सोच रहा था, मेरे पिता महर्षि, शाल्विन जब इस ग्रन्थ को पढ़ेंगे, तो मुझे शूद्रा का पुत्र नहीं, ब्राह्मणी का पुत्र ही मानेंगे क्योंकि यह ग्रन्थ मेरे ब्राह्मणत्व के शुभ सात्विक संस्कारों को स्पष्ट करता है।

जब ऐतरेय महर्षि के आश्रम में पहुँचा, तो दीर्घकाल के कारण सब कुछ परिवर्तित हो चुका था। महर्षि शाल्विन, श्लेषा और उसकी माता इतरा में वृद्धावस्था के लक्षण उभर आये थे। सबके मुख-मण्डल पर चिन्ता और निराशा छा रही थी।

इतरा पुत्र-वियोग के कारण शोक के पारावार में डूबी हुई थी।

कुशल मगल कहने के उपरान्त ऐतरेय ने अपनी विगत दीर्घकाल में लिखी पाण्डुलिपि को महर्षि को भेंट किया।

ऋषि ने उसे पढा, तो पुत्र की प्रगाढ विद्वता देखकर मन्त्र-मुग्ध हो गये! वेदो की वह व्याख्या नितान्त मौलिक और गहन अपने ढंग की अनूठी थी। उसमें कूट-कूट कर विद्वता प्रकट होती थी। ऐतरेय की अप्रतिम विद्वता, प्रतिभा और बुद्धि से वे चमत्कृत रह गये।

उन्हे अपनी पुरानी जीर्ण-शीर्ण जाति पाँति, ऊँच नीच, छूआछूत की अनर्थकारी कल्पना पर आत्मग्लानि होने लगी। हाय मैंने अपने विद्वान पुत्र की जाति-पाँति की रूढिवादिता में फँस कर कैसा तिरस्कार किया था! आज मुझे कर्म तथा श्रम की महत्ता का ज्ञान हुआ है। कर्म द्वारा ही मनुष्य ऊँचा उठता है। जाति पाँति कर्म करने से नही रोकती। कोई भी व्यक्ति चाहे किसी भी जाति, वर्ण या सम्प्रदाय मे जन्म क्यों न ले, कर्मठता और श्रम द्वारा अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। ज्ञान-विज्ञान अध्यात्म, विद्वत्ता सबके लिये ऊँच-

नीच, जाति-पाति और छूआछूत कदापि बाधक नही है—यह तथ्य आज मुझे विदित हो गया है। महर्षि अपने पुत्र ऐतरेय की व्याख्या पर फूले न समाये। उन्होने उसे हृदय से लगा लिया। नेत्रो से वात्सल्य की गरम अश्रु-धारा बहने लगी।

"तू ब्राह्मणो से भी वडा ब्राह्मण है। तेरा यह ग्रन्थ अमर रहेगा।"

ऐतरेय को अपनी ज्ञान पूँजी पर गर्व था। मन मे आत्म-सन्तोष! उसने सिद्ध कर दिया था कि मनुष्य जन्म से नही, कर्म से ही ब्राह्मण बन सकता है। अध्ययन और स्वाध्याय द्वारा ही ब्राह्मणत्व की उपलब्धि की जा सकती है

माता इतरा का समस्त दु:ख-दर्द पुत्र की साधना और विद्वता देखकर दूर हो गया।

"पुत्र, तूने मुझे धन्य कर दिया!" इतरा के मुँह से अनायास ही निकला।

"सच्चे परिश्रम और लगन से कोई भी यह चमत्कार कर सकता है, मां!" ऐतरेय का गला रूँध गया।

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ आज भी दुर्लभ ज्ञान से परिपूर्ण अमर ग्रन्थ है—श्रम और साधना का प्रतीक!।

●●

उदारता से ही महानता का परिचय मिलता है

दण्ड के बदले इनाम

सिक्ख-सरदार रणजीतसिह अपनी सेना सहित किसी युद्ध मे आक्रमण करने जा रहे थे। उनका जीवन ही हिन्दुत्व तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये था। इस कार्य में उन्हे एक सैनिक की तरह सदा ही ऊबड़ खावड मार्गों से गुजरना पडता था। सेना सहित वे इधर-उधर शत्रु की गतिविधि देखने के लिए घूमते थे। एक बार मार्ग मे एक बाग पडता था। उसमे ऊँचे-ऊँचे आम के छायादार वृक्ष लहरा रहे थे। उसके चारो ओर ऊँची दीवारे थी, जिससे अन्दर का व्यक्ति बाहर के राहगीर को नहीं देख सकता था।

"सैनिको! चुपचाप इस बाग की दीवार के सहारे-सहारे निकल जाओ। शत्रु को हमारी गतिविधि दीखने न पाये। किसी को कानो कान पता न चले कि सेना पास से गुजर रही है।" फ़ौज उधर से गुजरने लगी।

रणजीतसिंह उस बाग की दीवार के पास से होकर जा रहे थे। आमो का मादक मौसम था। आम के वृक्षो पर कच्चे आमो के गुच्छे लुभावने रूप में लटक कर गांव के आने-जाने वालो को लुभा रहे थे। गांव के बच्चे बाग मे घुसे हुए थे। सभी के लिये आकर्षण के केन्द्र थे वे पके आम और उनकी भीनी-भीनी मीठी सुगन्ध।

सयोग से महाराज रणजीतसिह जब उसके पास से गुजरे, तो अन्दर कुछ ग्रामीण बालक पत्थर मार-मार कर आम गिरा

रहे थे। जैसे ही आम गिरता, वे भागकर चाव से उसे उठाते और अपने दर्प की पूर्ति करते। बार-बार आमो के गुच्छो पर पत्थर से निशाना साधते। आम टूट कर गिरने की आशा करते। कभी कोई आम गिर जाता, कभी पत्थर ही वापिस गिर पडता।

दुर्भाग्य से उनमे से एक पत्थर बिदक कर बाहर आ गिरा और महाराज रणजीतसिंह के माथे पर लगा। वजन और तीव्र वेग के कारण पत्थर की चोट गहरी लगी। उन्होने माथा पकड लिया। चोट से तिलमिला उठे। तब सिपाहियो के नेत्र उधर अटक गये।

महाराज का सिर फट गया और खून बह निकला। साफा लाल रंग से रंग गया। हाथ रक्त से गीला हो टपटप नीचे टपकने गया।

खून बहता देख पीछे आने वाली फौज में हंगामा मच गया। क्रुद्ध सिपाही सजा देने के लिये अन्दर बाग में लडको को पकडने घुस गये। कुछ मालिक को चोट ठीक करने दौड़े। रक्त पोछ कर माथे पर पट्टी बाँध दी। उसमे से लाल लाल रक्त अब भी छनकर बाहर आ गया था।

अजीब सी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी।

इतने मे सिपाहियो ने लडको को पकड कर महाराज के सामने दण्ड के लिये पेश किया। "कैसे गुस्ताख है ये शरारती लड़के! महाराज इन्हे सजा दी जाय।"

सैनिको को आशा थी कि महाराज उन शरारती लडकों को कठोर दण्ड देंगे। इतने बडे आदमी को चोट मारने वाले दुष्ट लडको की ऐसी मरम्मत की जाय कि फिर शरारत की हिम्मत न पडे। सदा के लिये उन्हे अच्छे बुरे का विवेक हो

जाय। यही नही, उनके संरक्षकों को भी सावधान किया जाय, या जुर्माना वसूल किया जाय।... पर रणजीतसिंह बच्चो को देखकर मुस्कराये।

"महाराज, इन्होने आपको पत्थर मारकर माथे से खून बहाया है। इस गुस्ताखी के लिए आप इन्हे सजा दीजिए। कैसे दुष्ट है, ये गँवार लडके। इन्हे तनिक भी ख्याल न आया कि बड़ो से कैसा व्यवहार करना चाहिए। यह शरारत तो हर तरह सजा के योग्य है।'—सब महाराज रणजीतसिंह की त्यारियों का चढना देख रहे थे। महाराज ने जेब टटोली।

क्या निकाल रहे है महाराज ! शायद कोई सजा देगे। सभी आश्चर्य से देख रहे थे। जेब में से रुपये निकाल कर गिनने लगे। इनका क्या करेंगे ये ? इधर रक्त वह रहा है. उधर रुपये गिन रहे है। अजीब आदमी है।

उन्होने पाँच-पाच रुपये देकर उन ग्रामीण लड़कों को विदा किया।

'महाराज, इन्होने नो अपराध किया था ? इन्हे दण्ड के बदले इनाम देकर आपने यह क्या किया ?" कुछ सैनिको ने डरते हुए पूछा रणजीतसिंह हसे। वह थी एक उदार हंसी।

कहने लगे, 'जब निर्जीव वृक्ष पत्थर की चोट खाकर भी बदले मे मीठे और लाजबाव आम देता है, तब मैं तो मनुष्य हूं....।"

"क्या मतलब है, महाराज ?"

मतलव साफ है यदि अबोध बालको को क्षमा नही करता, तब तो मै इन वृक्षो से भी तुच्छ समझा जाता। इन बेचारो को क्या पता कि ये क्या कर रहे है ? किसके पत्थर मार रहे है ? इन्हे उन्नत करने का एक अवसर देना चाहिये। विवेक जाग्रत्

होने पर ये स्वय ही अपनी मूर्खता पहिचान लेगे। अल्प बुद्धि वाले बच्चो की सजा से सुधार न होगा।'

मन्त्री महाराज के इस कथन से बडा प्रभावित हुआ। वह बार-बार महाराज से उनका आशय और भी स्पष्ट करने का आग्रह करने लगा। महाराज ने बताया, "आदमी की श्रेष्ठता शक्ति-प्रदर्शन मे नही, आन्तरिक विशालता मे है। गलतिया हर इन्सान से होती है। वे मनुष्य की अबोधता की द्योतक है। विवेक शून्यता की परिचायक है। उन्हें सुधरने का अवसर देना और अच्छाई की ओर प्रोत्साहित करना समझदार व्यक्ति का कर्त्तव्य है। इस बार क्षमा कर देने से इन बच्चो मे अपनी मूर्खता के घृणा और सज्जनता की राह पर चलने की प्रेरणा होगी। कहा भी है—

ये पायवो मामतेय ते अग्ने पशान्तो अन्ध दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभु ॥

(ऋग्वेद १।१४४।३)

जो मनुष्य दीन दुखियो अल्पज्ञो और गिरे हुए को ऊपर उठाने मे कठिनाई और बाधाओ से घबराता नही, उसकी रक्षा परमात्मा जरूर करता है।

मन्त्री महाराज के शब्दो पर देर तक विचार करता रहा।

गीता के सच्चे पाठ से प्राणी का भय नष्ट हो जाता है

"तुम्हारे पूर्वज बुत परस्त हैं। वे पत्थरों को पूजते है। इसमें भला कौन-सी तुक है? पत्थरों की पूजा मे कौन-सा धर्म है? तुम बड़े गँवार हो।'

'सावधान, मेरे पूर्वजो को बुरा-भला कहा तो! मुझ से भी चुप न रहा जायगा।'

'फजूल की बकवास मत कर छोकरे! तुम्हारे यहां देवी देवताओ की कोई हद है। तेतीस करोड़ देवता है। तुम हिन्दुओ ने हर किसी चीज को देवता की शक्ल दे रक्खी है! पहाड़, नदी, पेड़, सितारे, चांद, सूरज, वगैराह सब देवता ही देवता बना रखे है। महीने में ५-६ दिन भूखे रहो.......... वाहियात है ऐसा धर्म! अगर इतने देवी देवता रहे, तो दुनियाँ ही उनसे बस जायगी। वाह रे, हिन्दुओ!'

'देखो, मुस्लिम नवयुवकों! हिन्दू धर्म का मजाक मत करो।'

'वर्ना क्या करेगा रे मुरली मनोहर! तू तो अकेला है। कन्धार में रहता है। कन्धार (बिलोस्तिान) में चारो ओर मुसलमान ही मुसलमान है। एक हिन्दू युवक भला इतने मुसलमानों में क्या कहेगा?'

यह सुनकर मुरली मनोहर को गुस्सा आ गया।

"मै अकेला हूं तो क्या, एक हिन्दू सौ म्लेच्छों को परास्त करने की शक्ति रखता है।'

कहते-कहते उसने दांत पीसे और आवेश मे उसका चेहरा तम-तमा उठा।

× × ×

कई चालीस वर्ष पहले की बात है।

मुरली मनोहर कन्धार निवासी बीस-बाईस वर्ष का हिन्दू युवक था उसे गीता में विशेष रुचि थी। वह अपना दिन गीता पाठ से ही प्रारम्भ करता था। धर्म की रक्षा करना मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। प्राण देकर भी धर्म की रक्षा करना चाहिये। जो व्यक्ति अपने सामने धर्म की बेइज्जती देखता या सुनता है, वह नर्क में जाता है। ऐसे विचार उसके गुप्त मन में दृढ़ता से बसे हुए थे।

प्रति दिन की तरह मुरली मनोहर सबेरे शौच स्नानादि के लिये घर से निकला। इस बहाने वह सैर भी करता था।

कौन जानता था कि सबेरे की वह सैर इतनी भयावह सिद्ध होगी! छोटी-छोटी बातें बढते-बढ़ते खतरनाक फल उत्पन्न करती हैं।

नगर के बाहर के झरनो पर मुरली मनोहर की कुछ मुसलमान समवयस्क युवकों से झपट हो गई। मुस्लिम नवयुवकों ने मुरली मनोहर के हिन्दू पूर्वजो और देवी-देवताओ को बुरा-भला कहा—

उधर गीतापाठी मुरली मनोहर ने ईंट का जबाब पत्थर से दिया। दोनो तरफ से गर्मागर्म बहस हुई। मुस्लिम युवक समझते थे कि वे बहुत हैं, वह अकेला है। इसलिये अपने धर्म और देवी-देवताओ की मानहानि सुन लेगा, पर वह हिन्दू धर्म के पक्ष मे एक से एक बढकर नई दलील पेश करता रहा।

झगड़ा बढता गया। हाथावाई हो गई। मुसलमान युवको ने उसे मारा और पीटा, पर वह अकेला ही उन्हे पछाड़ता रहा। सिंह की तरह उसने उन गीदडों को खदेड़ दिया। पर वे दुष्ट इतने से ही चुप होने वाले न थे।

शिक़ायत कन्धार के सूवेदार के पास गई।

"हिन्दू युवक मुरली मनोहर की यह जुर्रत ! वह कैसे इस्लाम को तौहीन करता है। मुस्लिम शासन में रहकर भी इस्लाम के खिलाफ ऐमे नाहाक लफ्जों को कहना ....बहुत बड़ा जुर्म है।"

सूगेदार आग वबूला हो रहा था—

"इसकी सजा सबसे बड़ी होनी चाहिये। अफगान कानून के मुताविक कोई भी काफिर मुसलमानो के पूज्य पुरखाओ की शान में नापाक लफ्ज कहने पर सिर्फ मुस्लिम बनने पर ही माफ किया जा सकता है।'

वातावरण में बड़ी तनातनी थी। चारों ओर खड़े म्लेच्छ सरदार लोग क्रोध मे दाँत पीस रहे थे, जैसे मुरली मनोहर को कच्चा ही चबा डालेगे। उनका वश चलता तो वे क्षण भर में तलवार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालते ! कन्धार के सूवेदार इस आशा में थे कि वस युवक मुसलमान बन जायेगा। 'अहह ! इतने साहसी और प्रतिभावान् युवक को मुसलमान बना कर हम कितने भाग्यवान् होगे !" वह यही सोच रहे थे।

मुरली मनोहर ! मगर तुम इल्लाम को कवूल कर लो, तो तुम्हारा कसूर माफ किया जा सकता है।"

"मै ? और अपने धर्म को छोड़कर इस्लाम धर्म ग्रहण करलूँ ! असम्भव.... ...विल्कुल नामुमकिन है.... ...।"

'तुम्हे राज्य की तरफ से भरपूर इनाम भी दिया जायेगा।'

धर्म को छोड़कर बदले मे मुझे रुपया, पैसा, इनाम इत्यादि नही चाहिये।

'क्या तुम सजा से नही डरते!'

'धर्म पर दृढ रहने वाला शरीर को कोई महत्व नही देता। वह आत्मा को ही मुख्य मानता है। जीवात्मा अमर है और यह प्रत्यक्ष शरीर देर सबेर नाशवान् है। जब मरना ही है तो धर्म की रक्षा में मरने से ही मुक्ति होगी....आप मेरे शरीर को दण्ड दे सकते है, पर आत्मा को नही।

'तो तुम अपना धर्म छोडने को तैयार नही हो? मौत से भी नही डरते।'

'नही, नहीं, नही!'

एक मुसाहिब ने एक युक्ति सुझाई, 'हुजूर, इसके माँ बाप को भी बुला लिया जाय। मौत की सजा के डर से वे इसे धर्म बदलने पर मजबूर करेंगे। उनसे दबाव से मुरली मनोहर अपना धर्म छोड़ इस्लाम कबूल कर लेगा।'

'ठीक है बुलाओ इसके माँ बाप को।'

दो तीन नौकर भागे-भागे गये जब माँ-बाप ने अपने पुत्र के प्राणो पर सङ्कट आने की बात सुनी, तो डर गये। तुरन्त आये।

'बेटा मुरली मनोहर, प्राण बचाने के लिये तू मुसलमान धर्म मन्जूर कर ले। हम तुझे हँसते खेलते देखना चाहते है। तेरा विवाह समीप है। खतरे से बचने के लिए तुझे धर्म-परिवर्तन कर लेना चाहिए। हमने बडी कठिनाइयों से तुझे पालपोस कर इतना बड़ा किया है। जिस छोड़ दे।'

मां-बाप ने प्राणों की रक्षा के लिये अपने पुत्र को अपना धर्म परिवर्तन करने का प्रेमपूर्वक आग्रह किया। 'बेटा तू चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, कही रह, पर हम चाहते है कि तू जीवित रह। मुसलमानों के मुल्क में रहकर भला हम अपने धर्म की स्वतन्त्रतापूर्वक रक्षा कैसे कर सकते है। यदि जिन्दा रहना है, तो जंसे रखेंगे, वैसे ही रहना पड़ेगा।'

पर मुरली मनोहर मां-बाप के आग्रह से भी न पिघला। वे दूर खड़े खड़े निराशा अश्रु धारा वहाते रहे, किन्तु गीता का सच्चा पुजारी मुरली मनोहर न माना। वह किसी भी शर्त पर अपना धर्म छोडने को राजी न हुआ।

वह कहने लगा—'परमात्मा सदैव सबके साथ न्याय करता है। वह दुष्ट दुराचारी व्यक्तियो का उनकी करनी के अनुसार दण्ड देता है और धर्मात्माओ को उनके कर्मानुसार सुख और मुक्ति बाँटता है। मुझे मृत्यु का भय नही है।'

माता रो रही थी। उसका करुण रोदन देखा न जाता था।

पिता ने रुंधे हुये स्वर में कहा—'मुरली मनोहर तुम इन राक्षसो के वीच अकेले हो। क्या कर सकोगे? धर्म परिवर्त्तन कर लो और अपनी जान बचा लो।'

'नही, पिता जी ऐसा न कहिये! हमारे शास्त्रो में कहा गया है—

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुत मे चक्षुरयुत मे श्रोत्रमयुतो मे।
प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोहं सर्वः॥

—अथर्व वेद १९।५१।१

मैं अकेला ही दस हजार के वरावर हूं। मेरा आत्म बल, प्राण बल, दृष्टि और श्रवण शक्ति भी दस हजार मनुष्यों के

वरावर है। मेरा अपान और ध्यान भी दस हजार के वरावर है। पिताजी, आप शङ्का मत कीजिए मै सारा का सरा दस हजार मनुष्यों के बराबर शक्तिशाली हूं।

अन्त में कन्धार के सूबेदार ने कठोर शब्दों मे हुक्म सुनाया—

'नादान हिन्दू छोकरे ! या तो इस्लाम कबूल कर ले, बर्ना मौत के लिये तैयार हो जा।"

मुरली मनोहर ने राज सभा मे विशद शब्दों में निर्भीक स्वर में कहा—'एक एव सुहृद धर्मो निधनेपिनुयाति य।' अर्थात धर्म ही एक ऐसा मित्र है, जो मरने पर सहायता देता है।'

'क्या मरने से पहले तेरी इच्छा है।'

'मै केवल एक ही वर माँगता हूं।

'वह क्या है क्या प्राणो की भिक्षा चाहते हो ?'

'मुझे प्राणो मे भी वडा धर्म है। मैं आपसे सिर्फ एक ही वर मागता हू कि मेरा काम तमाम एक ही झटके मे कर दिया जाये।'

सहस्रो लोगों की भीड एकत्रित हो गई।

दोनो ओर दृढ़ता थी। न मुरली मनोहर धर्म परिवर्त्तन करने को राजो था, न कन्धार का सूबेदार उसे माफ करने को तैयार।

'इसे पिस्तौल की की गोली से उड़ा दो।' हुक्म हुआ।

मुरली मनोहर ने सीना तान दिया! उसके ओंठ हिले और उनसे ये शब्द निकलने लगे—

"उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादाय।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु।"

—अथर्व वेद ६।१ ०।४

हे परमात्मा ! तू मुझ में ऐसा प्राण भर दे कि मै मस्ती में झूमता रहूं । मुझे किसी प्रकार का भय न रहे ।

गोली सीने को छेदकर पार हो गयी । अनेक मुसलमान दर्शक जो उनके धर्म परिवर्तन की आशा कर रहे थे, उनकी दृढ़ता देखकर चकित रह गये ।

कटमुल्लाओं ने उसके शव पर पत्थर फैंकना पुण्य समझा । मुरली मनोहर ने शान्ति से प्राण त्याग दिये, पर धर्म को न बदला । ठीक ही कहा गया है--

वरामहाँ असि सूर्य वडादित्य महाँ असि ।
महाँस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥
अथर्ववेद १३।२।२९

हे मनुष्यो ! तुम्हारी आत्मा सूर्य के समान तेजस्वी, प्रकाशमान एवं महान है । अपनी आत्मशक्ति को तो पहिचानो । देखो, तुम्हारो महिमा कितनी विशाल है ।

शक्ति के सदुपयोग से ही वह स्थिर रह पाती है ।

सोपानभूत स्वर्गाय मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
तथोत्थानं समाधत्स्व भ्रंश्यसे न पुनर्यथा ॥

स्मरण रखिये, यह सुरदुर्लभ मानव शरीर, जो बड़े पुण्यों से प्राप्त होता है, स्वर्ग प्राप्ति का सहज सोपान है। इसे शुभ कर्मो में ही लगाना चाहिये, ताकि मनुष्य अवनति, पथ भ्रष्टता और नैतिक पतन की ओर अग्रसर न हो सके ।

एक बार की बात है।

पाँच असमर्थ और अपङ्ग लोग एक स्थान पर एकत्रित हुये। बेचारे अपनी-अपनी शारीरिक निर्बलता से व्याकुल थे। दूसरों दूसरो को समुन्नत और प्रतिष्ठित पदों पर प्रतिष्ठित देखते हुये वे पश्चाताप भरे स्वर में कहने लगे—

'हाय! परमात्मा ने हमें किसी पूर्व जन्म के पाप की वजह से यह सजा दी है। यो असमर्थ और अपङ्ग बना दिया है! वह मौका ही न दिया कि औरों की तरह हम भी अपनी जिन्दगी में कुछ बडा काम कर सकते। यह मानव जीवन बार-बार नही मिलता। इस बार भी न जाने कैसे मिल गया, पर दुख इस बात का है कि यह व्यर्थ ही नष्ट होता जा रहा है। हाय! यदि भगवान् ने दूसरे आदमियो की तरह हमे सामर्थ्य-वान् बनाया होता, तो हम भी कुछ परमार्थ करते। यो बेवसी और मजबूरी में जीवन व्यर्थ ही नष्ट न करते! उसका सद्व्यय करते! सारी उम्र यो निरुद्देश्य न धक्के खाते! हमारे साथ भगवान् का कैसा अन्याय हुआ है?'

उन पाँचो के उदास चेहरो पर व्यथा और हार्दिक पछतावे की धारियाँ थी। सभी निरुद्देश्य जीवन बिताने की मानसिक व्यथा से परेशान थे।

उनके लिये जीवन काँटेदार झाड-झखाडों से भरा वियाबान जङ्गल था। वे जिधर भी चलते थे, मानो व्यथा, कष्ट, पीडा और बेवसी की कँटीली झाडियो मे उलझते जाते थे।

वे जिन्दगी का कटकमय रास्ता तय करते-करते जैसे थक गये थे। पर मन की वात कह डालने से पीड़ा का भार हल्का हो जाता है।

अन्धे ने व्यथा भार से दबे हृदय पर हाथ धर कर कहा—

मित्रो ! यदि कही मेरे भी आप सब की तरह दो आंखे होतीं, तो मैं जहाँ कही खराबी, मुसीवत या कष्ट देखता, वही और सब काम छोडकर पहले उसे सुधारने में लग जाता। इस शुष्क और दुर्गन्धिमय जगत् को सुखदायक फूलों से भरी महकती फुलवारी ही बनाकर छोड़ता। मै सर्वत्र हर्ष और उल्लास की रङ्गीनी बिखेर देता। मुझे बस, दो आँखो की जरूरत है।

सभी ने उसके साथ सहानुभूति प्रदर्शित की।

'कुछ मेरी भी तो सुनो,–लङ्गडा बीच ही मे बोल उठा।

'कह भाई तू ! तू भी अपने मन का भार हलका कर ले। आज मन की कुछ भी बात मत छिपी रखना।'

लङ्गड़े ने अपने लुञ्ज-पुञ्ज निर्बल पाँवो पर एवं पश्चाताप भरी निगाह डालकर ठण्डी आह भरी ! फिर दर्द भरी आवाज में वह बोला–

उफ ! मैं उन दुर्घटना को याद करते-करते कांप उठता हूं। बचपन में ही ऐसा एक्सीडेन्ट हुआ कि मेरे पाँव सदा-सर्वदा के लिये बेकार हो गये। मेरे लिये तेज रफ्तार से भागती यह सारी दुनियाँ ही जैमे लङ्गडी हो गयी। कैसे मजबूत थे मेरे पाँव ! हाथ ! मेरे वे खूब सूरत मजबूत पैर आज कहीं मेरे पाव होते, तो·······।'

'कहो-कहो, कहते-कहते चुप क्यो हो गये। मन का भार हलका कर लो–

'····तो मै दौड-दौड कर इस कृतघ्न दुनिया में समाज की भलाई और पीडित मानवता की उन्नति के अनेक काम कर डालता। दु:ख से सुख, अन्धकार से प्रकाश, मृत्यु से अमरता, जड़ता से चेतता की और प्रगति करता। आज मै विवेक के

नेत्रो से जिधर देखता हूं, उधर ही प्रगति और उन्नति का, निरन्तर आगे बढाने का शाश्वत नियम काम कर रहा है। उन्नति का सन्देश प्रकृति के प्रत्येक स्पन्दन में मुखरित हो रहा है। नदियाँ अपने अल्प और सीमित स्वरूप से अनन्त गम्भीर विशद सागर की ओर दौडी जा रही है। मै भी अल्प से महत की ओर अग्रसर होता।'

ठीक है ठीक है।' निर्बल बोला। 'मेरी भी तो सुनो! मुझे भी कुछ कहना है।'

'अच्छा, इसे भी मन की बात कह लेने दो।' और उस शक्ति हीन दुर्बल व्यक्ति की बात मनोवाञ्छाए सुनने लगे।

उस कमजोर आदमी ने अपने अस्थिपिञ्जरवत शरीर को लज्जापूर्वक निहारते हुए कहा—

'मेरे हाथ-पैर आज निर्बल हो गये है। मजबूर होकर मै ताकत का कुछ भी काम नही कर पाता, पर जब मैं दुनिया में मजबूत लोगो को शक्ति के मद मे निर्बलो पर अत्याचार करते हुये देखता हू, तो मन में शोषण के प्रति बड़ा क्रोध आता है। मैं अक्सर सोचा करता हू, क्या ये अन्यायी और अत्याचारी ताकतवर लोग दुनिया की आँखो में इसी तरह धूल झोंकते रहेगे? दोस्तो! सच कहता हू यदि कही मुझमे बल होता, तो इन शक्ति के घमण्डियो का, इन अत्याचारियो का दमन करता और इनके अत्याचार का मजा चखा देता। मै अनुभव करता हू जिसका शरीर, मन और आत्मा शक्तिशाली है, वही उन्नति के रास्ते मे आये अवरोधो से टकरा सकता है। समाजविरोधी तत्त्रो से मोर्चा ले सकता है। हाय! आज मै कमजोर हू। साहसहीन हू। छोटे से छोटे विरोध को भी सहन नही कर पाता मेरी कायरता नही छूटती। शीघ्र ही मैदान छोड़ कर

भाग खड़े होने की इच्छा बलवती हो उठती है। मुझे शक्ति चाहिये।'

'बस-बस, बहुत कह चुके। आप सब अपनी बाते कहे जाते है। इस निर्धन की भी तो कुछ लीजिये।'

'हाँ, हां, इसकी भी सुननी चाहिये।'

कह भाई! तू भी अपने मन की निकाल ले।'

वह निर्धन व्यक्ति हमेशा अपनी गरीबी की वजह से परेशान और मन-ही-मन दु खी रहता था। हाथ की त गी के कारण वह अपना मामूली-सी जरूरतों को भी पूरी करने मे मजबूर रहता था। बेचारा दो वक्त पूरी रोटी भी नही जुटा पाता था खाली जेब और मासूम निगाहो को अपनी आर्थिक मजबूरी पर डालते हुए दर्द भरी आवाज में वह बोला—

'काश! मै धनी होता, तो संसार में फैले दीन-दु खियो के लिए सब कुछ लुटा देता। उन्हे आर्थिक दृष्टि से कभी दूसरो का गुलाम न बना रहने देता। रुपये की सहायता से आत्म-कल्याण और धार्मिक प्रयोजनों की पूर्ति करता। मुझे लक्ष्मी की कृपा मिलती, तो परमात्मा को प्राप्ति की सुविधा हो जाती कम-से कम मै निर्धनता-जैसी आध्यात्मिक-विकृति से बचा रहता।'

पाचो मे अब केवल मूर्ख ही चुप रह गया था। शेष सब अपने मन के गुब्बार निकाल चुके थे।

लेकिन वह भी चुप रहने वाला आदमी नही था। वह अपनी बुद्धिहीनता और मूर्खता पर सदा समाज और मित्रो में लज्जित हुआ करता था। वह व्यक्ति, समाज या जीवन की किसी भी समस्या को नही समझता था। मन ही मन उसकी बड़ी इच्छा रहती कि मै भी पुस्तके पढ़कर मानसिक, नैतिक

और आध्यात्मिक उन्नति करता, ससार मे मूर्खो को बुद्धिमान बनाता। वह ज्ञान के अभाव मे नारकीय नैराश्य और अन्धकार में छटपटाया करता था।

सर्द आहे फेकते हुये भारी स्वर में वह बोला, 'काश ! मैं भी विद्वान् होता, तो समाज और ससार मे सद्ज्ञान की गगा ही बहा देता। एक को भी अज्ञानी और अल्पज्ञ, न छोडता। जीवन भर सदाचार, धर्म, नीति और ज्ञान के उपदेश देता फिरता।'

अपनी-अपनी कह कर थोडो देर सब एक दूसरे के मुँह की ओर निहारते रहे। वे अपने मन की छिपी हुई मनोवाञ्छाएँ प्रकट कर चुके थे। सोच रहे थे, अब पछताने से क्या लाभ ? अब तो जैसे है, ही। इन्ही अभावो में जीवन बिताना होगा।'

सौभाग्य से एक ऐसी बात हुई जो बहुत कम होती है। वह क्या थी।

वरुणदेव इन सब असमर्थ अपंग और लोगों की पश्चाताप भरी उक्तियाँ सुन रहे थे। उन्हे उन पर दया हो आयी। देवता तो दया के पुञ्ज है ही। दयार्द्र हो उन्होने सोचा—

क्यो न इन सबको दुनिया मे अपना नाम करने, अपनी मनोवाछाएं पूर्ण करने, सेवा-परोपकार और भलाई के कार्य करने का एक सुअवसर दिया जाय। ये अपने जीवन को परोपकारमय बनाना चाहते है, समाज को ऊँचा उठाने की भली इच्छा रखते है। अपने विश्रृंखलित और अस्त-व्यस्त जीवन को नये सिरे से क्रमबद्ध एवं सुसज्जित रूप देना चाहते है। कदाचित एक नया अवसर पाकर ये अपने भटकते हुये जीवन को सन्मार्ग पर लगा सकेंगे।'

देवता सर्वशक्तिमान् और सामर्थ्यशाली होते ही है। उनके आशीर्वाद से भौतिक सुख फल भी सम्भव है। शुभ कार्यो में उनको मनोवृत्ति हमेशा ही चलती रहती है।

बस वरुण देव ने दया करके उनके कथन की सचाई परखने के लिये उन पाँचो को अपना अपना जीवन सुधारने का एक-एक मौका और दिया। उनके मन की छिपी हुई इच्छाएँ पूर्ण कर दी।

देखते-देखते उनके आशीर्वाद से वहाँ एक चमत्कार हुआ। क्षण भर में इन पाँचो असमर्थ और अपंग लोगो के मन का मनोरथ पूर्ण हो गया।

सर्वत्र एक नया परिवर्तन नजर आया। जीवन ही बदल गया।

अन्धे ने आंखो पर हाथ फेरा और विस्मय से बोला— अरे! दवताओ का यह क्या करिश्मा है मेरे नेत्रो मे नयी ज्योति आ गयी। अहह ! अब मै अपने नेत्रो से इस लुभावनी रंग-विरंगी आकर्षक दुनिया को खूब देख सकूँगा। खूब ! यह सब क्या है? संसार कितना खूबसूरत है। जिन्दगी मे मजा आ गया।'

लंगडे ने अपने पैरो को देखा। वहाँ भी नया परिवर्तन था। सचमुच अब उसके पाँव पूर्ववत स्वस्थ और तगड़े हो गये थे। उनमें कही भी कमी नही थी उसने उत्साहपूर्वक जरा चलकर देखा। फिर मधुर आवाज में ठहाका लगाकर बोला—'अहह ! मै तो अब चल सकता हूं। अरे चल ही नहीं, में तो भाग भी सकता हूं। अब मै एक ही जगह क्यों पड़ा-पडा सड़ूँगा। खूब इधर से उधर भागा-भागा फिरूँगा। मेरे पाँवो में पख लग गये हैं।'

निर्बल की न कुछ पूछिये ।

उसमे कही से एकाएक ताकत आ गयी थी । उसके सूखे कमजोर हाथ, पैर, छाती नया यौवन पाकर शक्तिमान् हो गये थे । शरीर मे नयां रक्त प्रवाहित हो उठा था । जवानो-जैसी कान्ति और स्फूर्ति आ गयी थी । रुधिर मे तापमान और हलचल मच गयी थी । उसका चित्त मयूर की तरह नाच उठा । उसके मस्तिष्क में आनन्द, उल्लास और उत्साहपूर्ण भावनाएँ उठने लगी ।

और उस गरीब का अजब हाल था । गरीबी समृद्धि में बदल गयी थी ।

निर्धन को ऐसा लगा कि उसके नाम लाखो रुपयो की लाटरी निकल आयी है । एकाएक उसे इतनी विपुल सम्पत्ति प्राप्त हो गयी है, जिसको वह जीवन मे कभी कल्पना तक नही कर सकता था मकान क्या, अब वह गगनचुम्बी अट्टालिकाओ मे सुखपूर्वक निवास कर सकता था । आलीशान जिन्दगी, बढ़िया बगला, नयी चमचमाती मोटर, कीमती नयी शैली की पौशाके, बेशकीमती जेवर, जमीन और जायदाद सभी का मालिक था वह । अब उसे कुछ कमी न थी ।

मूर्ख को विद्या मिली । ज्ञान के नेत्र खुल गये ।

विद्या क्या मिली, जैसे अज्ञान के अन्धकार मे एकाएक ज्ञान का प्रकाश ही फैल गया । उसे ऐसा लगा, जैसे पहले से ही उसमे जन्म जात प्रतिभा भरी हुई थी । उसने ऐसा अनुभव किया मानो एक ही रात्रि मे उसने शास्त्र, दर्शन, उपनिषदो में समुचित्त प्रवीणता प्राप्त कर ली थो । उसकी सब असंस्कारी, स्वार्थ परायण और सङ्कीर्ण भावनाये आज एक वार तो न जाने

कहाँ विलुप्त हो गयी थी। अब वह विद्वान् बन गया था। उसे बुद्धि पर गर्व हो गया।

वाह ! वाह ! वरुणदेव का यह क्या चमत्कार था। क्षण-भर में आमूल्य परिवर्तन। पाँचो असमर्थ लोग अब पूर्ण समर्थ हो गये थे। पूरी जिन्दगी ही बदल गयी थी।

वे अपने सौभाग्य पर फूले न समाये। अब उनके जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण मे भी परिवर्तन आया। वे नये तरीके से जीवन जीने लगे। पर बहुत दिनों से दबी हुई उनकी प्रसुप्त आकांक्षाएँ और वासनाये एकाएक प्रबल रूप में जाग उठी।

उन सब का मानसिक कायापलट ही हो गया था।

हमारे यहा ठीक ही तो कहा गया है....

'स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्य वावदिषदिबति।
स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत। इदमदर्शमिति॥

(ऐतरेयोपनिषद् १।३।१३

'जीव नें मनुष्य के रूप में जन्म लेकर इस समस्त विश्व को चारो ओर से देखा और कहा—'अहह ! यह विपुल वैचित्र्यपूर्ण विश्व ही सर्वव्यापी ब्रह्म है। अहो ! अत्यन्त प्रसन्नता और आश्चर्य की बात है कि मैने इस परब्रह्म को अपनी आंखो देख लिया है।'

नया जीवन मिला। एक बार फिर नये सिरे से जिन्दगी को ढालने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ।

उन पाचो ने फिर अपने स्वभाव और रुचि के अनुकूल नये प्रकार का जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया।

अन्धा समाज और रंग-विरंगे ससार की मादक मोहक सुन्दर सुन्दर वस्तुऐं देखने में सग्लन हो गया। उसने पहले बहुत सी चीजो को देखा ही न था। सयम और एकाग्रता वह जानता

नही था। तरह-तरह के आकर्षक दृश्य, चित्र, मोहक चीजे, कृत्रिम सौन्दर्य की सैकड़ो वस्तुये रह-रहकर उसे लुभाने लगी। वह सब कुछ विस्मृत कर सारे दिन खूबसूरत चीजो मे ही रमा रहता। उसके रस के लोभी नेत्र मनोरम दृश्यो मे दिन रात उलझे रहते। नारी की मादक रूप-माधुरी उसे विमुग्ध किये रहती।

लगडे को नये पाँव क्या मिल गये, मानो व्योम-बिहार के पंख ही प्राप्त हो गये थे। वह एक क्षण भी एक जगह न बैठता। मनमाने ढग से घूमता-फिरता। जब दखो तभी सैर-सपाटा करता पजर आता। वह कही भी टिककर न बैठता था। कोई एक काम भी हाथो मे लेकर पूरा न करता था। उसे घुमक्कड जीवन पसन्द था। उसने अनुभव किया कि मानव की विकास यात्रा-द्रुतगति से सर्वत्र चल रही है।

वह सोचता—जब सूर्य, जन्द्र, ग्रह, नक्षत्र को चुपचाप बैठने मै चैन नही मिला, वे सारे दिन चलते-फिरते है, तो मैं भी क्यो न चलायमान रहूँ ? निरन्तर चलते रहना, क्रियाशील बने रहना ही इस सृष्टि का अखण्ड नियम है। जहा रुके, वही मौत है, वही जड़ता है। चलना ही जीवन है, रुकना ही मृत्यु है।

बस, यही सोचता विचारता लंगड़ा विश्व भ्रमण के लिये निकल पड़ा। शेष जीवन मे खूब घूमता फिरा।

निर्धन को जीवन मे प्रथम वार इतनी विपुल धन सम्पदा मिली थी। बेचारे की आधी जिन्दगी गरीवी में कुट पिस कर नष्ट हो चुकी थी। उसके मन के अरमान, अतृप्त आकांक्षाऐ, प्रसुप्त वासनाये एकाएक उमड़ उठी। अव वह वडी शान से ऐश्वर्यपूर्ण जीवन विताने लगा। अधिकाधिक विलासिता, भाति-

प्ति के ऐश और आराम ही उसके जीवन के लक्ष्य बन गये। खाओ पिओ मौज उडाओ—इस तरह का भोगमय जीवन ही उसके जीवन की चरम परिणति थी।

निर्बल को हर किसी मजबूत ने दबाया था। अनेक बार वह बिना कसूर के पिटा था। बिना बात अपनी शारीरिक कमजोरी के कारण लज्जित और अपमानित होना पड़ा था। उसे वह उन सबके प्रति वैरभाव लिये फिरता था, मानो वह उस मौके की ताक मे था जब वह सबसे अपने लाञ्छन का बदला निकाल सके। अब जैसे ही उसे ताकत मिली, उसने अपनी ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध को निकालना शुरू कर किया। जिन-जिन लोगों ने उसे दबाया, मारा पीटा, लज्जित या अपमानित किया था, अब उसने उन सबको अपनी शारीरिक शक्ति से आतंकित करना प्रारम्भ कर दिया। अब कमजोर जनता उसके आन्तक से घबराने लगी।

मूर्ख ने विद्या क्या पाई, हर किसी पर अपनी विद्वत्ता और योग्यता की शान जमाने लगा वह वह अपनी बुद्धि के आगे किसी को भी समझदार न समझता था। वह सभा-सोसाइटियों में धड़ल्ले से अपने मत को प्रकट करता, प्राचीन शास्त्र ग्रन्थों का विरोध करता, कही-कही अपने समर्थन मे उनके प्रमाण भी पेश करता, अपनी विद्या बुद्धि-योग्यता की डींग हांकते कभी न थकता। उसे अपनी प्रतिभा पर घमण्ड था। लोग उसकी प्रशंसा करते, योग्यता के कारण मानप्रतिष्ठा करते, परिणाम यह हुआ कि लोकोपकार की इच्छा छोड़कर वह मिथ्या गर्व और झूठे सम्मान मे फूल उठा। अपनी विद्या और बुद्धिचातुर्य से उसने जमाने को उल्लू बनाना तथा सबका अपमान करना शुरू कर दिया।

नये अवसर का यह उपयोग पाँचों के वायदों के खिलाफ बिल्कुल बदला हुआ था। उन्होंने क्या सोचा था! क्या चाहा था! और अब वे क्या कर रहे थे। सब कुछ प्रतिज्ञा के विपरीत।

नये जीवन में वे पाँचों असमर्थ और अपग लोग केवल भौतिक सुख-भोगों में—मिथ्या मौज-मजों में अपनी जिन्दगी का का नाश कर रहे थे और मान रहे थे कि वे विलक्षण आनन्द लूट रहे हैं।

ऐसा कोई बिरला ही होता है, जो होश सँभालते ही रास्ता चुन लेता है। नही तो, प्रायः होता यही है कि बहुत कुछ चल लेने के बाद ही रास्ता ठीक करने का होश आता है। विचारों का यही स्थल वह चौराहा है, जहाँ पर से जिन्दगी के अन्त तक चलने वाली राह चुननी होती है।

इस चौराहे पर सभी को देर-सबेर एक दिन पहुँचना होता है और जरूरी हो जाता है कि एक उचित दार्ग पकड़ा जाय। रास्ते के उचित चुनाव पर ही हमारी भावी सुख-सफलता निर्भर है। यही वह असमंजस की घड़ी होती है, जब हम अपने मूल मन्तव्य के अनुसार प्रेरित होते हैं।

उन पाँचों का जीवन मिथ्या आनन्द और भोगों की मस्ती मे बीतने लगा। जीवन एक लम्बे आनन्द का क्षण था। एक प्रसन्नतादायक अनुभव था। अब दिन-रात इन्द्रिय-सुख, वासना तृप्ति, शोषण और दर्प-पूर्ति मे ही वे डूबे रहते। उन्हे किसी दूसरे की किंचित् भी परवाह न थी। जब पेट भर गया और सांसारिक सुख मिलने लगे, तो उनकी वासना की अग्नि भड़की और जिन्दगी कुकर्म और कुविचार की ओर चलने लगी, साथ ही कामना की आग भी उत्तरोत्तर भड़कती गयी।

बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते।

इस प्रकार बहुत दिन बीत गये !

एक दिन वरुण देव को एकाएक उन पाँचों असमर्थ अपङ्ग लोगों की बात स्मरण हो आयी। अपनी यात्रा उधर से ही रक्खी—'देखें, इन असमर्थों की प्रतिज्ञा निभी या नही ?' वे यही सोचकर उधर से गुजरे।

उसी शहर में ठिठक गये और देखने लगे उन पाँचों की कारगुजारी !

'अरे, यह क्या ? उन पाँचों का जीवन तो बिल्कुल ही बदल गया है। ये हर प्रकार की शक्ति-सामर्थ्य पाकर लोकोपकार न कर अन्य क्षुद्र सांसारिक विषयासक्त लोगों की तरह सकीर्ण भोगमयी दुनियादारी में व्यस्त है। पुण्य, परोपकार, सेवा, अज्ञान निवारण की जगह वे सांसारिक मान-प्रतिष्ठा, पद-अधिकार, भोग-सम्पत्ति, धन, जमीन-जायदाद इकट्ठी करने मे लगे है। ये तो पतित हो गये है !'

सुअवसर का ऐसा दुरुपयोग !

देखकर वरुणदेव की त्योरियाँ चढ़ गयी। वे उनकी वचनों को न निभाने वाली नीचता, छल, मिथ्याचार और झूठ-कपट से अत्यन्त खिन्न हुए।

बात भी ठीक थी। जिसे रोने-कलपने और गिगियाने से जीवन को सदाचरण मे लगाने का एक नया अवसर फिर दिया जाय, उसे बड़ी सावधानी से उसका सदुपयोग करना चाहिये तथा विशेष सत्-प्रवृत्ति के द्वारा उसको और भी उज्वल बनाना चाहिये। जो अज्ञान और अशिक्षा के अन्धकार में डूबा पड़ा है, उचित-अनुचित में विवेक नहीं कर पाता, उसे भी ऐसा करना चाहिए। फिर इन पाँचों को तो ज्ञान हो गया था, इनका तो

दृष्टिकोण ही नया बनने चला था, फिर ये क्यों प्रलोभनो में बह गये ?

'इन पाँचों को हमारे वरदान से कोई लाभ नहीं हुआ। इन्होंने जीवन के सदुपयोग का दूसरा सुअवसर पाकर भी नहीं किया। पशुओं का जीवन ही बिताते रहे। ऐसी जिन्दगी से क्या फायदा।'

यह सोचकर वरुणदेव ने खिन्न हो अपने दिये हुए वरदान वापस ले लिये।

अरे, यह क्या !

फिर वही पुराना असमर्थ जीवन। पुनः वह कारुणिक असमर्थता। दुबारा उसी अपगता के शिकार। एक दम यह कैसा कायापलट !

पलक मारते ही पाँचों अपग फिर पूर्ववत् जैसे के तैसे हो गये। अधे की आँखो का प्रकाश गायब हो गया। लँगड़े के पैर फिर जकड़ गये, वह चलने-फिरने मे असमर्थ हो गया। धनी फिर पहले की तरह सर्वथा निर्धन बन गया, वह फिर पूर्ववत् फटेहाल था। बलवान् को अशक्तता ने आ घेरा, उसकी सारी शक्ति गायब हो गयी। विद्वान की सारी विद्या विलुप्त हो गयी वह फिर नितान्त मूर्ख हो गया।

हाय ! हाय !! यह सब आकस्मिक परिवर्तन क्यों हुआ ? वे असमजस मे पड़ गये। कुछ समझ न पाये !

धीरे-धीरे उनकी पूर्वस्मृति स्पष्ट हुई।

उनका प्रारम्भिक जीवन एक बार फिर स्मृतिपटल पर घूम गया। उफ् ! हम जीवन का सदुपयोग न कर सके। वे अपने पुराने वायदों को याद कर-करके पछताने लगे।

अपनी मूर्खता पर सिर धून लिया उन्होंने। हमने पाये हुए सुअवसर को व्यर्थ ही प्रमाद में नष्ट कर दिया।

पर समय की गति बड़ी तीव्र है। वह निकल चुका था। अवसर हाथ से निकल चुका था अब पछताने से बनता भी क्या था?

समय चुकें पुनि का पछिताने!

तप से सत्संग और सहयोग का मूल्य अधिक है

"संसार में तपस्या से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। अपने लक्ष्य के लिये तप करने ही से काम, अर्थ, धर्म, मोक्ष इत्यादि की प्राप्ति हो सकती है। तपस्या से आदमी संयम सीखता है, सत्य और न्याय के पथ का पथिक बनता है। तप के द्वारा ही संसार की समस्त उपलब्धियाँ, उपार्जन और प्राप्ति संभव हैं"

'नहीं, नहीं ऐसा नहीं है ऋषि विश्वामित्र!'

'तो फिर वशिष्ठ जी, आप जीवन में सफलता के लिये किसे सर्वाधिक महत्व देते है?' विश्वामित्र जी ने पूछा—

'मैं तो अच्छे आदमी की मित्रता को ही विशेष महत्व का समझता हूं।' ऋषि वशिष्ठ कहने लगे—'विश्वामित्र जी, सत्संग में रहकर मनुष्य ऊँचा उठता है, अपने से अधिक विकसित लोगों के साथ रह कर उसे वही लाभ पहुँचता है, जो एक कुशल गुरू के निर्देशन में प्राप्त होता है।'

'पर तप से उसकी शक्तियां प्रखर हो उठती है, वशिष्ठ जी'

'उसकी संगति ही उसके चरित्र का मापदण्ड हैं। जो समझदार आदमी अच्छा सङ्ग करते है, उनके आचरण पर, उनके चरित्र पर, उनके कार्य कलापो पर तथा उनके दृष्टिकोण पर निश्चित रूप से अच्छा प्रभाव पड़ता है।' वशिष्ठ जी बोले।

'आप सर्वत्र तप के ही चमत्कार देख रहे है। जो अपने उच्च उद्देश्यों के लिए तपे हैं, जिन्होने विपत्तियाँ सही है, कष्टों की परवाह न कर लक्ष्य मे सफन हुए है, वे तपस्वी धर्म प्रचारक कार्यकर्त्ता भिक्षु, चिकित्सक, दार्शनिक और साधु पुरुष समाज के सिरमौर बने है । मैं तपस्या को ही चरित्र की कसौटी मानता हूँ।'

'सत्सङ्गित की महिमा बड़ी ऊँची है। याद आपको जब हनुमान जी लङ्का मे पहुँचे, तो उन्हे चारो ओर असुर दिखाई दिये तो बरवश उनके मुँह से निकल पड़ा था, सामु, सङ्ग नहिं कारज हानी!' एक तो सज्जनो के साथ से काम में सफलता मिलती है, दूसरे यदि काम न बने तो बिगड़ने की सम्भावना नही होती। याद है आपको विभीषण की सहायता से माता सीता का पता लग गया था। और उनका मनोरथ सफल हुआ था। तप इतना महत्त्व पूर्ण नही, जितना सत्सङ्ग और सहयोग!'

'देखिए वशिष्ठ जी, मैं तप को महत्वहीन नही देख सकता। तपस्या करके मनुष्य सब कुछ पा सकता है।'

'विश्वामित्र जी, आप माने या माने, गुस्सा हो या शान्त रहे, पर मेरी तो यही धारणा है कि सज्जन पुरुष की मित्रता से बढ़कर ससार में और कोई वस्तु नही।'

विश्वामित्र सफलता के लिए तपस्या को सब से ऊँची चीज मानते थे।

दूसरी ओर वशिष्ठ जी, अच्छे आदमी की मित्रता की प्रशंसा

करते जाते थे। सज्जन और निष्कपट मित्रों के सहयोग से जो बातें कठिन लगती है वे भी सरल हो जाती हैं।

दोनों ऋषि योग्यता और बुद्धि में बढे चढे थे। अपने २ दृष्टिकोण को विस्तार से प्रमाण दे देकर स्पष्ट कर रहे थे। वे अपने मन को पुष्ट करने के लिये नये नये तर्क प्रस्तुत कर रहे थे।

श्री वशिष्ठ जी ने कहा :—

महाजनस्य ससगः कस्य नोन्नतिकारकः।
रथ्याम्बु जाह्नवीसगात्रिदशैरपि वन्द्यते: ॥

तदुपरान्त मुनि विश्वामित्र जी बोले, 'यह नितान्त असम्भव है, और अपने मत की पुष्टि के लिए कहने लगे—

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तत्तपसा साध्य तपो हिं दुरतिक्रमम् ॥

शास्त्रार्थ होते होते काफी देर हो गई, पर कोई भी अपनी हार मानने को तैयार न था।

'ऐसे कोई बात तय न होगी ?'

फिर क्या किया जाय ? निर्णव का क्या तरीका हो सकता है ?'

'किसी को न्याधीश बनाकर मुकदमा पेश करना होगा। वह जो तय करेगा वही दोनों को मानना होगा।'

'हां, समस्या का सुलझाव तभी ठीक होगा।'

फिर कौन न्यायाधीश बनाया जाय ? कौन सब से बुद्धिमान है ?'

'एक सुझाव दूं।'

'हां. हां, कहिये तो। कौन अच्छा न्यायाधीश रहेगा ?'

'पाताल लोक चलना होगा मामला तय कराने के लिए।'

'वहाँ क्यो ?

पाताल में शेष नाग रहते है। उन्हे बड़ा ही बुद्धिमान और निर्णय-बुद्धि का माना गया है। वे सबसे उत्तम न्याय करेंगे।'

'हाँ, शेष नाग से मामला तय करना उचित रहेगा।

बस, वे दोनो ऋषि वाद विवाद के निपटारे के लिए पाताल लोक मे शेष नाग के पास जा पहुँचे।

'अहो भाग्य मेरा! अहाहा! दो महान् ऋषि आज मुझ से मिलने पाताल लोक पधारे है।' शेष नाग ने अपने फन पर रखी हुई पृथ्वी को तनिक सा सरकाते हुए कहा।' कैसे कष्ट किया आप लोगो ने ?'

'हम दोनो में एक सवाल पर बहस चल रही है।'

और उसके निर्णय के लिए आपके पास आये है।

'कहिए, कहिए, क्या मामला अड़ गया है आज ?'

विश्वामित्र बोले, 'मैं कहता हूँ कि संसार मे तपस्या सब से बड़ी चीज है। तप के द्वारा मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है। वशिष्ठ जी अच्छे आदमी की मित्रता को सर्वाधिक महत्त्व द रहे है।'

बीच ही में वशिष्ठ जी कह उठे 'शेष नाग जी, आप ही विचार कर देखिए सज्जन पुरुष की मित्रता से बढ़ कर क्या कुछ और चीज फलदायिनी हो सकती है ?

'मैं आपका झगडा समझ गया।'

'तो फिर निर्णय भी कीजिए किस का पक्ष मजबूत है ? कौन गलती पर है।' उग्र स्वर में विश्वामित्र पूछने लगे।

'आप तो चुप है !' वशिष्ठ जी ने उन्हे उकसाया, 'कुछ तय कीजिए न ?'

शेष नाग कुछ सोच विचार मे डूबे हुए थे।

विश्वामित्र और वशिष्ठ दोनों ही उच्चकोटि के महर्षि ! किसके दृष्टिकोण को सही और किसके को गलत कह दे ? कटु सत्य कहना भी खतरे से खाली नही होता ।

'मैं आप लोगो का झगड़ा समाप्त कर दूंगा....पर ....।'

पर क्या आपकी कोई शर्त है ?' विश्वामित्र ने पूछा—

'नही, शर्त तो नही है, पर आपकी सहायता की आवश्यकता पड़ेगी ।'

'हमारी सहायता ? सो कैसे ?' वशिष्ठ जी पूछ बैठे ।

'बात यह है'—शेष जी बोले—'आप देख रहे है इस समूची पृथ्वी का बोझ मेरे फन पर टिका ।'

'सचमुच बहुत बड़ा भार है आप पर !'

'तो आप एक काम करे । आपके सवाल को हल करने के लिए मुझे थोड़ी देर अपना भार हलका करना पड़ेगा, तभी मैं शान्ति पूर्वक सोच विचार कर सकूँगा ।'

'फिर आज्ञा दीजिए, हम कैसे आपकी सहायता कर सकते हैं ? 'ऋषियो ने उत्सुकता पूर्वक पूछा—

'यदि आप दोनो मे से कोई थोड़े समय के लिए धरती के बोझ को सम्हाल रखे, तो मेरे मस्तिष्क को शान्ति पूर्वक सोचने विचारने का मौका मिल जायेगा ।'

'यह तो बहुत आसान सा काम है ।'

'तो लीजिए विश्वामित्र जी, आप ही थोड़ी देर के लिए धरती का बोझ सम्हाल लीजिए ।'

विश्वामित्र स्वभाव से उग्र थे । उन्हें अपने तप का बड़ा गर्व था । परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी अन्यायकारी और क्रोधी स्वभाव का राज्य बहुत दिनों तक नही चलता ।

कहा भी है—

लभ्यते खलु पापीयान् नरः सुप्रियवागिह ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ ॥

अर्थात् दुष्ट लोग मीठी बाते बनाते है, किन्तु हितकारी अप्रिय बचन सुनना और सुनाने वाला दोनों ही दुर्लभ होते है।

विश्वामित्र आवेश में आकर फौरन उठकर बोले—

'मैंने बड़ी कठोर तपस्या की है । मुझ मे तत्पश्चर्या की महान् शक्ति निहित है। कौन है जो उग्र तपस्या मे मेरा बराबरी कर सके। अपने कन्धो पर सभाल सकता हूँ।'

शेष जी ने धरनी उनके कन्धो पर रख दी।

'अरे रे ! मरा रे !! बडा बोझ ! मैं तो इस धरती के बोझ से पिस जाऊँगा । बचाइये, बचाइये।' वे घबडा कर चिल्लाने लगे।

शेष जी के मुख पर एक हलकी सी मुस्कान उभर आई।

'थोडी देर तो सम्हालिये धरती का बोझ।' वे व्यंग मिश्रित वाणी मे बोले।

'यह भीषण बोझ—यह दुर्वह भार मुझ से....नही सहा जाता-शेष जी वापिस लीजिए पृथ्वी का भार...............।' विश्वामित्र घबराकर चिल्ला रहे थे।

आखिर शेष जी ने पुनः पृथ्वी को अपने फन पर सम्हाल लिया।

'तो वशिष्ठ जी आप इस भार को थोड़ी देर अपने ऊपर लीजिए। तभी मैं शान्ती पूर्वक सोच विचार सकूंगा।'

वशिष्ठ जी ने कहा—'ठहरिये तनिक ! धरती माता से छोटी सी प्रार्थना कर लूँ।

फिर धरती को सम्बोधन कर बोले—

'ऐ धरती माता ! यदि मैंने वास्तव में सत्संग की शक्ति प्राप्त की है, सहयोग और पारस्परिक प्रेम का संचित किया है, तो तुझ से प्रेम पूर्ण आग्रह है कि पल भर के लिए मेरे कन्धों पर ठहर जा।"

फिर वशिष्ठ जी ने धरती को अपने कन्धों पर ले लिया और सचमुच सबने एक चमत्कार देखा।

सत्संग, प्रेम और सहयोग के कन्धों पर धरती अडोल हो गई। वशिष्ठ जी ने भारी पृथ्वी का भार अपने कन्धों पर सम्हाल लिया।

तब शेष जी विश्वामित्र की ओर मुड़े।

'देखिए महर्षि विश्वामित्र ! आपकी उलझन का फैसला अपने आप ही हो गया।'

> अन्न पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम्।
> स्वाध्यायं सतत कुर्यान्न पचेदन्नमात्मने ॥

दान से ऐश्वर्य में कमी नहीं आती

प्राचीन भारत के एक गाँव में दो भाई रहते थे। उन दोनों के पिता किसान थे और वे खेती-बाड़ो से अपने जीवन का निर्वाह करते थे। पिता की पवित्र स्नेह स्निग्ध छाया से सयुक्त परिवार फलता-फूलता रहा।

दैव-दुर्विपाक से पिता की मृत्यु के उपरान्त दोनों भाइयों

को अपने खेत का बँटवारा करना पड़ा। अब वे पृथक-पृथक रहने लगे और उनके अलग परिवार बन गए।

बड़े भाई का विवाह हो चुका था, पर छोटा भाई अभी कुंवारा ही था। अब दोनो के खेत अलग-अलग हो गए थे। वे दोनों अपने श्रम की कमाई से खेती करते और धरती माता उन्हें भरपूर अन्न देती। ग्रामीण वातावरण, पाचों अङ्गुलियों की कमाई सरल आडम्बरविहीन जीवन के कारण उन पर ईश्वर की कृपा बनी रही और वे समाज के विषैले विकारो से बचे रहे। कठोर परिश्रम की वजह से दोनो ही उन्नतशील बने रहे। दोनों में कोई ईर्ष्या नहीं। हृदय को जलाने वाली प्रतिद्विन्द्वता नही।

एक दूसरे की समृद्ध और उन्नति को देख कर दोनों की आत्मायें उल्लसित हो उठती। काम के प्रति ईमानदारी और परस्पर स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहा।

उन्होने अपना जीवन ईश्वर अर्पित कर दिया था। वे खेत जोतते, तो उस प्रभु की पूजा समझ कर। खेतो की रखवाली करते, तो साधना के रूप मे। जो कुछ पैदावार होती, उसे परमात्मा का प्रसाद मानते। सुबह ईश्वर को प्रार्थना कर खेतों मे हल जोतते और सायंकाल भगवान् को धन्यवाद देते हुए खेतो से लौटते। श्रम और ईश्वरीय शक्ति का सान्निध्य! फल यह हुआ कि उनके खेत मे पैदावार काफी बढ गई।

मानव शरीर, समाज की परिस्थितिया और यह संसार, मनुष्य के विचारो के प्रतिफल है। श्रम मे ईश्वरीय सहायता की अनुभूति से वे शान्त, सन्तुष्ट और तृप्त रहने लगे। काम के साथ ईश्वरीय ध्यान रखने से उन्हे कठिनाइयो से जूझने में

बल मिलता, क्योंकि ईश्वरीय सहायता से आत्म-विश्वास दृढ होता जाता है।

एक दिन दोनों के मन में एक पवित्र विचार आया, 'कुछ परोपकार का कार्य करना चाहिये जिससे आत्मा को शान्ति मिले।'

'लेकिन परोपकार शुरू किससे करें?' शङ्का उठी।

आत्मा ने उत्तर दिया, 'पहले अपने परिवार को ही सम्भालो। जो सहायता करनी है, अपने कुटुम्ब से शुरू करो।'

'पहले घर वालों की उन्नति तथा विकास में सहायक बनें।' दोनों के गुप्त मन ने यह बात स्वीकार कर ली।

परोपकार का ध्यान जमते ही वे उन तरीकों को सोचने लगे, जिनसे वे एक दूसरे के परिवारों की गुप्त सहायता कर सकते थे। 'दूसरों की भलाई हो। हम दूसरों के कुछ काम आयें! हम अपने लिए नहीं दूसरो के निमित्त जिएँ। इन सात्त्विक विचारों ने उन्हें प्रकाशवान बना दिया।

वे चुपचाप एक दूसरे की सात्त्विक सहायता करने की सोचने लगे।

भारतीय संस्कृति ने गुप्तदान और गुप्त सहायता को ही सबसे ऊँचा स्थान दिया है।

आज से तीन शताब्दियों पूर्व तीन अन्धकारमयी रात्रियों में एक अलौकिक घटना घटी। यह ऐसी पवित्र घटना थी जिसके समकक्ष अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता।

छोटा भाई कुंआरा था। उसके पास कुटुम्ब का कोई उत्तरदायित्व न था। दिन भर परिश्रम को पूजा मानकर कठोर मेहनत करता रहता था मन लगा कर खेती के कठोर कृषक कर्म को करता। प्रसन्नतापूर्वक हँसकर कष्टों को झेलता। जीवन

को गहराई से सुमरता । हृदय से प्रार्थना करता और रात्रि मे चिन्ता मुक्त हो नीद मे सोता । ऐसे व्यक्ति के लिये सफलता का द्वार खुला था ।

बड़ा भाई बाल-बच्चे दार था । पति-पत्नी थे तो गरीब, किन्तु उनमे पारस्परिक विश्वास सुदृढ़ बना हुआ था । उससे दाम्पत्य जीवन मे उनका स्नेह स्थिर था । छोटी-मोटी गलतियाँ भी हो जाती तो दोनो के एक दूसरे का उदारतापूर्वक क्षमा कर देने से दाम्पत्य सम्बन्धों मे बिगाड पैदा नही होता था । वास्तव मे जो इतना भी न कर सके, उसे मनुष्य कहना भी भूल है । पति की सच्ची कसोटी यह है कि वह अपने सरक्षण मे निवास करने वालों का शारीरिक और मानसिक और भरण पोषण करते हुए परिवार के हितो में ही अपना सुख माने । उसकी पत्नी अपने बच्चों को सुखी, हंसता खेलता देखकर बड़ी खुशी होती थी । पति-पत्नी में स्नेहपूर्ण सम्बन्धों के कारण आनन्द का बातावरण बना रहता था । पत्नी कोई खास सुन्दर नही थी, लेकिन आन्तरिक पवित्रता, स्नेह और आत्मीयता के कारण पति को वही प्राणप्रिय लगती थी । उस नन्हे से परिवार का सुख-सौन्दर्य भी मधुर सम्बन्धो से ही फल-फूल रहा था ।

एक दिन दोपहर की चिलचिलाती धूप मे बड़ा भाई खेत मे जुताई कर रहा था । गर्मी के कारण वह पसीने से लथपथ था । थकान होने पर भी वह लगातार श्रम मे जुटा हुआ था ।

अचानक ही बड़े भाई के मन में ईश्वर की ध्वनि उदित हुई और वह सोचने लगा—मेरा छोटा भाई अकेला ही अपने खेत पर मेहनत मजदूरी करता है । मेरे साथ तो मेरी पत्नी और बाल बच्चे भी सहारा लगा देते है । उस एकाकी के तो इतने साधन भी नही जो जुताई-बुआई इत्यादि के लिए नौकर

रख सके। उस बेचारे के कोई भी सन्तान नहीं कोई काम मे उसका हाथ बँटाये। उसके खेत की उपज इसीलिए कम रहती है। न जाने किन मुश्किलों में बेचारे अपना गुजारा करता होगा। गरीबी और मजदूरी में जिन्दगी काट रहा है। फिर मैं क्या करूँ? किस तरह उसकी मदद करूँ? ठीक है याद आया... बस, यही ठीक रहेगा....आज रात मैं अपनी कटी हुई फसल का एक बडा-सा गट्ठर उठाकर चुपके से उसके ढेर में डाल आऊँगा....यह अनाज पाकर छोटे भाई को कुछ रोटी का सहारा लग जायगा। वह चार दिन सुखचैन की रोटी खा लेगा। बडा होने के नाते, उसकी सहायता करना मेरा पवित्र कर्त्तव्य है। बडा भाई बाप की जगह होता है। ईश्वर मुझे इस योग्य बनाये कि मैं अपने छोटे भाई के काम आ सकूँ और अपने वात्सल्य भाव की तुष्टि कर सकूँ।

उधर छोटे भाई की सात्विक प्रवृत्तियों ने भी जोर मारा। उसकी अन्तरात्मा ने कहा—'मेरे बड़े भाई के कन्धों पर बड़ी गृहस्थी का असह्य भार है। उनके पास छोटा-सा खेत है, मामूली उत्पादन होता है। बच्चो समेत न जाने कैसे गुजारा करता होगा? उसका हाथ तङ्ग रहता है। मेहगाई के जमाने मे बड़े कुटुम्ब को पालना कितना मुश्किल होता है। आदमी कहता नही, चुपचाप मुसीबत सहता रहता है। फिर मेरा बड़ा भाई कितना सज्जन है कि मुझसे कभी रुपये-पैसे की सहायता नही माँगता। आर्थिक कठिनाई भी हँसते-हँसते वहन करता है। धरती पर एक देवता की तरह है। ऐसे देवतुल्य भाई की चुपचाप कोई सहायता करनी चाहिये।

लेकिन मैं उसकी मदद कैसे करूँ? वह उतना स्वाभिमानी है कि यदि सबके सामने उसे कुछ रुपया-पैसा या अनाज दूँगा,

तो वह उसे मुफ्त का समझ कर कभी न लेगा। वह अपनी मेहनत की कमाई पर निर्भर रहना पसन्द करता है। इसलिए आज रात अन्धकार मे जब कोई न देख रहा होगा, सब सो जायेंगे, मैं अपने खेत से अनाज का एक बडा गट्ठर बांध कर उसके फसल के ढेर में डाल आऊँगा। उसे कुछ दिन आर्थिक सहारा लग जाये गा।

धीरे-धीरे साँझ रजनी के आँचल में छिपने लगी। किसान थके मादे अपने घरों को लौटने लगे। गाँव के छोटे-छोटे घरों मे दीपक जलने लगे। चूल्हों पर उनकी हण्डिया खदबद करने लगी। उन्होंने रूखा-सूखा भोजन प्रेम से खाने के बाद बान की बुनी खटियों की शरण ली और सन्तोष की नीद सोने लगे।

दोनो भाइयो ने अपनी-अपनी सद्भावनाओ को क्रियात्मक रूप देने की सोची।

रात्रि के अन्धकार में दोनो एक एक बड़ा गट्ठर सिर पर उठा कर चुपचाप एक दूसरे के खलिहान में डाल आये।

वे परस्पर समझ रहे थे कि गुप्त रूप से रात्रि मे ईश्वरीय सहायता पाकर दूसरा व्यक्ति चकित हो उठेगा।

दोनों ने अपने खलिहान सम्हाले, वे पूर्ववत् पूरे थे।

यह सब क्यों कर हुआ! कोई परिवर्तन क्यो न हुआ? दोनो ही आश्चर्य मे डूबे हुए थे।

दोनो चुप रहे।

दूसरी रात भी उन्हीं उदार भावों से प्रेरित होकर दोनों भाइयो ने फिर वैसा ही किया। इस बार जरूर दोनो के खलिहानो मे कुछ बढोत्तरी हो जायगी। दूसरे के अनाज से फायदा होगा। रोटी मे कुछ सहारा लगेगा।

दूसरा दिन चढने पर फिर दोनों के खलिहान ज्यो के त्यों भरे पूरे थे। न किसी प्रकार की कमी, न अधिकता।

हे परमेश्वर! यह सब क्या है? क्यो हमारे खलिहान कम या अधिक नही हुये? क्या जादू है यह? हमने भाई के खलिहान में अनाज का इतना बडा गट्ठर डाला, पर उसका कोई अन्तर हमारे खलिहान पर नही पडा।

उनका आश्चर्य दुगना हो गया। पर वे एक दूसरे से कुछ न कह सके। अपनी गुप्त सहायता को बात कहने से उनका सारा पुण्य समाप्त हो जाता।

दोनो फिर पूर्ववत् चुप रहे।

तीसरी रात्रि आई!

आकाश मेघाच्छन्न था। न चांद की शुभ्र स्वेत चन्द्रिका और न नक्षत्रो की मन्द, मधुर झिलमिलाहट!

अन्धकार ने जैसे समस्त ससार को अपने काले आचल मे छिपा लिया था।

वेला नीरब और निस्तब्ध थी।

दो मनुष्य दबे पॉव अनाज के दो बड़े-बड़े गट्ठर उठाये अपने अपने खेतो से विपरीत दिशाओं में चोर की तरह धीरे-धीरे सरक रहे थे।

अन्धकार के कारण मार्ग न दीखता था। उनकी आँखें काम नही कर रही थी। आखे फाड़ फाड कर देखने के बावजूद भी उन्हे कुछ नजर नही आ रहा था। केवल अनुमान से ही सामने वाले खेत की ओर बढ रहे थे।

फिर उन्होने कोई लालटेन या रोशनी क्यो न ले ली?

वे चोरो की तरह चुपचाप क्यो जा रहे थे?

शायद वे चुपचाप कोई ऐसा काम करने जा रहे थे, जिसे वे दूसरे को दिखाना नहीं चाहते थे। बस, अंधो की तरह टटोलते-टटोलते अन्दाज से आगे बढे चले जा रहे थे।

एकाएक वे दोनो टकरा गये।

घुप अन्धकार मे कोई एक दूसरे की शक्ल सूरत न देख सका !

केवल स्पर्श मात्र से ही उन्होने एक दूसरे को पहिचान लिया कि वे दोनो एक ही मां के आत्मज है उनके रोम-रोम से प्रेम की गुप्त किरणे निकल रही थी। अंग-अग से मातृ प्रेम की मजुल पवित्र भावनाएँ विकीर्ण हो रही थी।

उन्होने सर से अनाज के वे बड़े गट्ठर जमीन पर फैंक दिये।

वही उसी क्षण वे एक दूसरे से गले मिले। उस आलिंगन मे स्वर्गीय सुख था। कितना प्यार और दुलार !

उनके नेत्रो से अविरल प्रेमाश्रु बरस रहे थे।

१०

देवता में दमन, मानव में दान और दानव में दया के गुण विकसित होने ही चाहिए

देव, मानव और दानव एक बार प्रजापति के पास जीवन में उपयोगी उपदेश लेने की इच्छा से गये। 'हमें जीवन का कोई उपयोगी सूत्र दीजिये।' उन्होने प्रार्थना की।

ऋषि चिन्तन की गम्भीर मुद्रा मे बैठे थे। तीनों यह प्रतीक्षा करते रहे कि वे तीनों को जीवन-कला का कौन सा लाभदायक सूत्र प्रदान करेंगे। उन्हे हमेशा कुछ न कुछ उपयोगी तत्व मिले थे।

उसका अनुमान था कि वे तीनो को अलग-अलग कोई छोटा सा भाषण देंगे, क्योकि तीनों वर्गो को जिन्दगी, दृष्टिकोण और तौर-तरीकों में भारी विभिन्नता थी। जो बात देवताओ के लिये उपयोगी हो सकती थी, वह मानवो के लिए उतनी हितकारी नहीं हो सकती थी। और दानवो की तो दुनिया बिलकुल ही अलग है।

देवता लोग स्वर्ग में बड़े आराम से जिन्दगी गुजारते थे। उन्हे सभी भोग-विलास, आमोद-प्रमोद, सुख-सुविधाएँ सहज उपलब्ध थी। उनका समग्र जीवन एक लम्बी छुट्टी जैसा था। न कोई काम, न कोई उत्तरदायित्व ! मौज और मजा "दिन-रात आनन्द ही आनन्द"' हा-हा''' हू''' हू'''!

दूसरी तरफ मानव लोभ की दुनिया मे रहते थे, जिसमें नित्यप्रति रुपये के लिये मार-काट, आपा-धापी, संघर्ष और छीना-झपटी चल रही थी। पूँजीपति गरीब मजदूरो का शोषण कर रहे थे। महाजन किसानो को लूट रहे थे, अमीर गरीबों का दलन कर रहे थे। बड़ी मछली जैसे छोटी मछली को निगल रही हो। धन-संग्रह के पीछे वे पागल-जैसे हो रहे थे। सौ से हजार''' हजार से दस हजार''' लाख'' तिजोरियाँ भर रहे थे और गरीबो का शोषण कर रहे थे।

दानव लोग क्रूरता और क्रोध मे प्रायः परस्पर लड़ते-कटते थे। आये दिन उनमे कोई न कोई झगड़ा-तकरार, मार-पीट, उत्तेजना, अत्याचार और वैर-विरोध चलता ही रहता था।

जरा-जरा सी वात पर वे आवेश मे आकर हत्याएँ या लडाइयाँ कर बैठते थे। कडवी और तीखी बाते बोलना, गाली देना और जरा-सी वात पर उत्तेजित हो उठना झगड पडना उनकी कमजोरियाँ थी वे अनाप-शनाप वकवास करते रहते थे।

'हमें जीवन मे उपयोगी सूत्र दीजिए।' उन्होंने फिर कहा।

सलाह के लिये देव मानव और दानव प्रजापति की ओर उत्सुक नेत्रो से निहार रहे थे कि कव उनके मुख से अमृतोपम उपदेश निकलता है। काफी देर तक वे वाट देखते रहे।

अन्त मे प्रजापति ने अपने नेत्र खोले।

उनके नेत्रो से ज्ञान और अनुभव की प्रखर ज्योति विकर्ण हो रही थी।

वे बोले, 'देव, मानव और दानव ! तुम तीनो मुझ से अलग उपदेश की इच्छा से आये हो, किन्तु मैं वह उपयोगी बात दूँगा, जो तुम तीनो के लिए समान रूप से लाभकारी है और तीनो के जीवन को उन्नत वनाने वाली है।"

"वह क्या है, भगवन् ?' तीनो ने उत्सुक मुद्रा से पूछा।

'मै यही सोच रहा हू कि तुम्हे क्या दूँ ? कौन सी ऐसी चीज हो सकती है, जो सभी को एक-सा लाभ पहुँचाये ?"

वे सोचते रहे। विचारते रहे। प्रतीक्षा करते रहे।

फिर प्यार विखेरते हुए हलकी-सी मुस्कराहट से बोले—'मै तुम्हे उपदेश के रूप मे केवल एक अक्षर देता हू।"

'वह कौन-सा अक्षर है, करुणानिधान ?' सवने पूछा।

उन्होने उपदेश देते हुये कहा, 'यह अक्षर 'द' है। तुम 'द' को ले जाओ। जिन्दगी मे 'द' से तुम्हे सव प्रकार लाभ

मिलेगा। यह वह अक्षर है जिसमें तुम तीनो के लिये अलग-अलग सब कुछ कहने योग्य सार-तत्व आ गया है।'

थोडी देर तक चारो ओर शान्ति छायी रही।

तीनों कुछ देर तक इस उपदेश पर सोच-विचार करते रहे। ऋषि ने देवों से पूछा, तुम 'द' का मतलब समझ गये ?'

तीनों एक-दूसरे के मुख की ओर जिज्ञासा से निहारने लगे। ऋषि ने फिर प्रश्न दुहराया, 'आप लोग जानते है कि 'द' शब्द द्वारा मैंने आपको क्या उपदेश दिया है ?'

'जी हाँ ! जी हाँ !! हम आपका अभिप्राय अच्छी तरह समझ गये। अब आपको विस्तार से समझाने का कष्ट नहीं करना पडेगा।'

ऋषि ने सन्तोष की साँस ली।

'लेकिन फिर भी मैं आपके मुँह से सुनना चाहता हू कि आखिर 'द' से आपने क्या क्या मतलब समझा है ? अच्छा, देव ! तुम बतलाओ, तुमने 'द' का क्या मतलब समझा है ?'

देव ने उत्तर दिया, 'जी हाँ, मै इस अक्षर में अपनी जाति के लोगों की निर्बलता और उसके निवारण का उपदेश पढ रहा हूं।'

'यों नहीं, समक्ष स्पष्ट करो।"

देव ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा, 'आप यह कहना चाहते है कि हम देव-लोग चिरकाल से आराम से रहने के कारण कामी और विलासी बन गये है। हम अपना सारा बहुमूल्य समय भोग विलास और आमोद-प्रमोद में नष्ट कर देते है। हम इन्द्रिय लोलुप और भोगी बन गये हैं। हमें उच्च आध्यात्मिक जीवन प्रति कोई अनुराग नही है। 'द' अक्षर का अर्थ है 'दमन' अर्थात् आपने हम देवों को इन्द्रिय-दमन, संयम और कार्यशीलता का अमृतोपम उपदेश दिया है।'

ऋषि उत्तर से सन्तुष्ट हुए—'तुमने 'द' का अर्थ ठीक समझा है। जीवन मे इसे उतरो।' तब वे मानव की ओर मुड़े और बोले, 'मानव, तुम बोलो, 'द' का तुमने क्या अर्थ समझा है'

मानव ने सकुचाते-लजाते हुए कहा, 'मुझे अपनी निर्बलताए दर्पण की भाति उजागर हो गयी है। इस अक्षर से मैं अपनी जाति की, मानव मात्र की वे कमजोरिया देख रहा हू जिनसे हमे बचना चाहिए।'

'साफ-साफ कहो। छिपाने की कोई जरूरत नही है।'

मानव ने आगे कहा, 'हम मानव बड़े लोभी है। धन-सग्रह करने में उचित-अनुचित, ईमानदारी-बेईमानी का कोई ध्यान नही रखते, दिन-रात गरीबो का शोषण करते है। सैकड़ो से हजार, हजार से लाख, और लाख से करोड़ों रुपया इकट्ठा करते जाते हैं। अनुचित तरीको से कमाये हुए धन से हम लगातार अपनी तिजोरियाँ भर रहे है, महल और कोठियां बना रहे है। न दूसरो को खाने देते है और न आप खाते है।

धन-सग्रह ने हमें पागल कर दिया है। इसलिए 'द' अक्षर से आपने हमे 'दान' देने का उपदेश दिया है। हमे दान देना चाहिए। हम लोग यदि न भी वने तो कम से कम उदार तो अवश्य बन सकते है।'

ऋषि सन्तोष-भरे स्वर में बोले, 'तुमने वास्तव मे मेरा अभिप्राय ठीक ही समझा है।'

फिर ऋषि दानव की ओर मुडे और दानव से वही सवाल किया, 'तुमने 'द' का क्या अभिप्राय समझा है?'

दानव लज्जित होकर बोला, 'हम दानव लोग बड़े क्रूर और क्रोधी है। आवेश और उत्तेजना के क्षणो मे आग बबूला हो उठते है। भविष्य की चिन्ता नही करते। गाली-गलौज

करते हैं, एक दूसरे को कटु वचन बोलते हैं और बेमतलब झगडा करते हैं। हम अशिक्षित, अज्ञानी और पिछड़े हुए है। उत्तेजना के पागलपन में अपनी गिरी हुई अवस्था के लिये जिम्मेदार है। 'द' अक्षर द्वारा आपने हमें 'दया-भाव' को विकसित करने का उपकारी और कल्याणकारी उपदेश दिया है।"

तुमने ठीक मतलब समझा। तुम तीनों ही इस उपदेश से अपनी कमजोरियाँ छोड़कर इन्द्रिय-दमन, दान और दया जैसी सम्पदाओं को अपने स्वभाव और चरित्र में विकसित करो, तो जिन्दगी सफल होगी।'

इस प्रकार देव, मानव और दानव सन्तुष्ट होकर चले गये।

वि मे कर्णा पतयतो विचक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूर आधो: किं स्विदवक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये॥
—ऋग्वेद ६।९।६

अर्थात् याद रखिये, मनुष्य की चंचल इन्द्रिय कभी एक ही दिशा में स्थिर नही रहती। अवसर मिलते ही वे अपने योग्य विषयो की ओर दौड़ती है।

इसलिये मनुष्यो को चाहिये कि वे चंचला इन्द्रियों को विषय लोलुपता के प्रति सदैव सावधान रहें।

न वाऽदेवा. क्षुधमिद्वध ददुरुताशितमुपगच्छन्ति मृत्यवः।
उतोरयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितार न विन्दते॥
ऋग्वेद—१०।११७।१

याद रखिये, आपके धन की उपयोगिता दीन-दुखियों के अभाव दूर करने मे है। इसलिये दान देने की आदत सदैव बनी रहनी चाहिये।

जो दान नहीं करते, वे कंजूस आदमी अपनी संग्रह-वृत्ति के

कारण सदैव कष्ट ही पाते हैं। उन्हे अपने धन के लुट जाने का हमेशा डर बना रहता है।

इसलिये अपनी आवश्यकताओं से बचा हुआ धन दान के रूप मे समाज को वापस दे देना चाहिये।

राष्ट्रीय संकट में स्वार्थ त्याग के लिए हमें तैयार होना है

जापान की एक घटना हैं।

युद्ध के दिनों में जापान की भोजन समस्या बहुत विकट हो गई थी, बहुत सा खाद्य पदार्थ मोर्चो पर लडने वाले सैनिको के लिये भेज दिया जाता था। नागरिक बचे-कुचे शेष रहे अन्न से उदरपूर्ति करते थे। खाद्य सामग्री को सब नागिरिको तक पहुँचाने के लिए कन्ट्रोल आवश्यक हो गया था। जापान के प्रत्येक नागरिक को नपा-तुला राशन मिलने लगा।

कुछ व्यक्ति तो स्वभाव से ही मिताहारी होते है। कम खाकर अपना काम चलाते है। समय पर अधभूखे रहकर भी जिन्दगी काट लेते है। व्रत-उपवास की परम्परा ही इस नियन्त्रण को सिखाने वाली युक्ति है। लेकिन कुछ व्यक्ति बहुत अधिक खाने-पीने व मौज उडाने वाले होते है, उनको खुराक अधिक होती है।

जापानी फौज के अवकाश-प्राप्त अफसर जनरल यामानुची वृद्ध हो गये थे, तथापि उनकी खुराक बहुत थी, जितना सरकारी राशन मिलता था, वह इन फौजी अफसर के लिये चौथाई भी

न था। उनके मन में द्वन्द्व मचा, 'चाहे मेरी खुराक कुछ भी क्यों न हो, चाहे मुझे एक समय ही भोजन मिले, पर सरकारी राशन से जितता भी अन्न मुझे मिलता है। उसी में काम चलाना चाहिये।'

भूख ने कहा, 'यदि तू पूरा भोजन शरीर को न देगा, तो मर जायेगा। शरीर की भौतिक आवश्यकताओं के लिये तुझ जैसे भारी भरकम शरीर वाले साधारण की अपेक्षा अधिक भोजन की आवश्यकता है।'

उसका विवेक वोला, 'जनरल यामानुची! देश के प्रति अपने कुछ विशेष उत्तरदायित्वो का पालन करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। यह जन-तान्त्रिक युग है और इस प्रणाली में राज्य-संचालन की बागडोर परोक्षरूप में सभी पर आ जाती है। तुम्हे शासन-व्यवस्था मे पूर्ण सहयोग देना चाहिए। राष्ट्रीय संकट मे जो भोजन मिले, उसी से काम चलाना चाहिए।'

इस सघर्ष का फल यह हुआ कि जापान के जनरल यामा-नुची ने अटल निर्णय कर लिया कि राष्ट्रीय संकट के समय वे उतने ही भोजन से काम चलायेंगे, जितना कि उन्हें सरकारी राशन से मिलता है, लेकिन स्थूल शरीर के लिए वह भोजन अपर्याप्त था। नतीजा यह हुआ, भोजन के अभाव मे वे दिन-दिन दुवले होने लगे। उनके मित्र व सम्वन्धी आते और अपनी जिद छोड देने का आग्रह करते, 'आप कुछ अधिक खाइये। आप आज्ञा दें, तो हम गुप्त रूप से अपने राशन में से कुछ भाग दे दिया करें ?

दूसरे मित्र ने सुझाव दिया, आप सरकार से प्रार्थना करें, तो पुरानी सेवा और वफादारी के कारण आपका राशन बढ़ भी सकता है।'

लेकिन देशभक्त यामानुची ने उत्तर दिया—'नागरिको के हिस्से मे से अपने लिये अधिक लेकर उन्हे क्यो भूखा रखू ? मै तो बूढा हो चुका हू । एक पाँव कब्र में है, दो-चार वर्षों में मै वैसे ही मर जाऊ गा, पर उन युवको और राष्ट्र के सेवको का ग्रास क्यो छीनू, जिन्हे अधिक जीना है और राष्ट्र की रक्षा करनी है !'

वहुत समझाने पर भी वे न माने । भोजन के अभाव में उनका शरीर कमजोर होता गया । अन्तत वे निर्बल होते-होते कुछ महीनो में काल कवलित हो गये !

× × ×

जर्मनी का दूसरा युद्ध चल रहा था । उनके देशवासी प्राण-प्रण से अपनो फौजो की सहायता कर रहे थे । हर नागरिक को यह इच्छा थी कि उसका देश विजयी हो ।

युद्ध मे लगी हुई फौज घोड़ों पर गुजरती थी । सयोग से एक बार उनकी सेना के घोडो को चारे की जरूरत पड़ गई ।

चारा कहाँ से लिया जाये ? सेनापति के सामने विकट प्रश्न था ।

उसने सोचा, उस खेत से चारा लेना ठीक रहेगा, जिसमे उपज अधिक हो । ऐसा होने से खेत के मालिक को विशेष हानि न होगी । साधारण उपज वाले खेतो को उजाडना तो गरीब किसान को तबाह करना होगा ।

जर्मन सेनापति ने एक किसान को बुलाया । पूछा, 'हमे चारे की बेहद जरूरत है । हमारे घोडे भूखे है । हमें बताओ किसके खेत मे चारा अच्छा है ?'

किसान गरीब था, पर था सच्चा देशभक्त । कहने लगा,

'ठीक है, जनरल साहब, आप मेरे पीछे पीछे आइये। मै आपको वह खेत दिखाता हू, जिसमे बहुत अच्छा चारा है।'

'तुम एक कर्त्तव्यनिष्ठ किसान हो, जो अपनी सेना की सहायता करने जा रहे हो।' जर्मन सेनापति ने उत्तर दिया।

वे लोग चलने लगे, किसान तेज गति चल रहा था और पीछे-पीछे जर्मन सेनापति। एक के बाद एक अनेक हरे-भरे खेतों के समीप मे होकर निकले।

'अहह! बड़े हरे भरे है ये खेत! क्या इनसे भी अच्छा खेत होगा?'

'जी, बहुत अच्छा! भला ये तो क्या है, उसके सामने। आप मेरे पीछे पीछे चले आइये।'

'लेकिन हम तो अब काफी दूर निकल आये। अच्छे चारे वाले खेत तो पीछे छूट गये। अब तो वह आ रहे है, जिनमें मामूली चारा पैदा हुआ है?'

'कोई आपत्ति नहीं! किसान ने कहा, आपको कष्ट तो होगा, पर चले आइये पीछे पीछे।'

'क्या और भी दूर चलना है अभी?'

'बस, अब अधिक दूर नही!' किसान बोला।

किसान से इसी प्रकार बात चीत करते हुये वे काफी दूर निकल गये, अन्त में एक मामूली से चारे के खेत में आ पहुँचे। लीजिये, यह खेत है। यही तक हमें पहुँचाना था - इस खेत का चारा बहुत अच्छा है। जितनी आवश्यकता हो आप इसमें से काट लीजिये।

'लेकिन इसमें चारा तो दूसरों की अपेक्षा कम ही दीखता है। यह खेत दूर भी बहुत है और इसकी पैदावार भी दूसरे खेतो से अच्छी नही है। पीछे वाले खेत सरसब्ज और चारे से

भरे पूरे थे, यह तो बहुत मामूली उपज वाला किसी गरीब किसान का खेत है, हमे इतनी दूर इस साधारण से खेत पर क्यो लाये ?"

डरते-डरते किसान बोला, "जी, यह मेरा खेत है जब तक मेरा खेत मौजूद है, दूसरो के खेत की ओर सकेत कैसे करू ? राष्ट्र-सेवा का यह पुण्य तो पहले पहल मुझे ही लूटना चाहिए, फौज के घोडो के लिये इस खेत मे से चारा कटवा लीजिये, यदि कमी पडे, तब दूसरो के खेत में जाइये।"

"अच्छा ! तो यह बात है, तुम सच्चे देशभक्त हो।"

स्वार्थ से जीवन का उद्देश्य अधूरा रहेगा।

"गुरुजी, यह विद्यार्थी केवल चार-पाँच वस्त्रो से ही काम चलाता है। जहा औरो के पास कितने ही जोडी कपडे है, इसके पास मुश्किल से, केवल दो जोडी वस्त्र हैं। बडा कन्जूस दीखता है।"

गुरुजी को उत्सुकता हुई। उन्होंने तुरन्त उस युवक को बुला भेजा। उसकी आदतों के विषय मे उन्हे जिज्ञासा हुई।

उससे पूछा, 'तुम केवल दो जोडी वस्त्रो से कैसे कार्य चलाते हो ? क्या कठिनाई है तुम्हारे साथ ?'

'गुरुजी, मजबूरी।' लज्जित स्वर मे छात्र बोला।

'कैसी मजबूरी ! क्या वस्त्रो के लिये पैसे की तङ्गी है ? गरीब परिवार के हो ?'

'जी, तङ्गी तो नही है, पर आर्थिक हालत कमजोर है। फिर मुझे और जरूरी कार्यो के लिये पैसों की आवश्यकता पड जाती है। एक ओर बचत, तो दूसरी ओर खर्च। जरूरी कामो मे पहले खर्च करता हू।'

'क्या मतलब ? स्पष्ट करो। हम समझे नही।'

'रात में पढना पड़ता है। परीक्षा निकट है।' छात्र बोला।

'तो क्या हुआ ! सभी कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी रात्रि का सदुपयोग करते है।' गुरु ने कहा।

'जी, मुझे कई बार रात मे पढने के लिये तेल की कमी पड जाती है। इसलिये ……।'

'इसलिये क्या ?'

'मैने कम कपडो मे ही काम चलाना शुरू कर दिया है। बचे हुए पैसो का उपयोग मै अपने अध्ययन के खर्चो मे क ता हू।'

'ओफ ! उन्नति के लिए इतना सयम। इतनो किफायत। तुम वास्तव में एक दिन सपार को अपनी प्रखर बुद्धि से चमत्कृत करोगे। कहते-कहते प्रेमार्द्र हो, प्रिंसिपल ने उसे हृदय से लगा लिया। वे विद्यार्थी की प्रखर बुद्धि से पहले ही प्रभावित थे। छात्र के इस अध्यवसाय और ज्ञान सञ्चय की शुभ प्र त्ति पर वे मुग्ध हो उठे।

मेरा एक सुझाव है तुम्हारे लिये।'

गुरु जी, वह सुझाव अवश्य मेरे लिये उपयोगी होगा। आप मुझे पिता की तरह वात्सल्य देते है। इसलिये कहिये मेरे लिये आपका क्या सन्देश है ? मुझे क्या आज्ञा होती है ?' छात्र ने पूछा।

'मेरी इच्छा है कि तुम्हे इन्डियन सिविल सर्विस मे भेजू जिससे तुम कलक्टर या कमिश्नर बनो । ऊँचो से ऊँची सरकारी नौकरी प्राप्त करो। सत्ता की कुर्सी सुशोभित करो। तुम जेसे अध्ययनशील और कुशाग्र छात्र को शासन की बागडोर सम्हालनी चाहिये।'

वह छात्र ध्यान से प्रिसिपल के विचार सुनता रहा।

'आपकी इच्छा सर माथे पर है, गुरुदेव ! उसमे मेरे प्रति सोहाद्र को तीव्र भावना छिपी हुई है । सिविल सर्विस मे जाने के प्रस्ताव के लिये मैं आपका आभार प्रदर्शित करता हू, लेकिन · · क्या बात है ?'

छात्र कुछ कहना चाहता था, पर सङ्कोच कर रहा था। कुछ शब्द आकर ओठो तक ही रह जाते थे।

'जो कुछ कहना है, कह क्यो नही डालते !' उन्होने छात्र को उत्साहित किया ।

'श्रीमान् जी ! मुझे पदाधिकार नही चाहिये।'

'क्या कहा ! ऊँची कुर्सी, सरकारी नौकरी, सत्ता और रुपया कुछ नही चाहिये। फिर क्या चाहिये तुम जैसे पैसे की तङ्गी से मारे हुये युवक को ?

गुरुजी अपनी मौलिक बुद्धि और परिश्रम का उपयोग स्वार्थ मे करू, इससे मेरे जीवन का उद्देश्य पूर्ण न हो सकेगा।'

फिर तुम्हारा जीवन का लक्ष्य क्या है भला ?' उन्होने छात्र से पूछा।

'मैं भारतीय शास्त्रो का गहन अध्ययन करना चाहता हूं। हमारे धर्म ग्रन्थो ज्ञान और सिद्धियो का अक्षय भण्डार भरा हुआ है।'

तुम जैसा विद्यार्थी जिसमे अटूट निष्ठा, अडिग श्रद्धा और अटल विश्वास है ज्ञान अर्जन में सबसे आगे रहेगा, यह मेरा आशीर्वाद है।'

'मुझे पदाधिकारी नहीं चाहिये कृपा कर सकते हो, तो मुझे अध्यापक बना दीजिये, जिससे प्राप्त ज्ञान औरो को प्रचुरता से बाँट सकूँ।'

छात्र की इच्छा सुन प्रिंसिपल चकित रह गये।

प्रकाण्ड विद्वान् बनने पर भी इस छात्र को पद लिप्सा नहीं है। अजीव युवक है। क्या आप जानते है कि यह छात्र कौन था ?

बाद में यही छात्र स्वामी रामतीर्थ के नाम विख्यात हुए।

दान, परोपकार और कर्तव्य को परम्परा अभो समाप्त नहीं हुई है।

काम ही सच्ची ईश्वर पूजा है

जयपुर में मै एक रिक्शा मे बैठकर युनिवर्सिटी जा रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था और हवा में कुछ सुखदायक ठण्ड थी। मन में बाते करने की इच्छा हो उठी। रिक्शा चालक पौशाक से शिष्ट और सभ्य दिखायी दिया।

मैने पूछा—'कितने दिनो से जयपुर में रिक्शा चलाते हो ?"

'यही कोई दो महीने से ।'

'यह रिक्शा तुम्हारा निजी है क्या ?'

'नो सर, आई हैव हायर्ड इट । आई पे वन एट डेली फार इट टु इट्स ओनर ।' (नही महाशय ! मैने इसे भाडे पर ले रखा है, इसके मालिक को मै इसके लिये डेढ रुपया रोज देता हू ।)

उसके अंग्रेजी बोलने पर मुझे आश्चर्य हुआ । कोतूहल बढा । मै बोला–'अरे, तुम तो अंग्रेजी भी जानते हो । कैसे सीखी यह भाषा ?'

वह थोड़ी देर रुका, फिर बोला–'अंग्रेजी, जी अंग्रेजी ही नही, और भी बहुत-सी चीजे पढी है । फिजिक्स, मैथेमैटिक्स और कैमिस्ट्री ... ...एक साल नही, कई वर्ष पढा है । सब कालेज मे रह कर नियमपूर्वक पढा है । फीसे दी है ।'

'क्या कोई परीक्षा पास की है ?'

'जी, मैने बी-एस-सी० की परीक्षा पास की है । दुर्भाग्य से थर्ड डिविजन मे निकला हू ।'

उत्तर सुन कर मुझे ऐसा लगा, जैसे बिजली का तार ही छू गया हो ।

मै सोचने लगा, बी एस सी. पास करने पर भी रिक्शा चलाने जैसा निम्नकोटि का कार्य ? कैसे यह युवक इस हीन कार्य से अपने-आपको जोड़े हुये है ? मेरा मन भानुमती का पिटारा बना हुआ था । अनेक प्रकार के सन्देह और जिज्ञासाए मन मे उठ रही थी ।

इतना पढ-लिखकर भी रिक्शा चलाने-जैसी मजदूरी का-सा

दान, परोपकार और कर्तव्य की परम्पराएँ :

काम क्यों किया ? तुम्हें तो किसी फैक्टरी में, दफ्तर या स्कूल मे नौकरी मिल सकती थीं।'

'नौकरी……ना—करी। नौकरी से गिरा हुआ दूसरा कार्य क्या होगा ?'

'मैं तुम्हारा मतलब नही समझा। कुछ स्पष्टीकरण करो भाई !'

'जी, मैंने शुरू से ही यह सङ्कल्प किया था कि नौकरी की गुलामी न करूँगा। कोई स्वतन्त्र पेशा करूँगा। स्वयं अपने पाँवों पर खड़ा रहूँगा। मैं नौकरी से स्वतन्त्र कार्य को कही बेहतर समझता हूँ। मजबूत हाथ-पाव और सुशिक्षित दिमाग मेरे पास है, फिर नौकरी करके क्यो किसी बुरे स्वभाव के मालिक की अन्यायपूर्ण उक्तियाँ सहता फिरूँ ? मुझमे झूठी शान जैसी कोई व्यर्थ की भावना-ग्रन्थि नहीं है। मैं आदमी के कर्म मार्ग और पुरुषार्थ मे विश्वास करता हूँ। ईश्वर की कृपा और प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये इतना ही काफी नही कि हम सदा निष्क्रिय बैठे-बैठे केवल पूजा, स्तुति, जप, ध्यान और कीर्तन मात्र ही करके सन्तुष्ट हो जाय। असली पूजा तब प्रारम्भ होती है, जब आदमी मजबूती से ईमानदारी के साथ कार्य करता है, कुविचारों और कुकर्मों से बेचने के लिए सत्कार्यों, या मेहनत-मजदूरी में लगा रहता है ईश्वर कार्यों मे है। परमात्मा हमसे पूरा और खरा काम माँगता है। अपने शुभ कार्यों को खुद अपने चरित्र में प्रकट करना ही ईश्वर को प्रिय है। आज जमाने की जिम्मेदारी कार्य करने मे है। हम खाली न बैठें, बल्कि जो मिले उसे ईमानदारी से पूरा करें।'

उसका उत्तर सुनकर मैं चकित रह गया। सत्कर्मों द्वारा

पूजा—उसका यह आदर्श मुझे जीवन के लिये बड़ा उत्तम प्रतीत हुआ।

गुण्डों से रक्षा करने में प्राणों की आहुति

सिलचर का एक समाचार इस प्रकार है—

गत सावन पूर्णिमा के दिन झूलन देखकर दो युवतियाँ घर वापिस आ रही थी। साय काल का हल्का अँधेरा था और उनका घर दूर था। पता नही, कब से गुण्डे उन्हें उड़ाने की कुत्सित योजनाये बना रहे थे। दुर्भाग्य से वे एक ऐसी जगह आये, जहाँ गुण्डे और वे दोनो युवतियाँ ही अकेली रह गयी। अब उनकी बड़ी हो शोचनीय हालत थी। बेचारी लज्जा शीला लड़कियाँ बड़ी विपत्ति मे फँस गयी। उन्होने बार बार रक्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना की।—'हे ईश्वर! हमारे चरित्र की रक्षा कीजिए। इन दुष्टो से रक्षा करने का कोई साधन भेजिये।' वे यही स्वर मन-ही-मन बार-बार उच्चारण कर रही थी। सङ्कट के समय ईश्वर का नाम हमारे सङ्कल्प बल को उठा देता है और अन्दर से एक गुप्त दैवी सहायता मिलने लगती है।

इतने मे उन्हे एक सज्जन युवक आता दिखाई दिया। वे चिल्लायी, 'भाई साहब, हमारी इन लम्पट आदमियों से रक्षा कीजिये। ये हमे परेशान कर रहे हैं। हाय! इस मानव जाति को क्या हो गया है।'

ये जे० बी० कालेज, सिलचर के भूतपूर्व छात्र श्री चिरंजीव सेन थे। उन्होने अकेल होते हुए भी गुण्डो को ललकारा, जोर-जोर से बुरी तरह लताड़ा, हाथापाई हुई। कुछ देर झड़प चलती रही, जिसमे उन युवतियों ने भी पत्थरो से दुष्टों की मरम्मत की। धीरे-धीरे वहाँ भीड़ एकत्रित हो गयी। इस

झगड़े मे श्री चिरजीव सेन के बहुत चोटे आयी और एक हाथ भी टूट गया। पर उन्होने दोनों युवतियो को उनके घर पहुँचा दिया।

लेकिन गुण्डे अब चिरजीव सेन से बदला लेने के लिये उनके रक्त के प्यासे बन गये।

प्रतिशोध एक दुष्ट मनोविकार है। जब यह मन में बैठता है, तब मनुष्य साक्षात् राक्षस बन जाता है। उसे अच्छा बुरा कुछ नही सूझता। वह किसी-न-किसी तरह अपने विरोधी से, चाहे वह अच्छा ही आदमी क्यो न हो, बदला लेने की सोचता है।

उस समय गुण्डों की हिसक प्रवृत्ति से बच जाने पर भी वे दुष्ट उनके पीछे पड़े रहे। एक दिन जब वे अकेले टहल रहे थे, तो एकाएक अँधेरे मे उन्होंने उन पर हमला कर दिया। वे छुरों से बुरी तरह घायल हो गये। यद्यपि बहुत देर तक लात घूँसों से उन्होने दुष्टों को न अडने दिया। गुण्डे उन्हे घायल और बेहोश बाग मे पड़ा छोड़कर लापता हो गये।

पुलिस घटना स्थल पर पहुँची। घायल सेन को तुरन्त अस्पताल पहुँचाया गया। अस्पताल मे कुशल डाक्टरों ने उनकी तुरन्त बडी सेवा और चिकित्सा की। उन्होंने नेत्र खोले। पुलिस ने उनका बयान लिया। उन्हे कुछ होश आया तो उन्होंने आक्रमण करने वाले गुण्डों का हवाला, शक्ल सूरत, वस्त्र इत्यादि के विषय मै बहुत कुछ बताया।

लेकिन हाय! डाक्टरों की कोशिशे फलवती न हो सकी। सेन इतने घायल हो गये थे कि बच न सके!

उनकी अस्पताल में ही मृत्यु हो गयी। मानवता की रक्षा में ही उन्होने प्राणों की आहुति दे दी।

बलिदानी सेन की नश्वर देह को लेकर सिलचर वासियो ने आत्म-गौरव दिखाते हुए एक वृहत् जुलूस निकाला। उनके शव पर विभिन्न शिक्षण सस्थाओ की ओर से मालाये अर्पित की गयी।

उच्छृखलता एव गुण्डागर्दी को रोकना भी एक धार्मिक कार्य ही है। इनसे डटकर लोहा लेने वाले भी वीर ही हैं। सत्कार्यों के लिये रचनात्मक दिशा मे साहस कर सकना किन्ही विरले ही धार वीर व्यक्तियो के लिए सम्भव होता है। सङ्कट में दूसरे की सहायता करना एक दैवी गुण है, जो केवल सज्जनो मे ही पाया जाता है।

बालक का साहस

रायपुर म्युनिसिपल हायर सैकण्डरी स्कूल के एक तेरह वर्षीय छात्र पवनकुमार ने अपनी जान गम्भीर खतरे में डाल कर एक पञ्चवर्षीय बालक को डूबने से बचा लिया।

बात यो हुई कि पवनकुमार पढकर छुट्टी के बाद थका-माँदा पैदल अपने घर लौट रहा था। वह धीरे-धीरे तालाब के किनारे से चला जा रहा था। वहाँ प्राय: धोबा लोग कपड़े धोते है। उनके गधे बँधे रहते है और वे अपने बच्चों को भी तालाब के एक किनारे खेलने छोड़ देते है। वह पाँच वर्ष का बालक पानी मे कागज की नाव चलाने का बड़ा शौकीन था। उसका बाप समीप ही बीड़ी-माचिस खरीदने गया और माँ बाहर किसी अन्य काम से चली गई। किसी का नियन्त्रण न देखकर बालक अपनी नाव चलाने तालाब के किनारे भाग गया। माँ-बाप न आ जाये, इस हड़बड़ी में वह जल्दी-जल्दी नाव तैरा रहा था कि पाँव फिसल गया। बालक पानी में गिर पड़ा

और हाथ-पाँव हिलाने लगा। पहले खूब चिल्लाया, पर पास ही कोई सहायता के लिये नही था। फिर क्या था वह पानी मे डूबने-उतराने लगा। ऐसे सङ्कटकाल मे पवनकुमार की दृष्टि डूबते हुए बालक पर पड़ी। वह स्थिति की भयङ्करता को समझ गया। यों मनुष्य अपनी प्रसिद्धि करने के लिये कुछ तो साहस करता ही है, किन्तु सराहनीय वह है, जिसने परोपकार और जन-कल्याण की दृष्टि से कष्ट सहने, त्याग करने और दूसरों के प्राण बचाने में कदम बढ़ाये हों। पवनकुमार कपड़े पहिने ही तत्काल पानी में कूद पड़ा और अपने-आपको खतरे में डालकर बालक को किनारे ले आया। बालक बेहोश हो गया था और उसके पेट् में कुछ जल भी भर गया था। इतने में बालक के माँ बाप तथा और बहुत से लोग एकत्रित हो गये उसे फौरन अस्पताल पहुँचाया गया और बालक के प्राण बच गये। स्कूल के छात्रों और अध्यापकों ने पवनकुमार को उसकी वीरता के लिये एक शील्ड प्रदान की। किसी देश की सत्ता, सम्पदा उसकी धन-दौलत नही, वर मनुष्यों की भावनात्मक उत्कृष्टता ही होती है।

जिस समाज में जितने त्यागी, उदार, परमार्थी, सेवाभावी, सदाचारी और विवेकशील लोग है उसे इतना ही सम्पन्न एवं समुन्नत कहना चाहिए।

छात्रों की त्यागपूर्ण परोपकार वृत्ति

ऐसा ही एक समाचार मण्डला से मिला है। श्रीमती चौबे अपने दो पुत्रों तथा एक भतीजे के साथ नर्वदा में खेराघाट पर स्नान करने गयी थी, तो स्नान करते समय अचानक उनका पैर गहरे पानी में फिसल गया और वे नदी की तेज धारा मे बहने

लगीं। उनका सोलह वर्षीय भतीजा, अपनी बुआ को बचाने के लिये नदी मे कूद पडा था, दुर्भाग्य से वह भी नदी की तेज धारा में काफी दूर तक बह गया। हितेन्द्रसिंह ठाकुर, सुभाषचन्द्र जैन और महादेव प्रसाद नामक तीन छात्र पास ही थे। उन लोगों के जीवन को सङ्कट मे फँसा देखकर वे तत्काल ही नदी में कूद पड़े। अपने व्यक्तिगत जीवन को खतरे में डालकर बडे प्रयत्नो से उनको डूबने से बचाया। सामूहिक रूप से कार्य करके उन्होने परोपकार का एक शानदार उदाहरण प्रस्तुत किया, अपनी तत्काल बुद्धि का परिचय दिया और सङ्कटकालीन परिस्थितियो मे फँसे हुए दो व्यक्तियो को बचाया। अपने देश की सच्ची सम्पदा बढ रही है या नही, इसकी कसौटी यही हो सकती है कि उसके नागरिको में स्वार्थपरता से विरक्ति और त्यागपूर्ण परकार्यो मे प्रीति किस सीमा तक बढी है !

सङ्कट के समय धैर्य का परिचय देना मनुष्य की पुरुषार्थशीलता है। सङ्कटो के पजे से जान बचाने के लिये जब तक धैर्य और साहस का सहारा नही लिया जाएगा, तब तक विपत्तियाँ सदैव हमे विचलित करने को तैयार रहेगी।

बालिका का नेत्रदान

नई दिल्ली का एक समाचार मिला है कि बारह वर्षीया कुमारी गीता अब इस ससार मे नही रही, किन्तु मृत्यु से पहले उसने जो दान दिया, उससे किसी के अन्धेरे जीवन मे प्रकाश होगा।

गीता का देहान्त कुछ मास पूर्व अखिल भारतीय चिकित्सा-विज्ञान-संस्थान के अस्पताल मे हुआ था। प्राण त्यागने से पूर्व उसने अपनी माँ के समक्ष इच्छा प्रकट की, मेरी आँखे दान कर

दी जायें।' संस्थान के एक डाक्टर ने बालिका गीता के पिता श्री ललितकुमार शर्मा को पत्र लिखकर गीता के साहस की सराहना की है। गीता की स्मृति को ताजा रखने के लिए बच्चों के वार्ड की गैलरी में गीता का चित्र लटकाया गया है। उसके नेत्रों के दान से किसी अन्धे को रोशनी मिलेगी।

रुपये पैसे का दान तो है ही, लेकिन मरने से पूर्व अपने शरीर के अङ्गों का दान दधीचि की हड्डियों के दान जैसी पुण्य-परम्परा है। प्राणी मात्र की सेवा, जब तक बने करनी चाहिए। उत्तम तो यह है कि यह नश्वर शरीर ही किसी के काम में आ जाय।

चालीस बार रक्तदान

हैदराबाद में गुडर के एक एडवोकेट श्री एस० वी० नरसिंह राव अभी तक चालीस बार अपना रक्तदान दे चुके हैं, लेकिन इतने से ही वे सन्तुष्ट नहीं हुए हैं। अतः अब उन्होंने अपनी वसीयत में अपना शव ओस्मानिया जनरल अस्पताल के सुपरिन्टेन्डेन्ट के नाम कर दिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि मेरी मृत्यु के बाद मेरी आँखें किसी जरूरत मन्द के लिए सुरक्षित रख ली जायें।

मनुष्य होकर भी जो दूसरों का उपकार करना नहीं जानते, उन आदमियों के जीवन का धिक्कार है। उससे अधिक उपकारी तो पशु ही हैं, जिनका चमड़ा तक (मरने पर) दूसरों के काम आता है।

विधवा का सर्वस्व-दान

श्रीमती चोहारियाबाई नामक एक वृद्ध विधवा ने बिलासपुर जिले में अपने गाँव सिमनी में लड़कियों का एक स्कूल

बनाने के लिये राज्य सरकार को अपनी सारी जायदाद दान में दे दी है। विधवा ने यह भेंट मध्य-प्रदेश के एक मन्त्री को उस समय दी जब वह गाँव में एक सार्वजनिक सभा में भाषण कर रहे थे। जब स्थानीय नेता उपमन्त्री महोदय का स्वागत कर रहे थे, यह विधवा मञ्च पर चढ़ गयी और पन्द्रह सौ रुपये नगद तथा सात सौ रुपये की कीमत के अपनी भूमि के कागजात उन्हें दान दे दिये। उसने जल्दी ही पाँच सौ रुपये और देने का वचन भी दिया। इस विधवा ने उपमन्त्री महोदय से अनुरोध किया कि स्कूल का निर्माण जल्दी होना चाहिये, जिससे वह उसे अपने जीवनकाल में ही फलता फूलता देख सके। उपमन्त्री महोदय ने स्कूल के लिये तीन हजार रुपये का अनुदान तत्काल ही स्वीकृत कर दिया।

इस विधवा का संयम और एक उच्च कार्य के लिये दान आज भी त्याग और बलिदान की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। उसने जीवन में व्यर्थ की विलासिता, अहङ्कार, स्वार्थ और दिखावे में अपने पैसे खर्च नहीं किये। केवल उतना ही लिया, जितना उसके शरीर के निर्वाह के लिये आवश्यक था। शेष वह समाज के उपयोगी कामों के लिये बचाती रही। जिस समाज में हम पैदा हुए हैं, वही हमारा परिवार है। हमारा देश गरीब है। देश के ज्यादातर लोग तो गरीबी में जियें और हम मौज से गुलछर्रे उड़ायें, यह अन्यायपूर्ण है। नब्बे प्रतिशत भारतीय जनता जिस स्तर का जीवन व्यतीत करती है, उसी स्तर का रहन-सहन, खर्च और उपभोग हमें भी रखना चाहिये। साधु और ब्राह्मण की—वानप्रस्थ और सन्यास की—दान और पुण्य की प्रचलित धर्म परम्परायें इसीलिये बनाई गयी

है कि हम उच्च सामाजिक कार्यों के लिए कुछ एकत्रित करें और फिर दान कर दें।

चपरासी की कर्तव्य परायणता

बुलन्दशहर के दुर्गाप्रसाद नामक स्कूल के एक चपरासी से डकैतो ने उसका सब कुछ छीन लिया। अँगुली में फँसी सोने की अँगूठी जब उनसे न निकली, तब वह उसने स्वयं निकालकर दे दी—परन्तु स्कूल की सायकिल उस समय तक न दी, जब तक डकैतों ने उसे मारपीट कर बुरी तरह घायल ही न कर दिया। यह चपरासी बुलन्दशहर के 'शर्मा हायर सेकण्डरी स्कूल' में नौकर था। वह सायकिल पर बैठ किसी स्कूल के काम से जा रहा था। उसके पास कुछ नकदी भी थी। अकेला देख डकैतों ने उसे घेर लिया। चपरासी की सब नकदी छीन ली गयी, किन्तु जब वे स्कूल की सायकिल छीनने लगे, तब उसने बड़े साहस और वीरता से उनका मुकाबला किया। उसने उन्हें ललकारते हुए कहा, 'तुम मेरी सब निजी चीजें छीन सकते हो, परन्तु स्कूल की चीज मैं जिन्दा रहते तुम्हें न दूंगा।' काफी छीना झपटी पर भी वे उस सायकिल को न ले जा सके, कारण उसने एक पहिये की हवा निकाल दी और कुछ स्पोक तोड़ डाले। कर्तव्य पालन से ही मनुष्य बड़ा बनता है।

प्रसन्नता की बात है कि नव-जागरण बेला में जन-मानस का विकास सज्जनोचित सत्कर्मों की ओर बढ़ रहा है। त्याग, सेवा, बलिदान, साहस के ऐसे समाचार आये दिन समाचार पत्रों में छपते रहते हैं। इन अच्छी प्रवृत्तियों के विकास की जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही कम है, जितनी चर्चा की जाय, उतनी ही थोड़ी है। दैवी प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि ही भविष्य में भारत को पुण्य भूमि बनायेगी।

सबसे बड़ा देवता कौन ?

राजा ने प्रश्न किया, 'संन्यासी जी, आपने अनेक देवी-देवताओं का विशद वर्णन किया है तथा उनकी शक्ति और माहात्म्य का चमत्कार बताया है, किन्तु मैं यह निर्णय नही कर पा रहा हूँ कि इन सबमें बड़ा देवता कौन है ?'

सन्यासी जी राजा की विवेक बुद्धि पर तरस खाकर सोचनें लगे कि इसे कोई स्थूल उदाहरण की आवश्यकता है। इसकी बुद्धि सूक्ष्म नही है। इसलिए यह बौद्धिक रूप से कोई निर्णय न कर पायेगा।

संन्यासी जी ने पास रखी हुई काली शालिकग्राम की चिकनी-सी बटिया (छोटा-सा गोल काला पत्थर) उठाकर उन्हे दे दी।

राजा उस काले पत्थर को हाथ में लिए थे।

'राजन् ! यही सबसे बड़े देवता हैं। इनकी पूजा कीजिये तो आपको स्वतः चमत्कार स्पष्ट हो जायेगा।'

'ओफ ! तो ये सबसे बड़े देवता है। संन्यासी जी ने कहा' आश्चर्य मिश्रित हर्ष से राजा बोल उठे, 'अबमुझे पूजा की सुविधा हो गयी है। अब मैं इन्ही की पूजा किया करूंगा। निश्चय ही ये मुझसे प्रसन्न होकर मुझे लाभ देंगे।'

राजा खुशी-खुशी शालिकग्राम की बटिया को लेकर चले गये। उन्होंने अपने राजमहल मे एक छोटा-सा मन्दिर बनवाया और नियमित रूप से 'बटिया देवता की निष्ठापूर्वक पूजा करने लगे। ऊपरी दृष्टि से पूजा का अच्छा आडम्बर था। न जाने क्यो

उन्हें कोई लाभ न हुआ ? कारण, उनके आत्म-विश्वास की कमी थी। पूजा का एक स्वागमात्र था।

संयोग से उन्होने एक दिन एक चूहे को बटिया पर चढ़कर पूजा का नैवेद्य खाते हुए देखा। यह देखकर राजा का आत्म-विश्वास टकराया। चूहा और देवता के ऊपर सवार!

'अरे! मै गलती पर था। वास्तव में इस पत्थर से तो यह चूहा ही अधिक शक्तिशाली है, जो इसके ऊपर चढ़ा हुआ है दीखता है चूहा शालिकग्राम से बड़ा देवता है। मूषकराज की पूजा से अधिक लाभ हो सकेगा'

फिर क्या था चूहे को चूहेदानी में पकड़ा गया। एक सोने का सुन्दर-सा पिंजरा बनाया गया और मूषक देवता की पूजा शुरू हो गयी।

एक दिन फिर पूजा मे व्यवधान उपस्थित हुआ।

एक बिल्ली ने झपट कर चूहे को मार डाला।

'बिल्ली बड़ी शक्तिशाली है! यही बडा देवता है। आज मैं अपनी गलती सुधारता हूँ और बिल्ली की पूजा प्रारम्भ करता हूँ!'

फिर राजा ने बिल्ली को सबसे बड़ा देवता मानकर उसकी पूजा प्रारम्भ की। अब वह बिल्ली देवी बाहर न निकलती थी। सारे दिन राजमहलों में आनन्द करती थी, बड़े ठाठ थे उसके!

एक दिन एक दुर्घटना घटी। जिससे राजा के चिन्तन की दिशा फिर बदली। एक कुत्ते की झपट से भयभीत हो बिल्ली भाग गयी। 'अरे! यह कुत्ता अधिक शक्तिशाली निकला। मुझे अधिक शक्तिशाली देवता की पूजा करनी चाहिये। बिल्ली दुर्बल देवी निकली।'

बस, राजा ने कुत्ते की शक्ति से प्रभावित होकर उसकी पूजा प्रारम्भ कर दी। कुत्ते को बढ़िया भोजन, साज शृङ्गार, आराम, सुख चैन, मस्ती सभी कुछ मिलने लगे। देवताओं की तरह उसकी बड़ी आराधना की।

एक दिन कुत्ते को बड़ी भूख लगी। पास खाने को कुछ न था। आदत से विवश हो जूठन के लालच में वह कुत्ता रानी की रसोई में चला गया। महारानी कुछ उग्र स्वभाव की नारी थी। वह अपवित्र कुत्ते स क्रुद्ध हो गयी। उन्होंने ऐसी लकडी मारी कि कुत्ता टें-टें करके बाहर भागा। राजा अपनी पत्नी की शक्ति से बडा प्रभावित हुआ। उन्हे वह नारी बड़ी ताकतवर दिखाई दी।

'अरे! सबसे बड़ा देवता तो हमारे घर में ही है। मैं अब तक गलती पर गलती ही करता आ रहा हूँ!'

अतः उस दिन से उन्होंने सबसे शक्तिशाली समझ रानी की ही पूंजा प्रारम्भ कर दी। रानी इस पूजा से इतराने लगी। उसे अपनी शक्ति पर मिथ्या दम्भ हो गया। अब वह राजा की आज्ञा पालन मे भी कुतर्क करती और छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा करती थी।

एक दिन रानी की अशिष्टता पर राजा आग बबूला हो उठे। उन्होने क्रोध के आवेश मे दो हण्टर रानी को जमा दिये।

रानी इस एकाएक परिवर्तन से भयभीत हो गयी। वह डरकर सहम उठी। राजा ने उसकी यह दशा देखी तो सोचा, 'अरे! हमने अपने आपको अभी तक नही पहचाना। हम बड़े शक्तिशाली है। वास्तव मे हम ही बड़े देवता हैं।'

उन्होने अपनी ही पूजा प्रारम्भ कर दी।

कुछ दिन बाद सयोग से राजा स्वय बीमार पड़ गये। बड़ा

तेज ज्वर चढ़ा। ज्वर के प्रकोप में बड़बड़ाने लगे। पता नहीं उस बड़-बड़ाहट मे राजा ने क्या-क्या कहा। जब ज्वर की गर्मी कुछ कम हुई तो उनके मुख से अनायास ही निकला - 'हे राम ! हे राम !!

'ओफ ! तो क्या मै सबसे बडा होकर भी राम, राम' पुकार रहा हूं। अपने आप मेरे ओठो से '·ाम, राम, राम' शब्द निकल रहे है। यह 'राम' कौन है ? जरूर यही मुझसे शक्तिशाली शक्ति है। 'राम' ही संसार में सबसे बड़ा देवता है।

फिर वे सब कुछ छोड़ सर्वशक्तिमान 'राम' की उपासना करने लगे। वे-एकाग्रचित्त हो तन्मयता से कहा करते—

> तेजोऽसि तेजोमयि धेहि, वीर्यमसि बलम्मयि धेहि।
> बलमसि बलम्मयि धेहि, ओजोऽस्योजामयि धेहि।
> मन्युरसि मन्युम्महि धेहि, सहोऽसि सहोमयि धेहि।
>
> यजुर्वेद १९।९

हे राम ! आप प्रकाशस्वरूप है, आप मुझ प्रकाश दे। आप पराक्रमवान् हैं, मुझे वीर्य द। आप बलवान् हैं मुझ बल प्रदान करे। आप ओजस्वी है, मुझे भी ओजस्वी बनाये। आप दुष्टों पर क्रोध करते है, मैं भी वैसा ही करू । आप मे सहनशीलता ह, मुझे भी सहनशील बनाइये।

'राम' की इस उपासना से अन्त मे उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ।

मनुष्य विभिन्न मत-मतान्तरो के चक्कर मे पड़ कर इधर-उधर व्यर्थ ही भ्रमता रहता है और अन्त में अपने अनुभव के आधार पर इष्टदेव का निर्णय कर पाता है।

ऐसी गुरु दक्षिणा जिसने देश का नव निर्माण किया

छत्रपति शिवाजी को पढाने वाले समर्थ गुरु रामदास को अपने शिष्यो पर बड़ा गर्व था। उनके सभी शिष्य एक से एक ऊँचे कर्त्तव्य-परायण और गुरुभक्त रहे।

छत्रपति शिवाजी भी उन्ही के शिष्य थे। वे गुरुजी के उपदेशों को अक्षरक्षः पालन करते थे, दिन रात अध्ययन मे जुटे रहते, देश की उन्नति मे भरपूर सहयोग देते। संयम, व्यायाम, विद्याध्ययन, अनुशासन आदि सत्प्रवृत्तियों के विकास मे लगे रहते। वे समझ गये थे कि आदमी को युवावस्था ज्ञान और शक्ति के उपार्जन में लगनी चाहिए।

गुरु रामदास को शिवाजी जैसे आदर्श शिष्य पर बड़ा गर्व था। उन्हें इस बात पर सन्तोष था कि वे एक उच्चकोटि का प्रबुद्ध नागरिक पैदा कर सके थे।

जब शिवाजी की शिक्षा पूर्ण हो चुकी तो एक दिन समर्थ गुरु रामदास ने उन्हे प्यार से पास बुलाया। बातचीत होने लगी—

'क्या आज्ञा है गुरुदेव ?'

'शिवाजी, तू बल की उपासना कर ! शक्तिशाली बन, पर अत्याचार न करना। 'ठीक है, गुरुदेव ! कुछ और आदेश है आपका ?'

'तू बुद्धि को पूज ! शक्ति का उपयोग बुद्धिमानी से करना। यौवन मे शक्ति को ठीक मार्गो पर रखना चाहिए।

'जो आज्ञा गुरुदेव ! कुछ और भी आज्ञा है क्या ?'

'वत्स, सङ्कल्पवान् बन ! अपने उच्च सङ्कल्पों को कार्य रूप में परिणत करना।'

'कुछ और आज्ञा है ? मैं कैसे ईश्वर भक्ति करूँ ?'

'चरित्र की दृढता को अपने जीवन में उतार, यही तेरी ईश्वर भक्ति है।'

'मेरे लिए धर्म का व्यवहारिक स्वरूप क्या हो सकता है !'

'वत्स, भारतवष में बढ रहे पाप, हिंसा, अनैतिकता और अनाचार के बढ़ते कुचक्र से लोहा लेने और भगवान की सृष्टि को सुन्दर बनाने के लिये इसके अतिरिक्त कोई उपाय नही है।' समर्थ गुरु रामदास ने उन्हें समझाया।

शिवाजी शान्त भाव से सब कुछ सुनते रहे। कहने लगे, 'गुरु दीक्षा में आपने जो जो शिक्षाएँ मुझ दी है, उन्हे कार्यरूप मे परिणत करने मे तो पूरी जिन्दगी चाहिए। उसके बाद ही तय हो सकेगा कि आपकी मुझे दी हुई शिक्षा कहाँ तक सफल अथवा असफल रही है। मै भरसक प्रयत्न करूँगा कि एक आदर्श शिष्य प्रमाणित हूँ। आपके दिये हुए आदर्शो की रक्षा करता रहूँगा।'

'वत्स, तेरी आदर्शो के प्रति दृढता की लगन देखकर मन ठन्डा हो गया।'

'किन्तु गुरुदेव, यह तो गुरु-दीक्षा हुई।'

फिर और क्या चाहिए ?'

'मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य है अपने गुरु के प्रति।'

'क्या चाहते हो शिवाजी ?' गुरु के स्वर में प्यार और सहानुभूति थी।

'गुरुदेव अव अपने शिष्य को गुरु-दक्षिणा का तो आदेश दीजिए'

'अरे शिवाजी, मुझे तुम से क्या लेना है भला।'

'नहीं, नहीं, पूज्य गुरुदेव, कुछ न कुछ गुरु दक्षिणा तो मांग ही लीजिए। जो कुछ मेरे पास है—धन, सम्पत्ति, सत्ता, सामर्थ्य उसके अनुसार मुझसे कुछ अवश्य ले लीजिये। वैसे मैं आपको दे क्या सकता हूँ, पर गुरु-ऋण से उऋण होने के लिए यथा शक्ति कुछ अर्पित करने मे ही शिष्यत्व की सार्थकता समझता हूँ। गुरु दक्षिणा का आदेश मिलना चाहिए मुझे ?

अब समर्थ गुरु रामदास सोचने लगे कि शिष्य से कौन सी चीज गुरु दक्षिणा के रूप में मांगी जाय ? कुछ ऐसी वस्तु मांगी जाय, जो समाज के हित में रहे और जिससे अधिक से अधिक लोगों का कल्याण हो। साम्यवाद और उपयोगितावाद का मिलाजुला रूप ही पृथ्वी पर स्थायी शान्ति का आधार हो सकता है। सामाजिक उपयोगिता को ध्यान मे रखकर सर्वहित-परायण वस्तु कौन सी भावी शासक शिवाजी मांगी जाय ?

'गुरु दक्षिणा का आदेश दीजिए गुरुदेव।'

समर्थ गुरु की आँख चमक उठी। उनके मन मे यकायक वात्सल्य भाव उमड उठा। जैसे पिता प्यार से अपने अबोध बच्चे को दुलारता है, उसी प्रेम पूर्ण ढङ्ग से शिवाजी के शीश पर हाथ फेरते हुए गुरु बोले—

'गुरु दक्षिणा मे जो मांगू वह देगा मुझे ?'

'गुरुदेव, यदि शक्ति मे हुआ तो जरूर दूंगा।'

'मैं वह चीज चाहता हूँ जिसमे समाज और देश को सर्वाधिक लाभ हो।'

वास्तव मे ऐसी चीज सब से लाभदायक हो सकती है। वही मैं दूंगा भी।'

'एक सच्चरित्र कर्त्तव्यनिष्ठ देश प्रेमी से अधिक उपयोगी इस समाज में क्या हो सकता है शिवाजी !'

'समाज और देश की सुरक्षा, सम्मान और शक्ति बढ़ाने वाला आदमी निश्चय ही सब वस्तुओं में प्राथमिकता पाता है गुरुदेव !'

'ऐसे आदमी मुझे चाहिए। ऐसा उत्कृष्ट आदमी मैंने बनाया है।'

'वह कौन है गुरुदेव ?'

'प्यार से गुरु नें शिवाजी पर हाथ फेरते हुए कहा, 'गुरु-दक्षिणा में मुझ एक लाख शिवाजी, तेरी तरह के कर्त्तव्यपरायण नवयुवक चाहिये, बोल देगा ?

यह अजीब मांग सुन कर शिवाजी आश्चर्य में पड़ गये।

'दूंगा गुरुदेव। एक वर्ष एक दिन मे ही यह गुरुदक्षिणा चुका दूगा।'

कह कर शिवाजी ने गुरुदेव की चरणधूल ली और महाराष्ट्र के निर्माण मे प्राणपण से जुट गये।

●●

हर व्यक्ति अपने विचारों के अनुरूप संसार को देखता है

'खोज लाये दुर्जन ?' गुरु द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर से पूछा। युधिष्ठिर चुप खड़े थे, सोच विचार में डूबे हुए। मैंने तुम्हे आज्ञा दी थी कि समाज मे जाओ, तरह-तरह के लोगों से मिलो, बात करो, उनके चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

करो और ध्यान पूर्वक मुझे एक दुर्जन खोज कर लाओ। इतने दिनों तुम्हें विद्याध्ययन कराया है, शास्त्रों का नवनीत पिलाया है। तुम शास्त्रों मे पारङ्गत हो। न्याय, धर्म, नीति और सत्य रक्षा मे हमारे शिष्यो में श्रेष्ठ हो। मनुष्य के चरित्र का अध्ययन देखे, तुम्हारा कितना गहन है। एक दुर्जन खोज कर प्रस्तुत करो, युधिष्ठिर।'

युधिष्ठिर से गुरु द्रोणाचार्य प्रश्न पूछ रहे थे, पर वे चुप। विचारो में निमग्न।

'अरे युधिष्ठिर! तुम चुप कैसे खड़े हो? तुम जैसे कुशाग्र-बुद्धि विद्यार्थी पर तो मुझे सदा से गर्व है। तुम्हें जो काम दिया था, वह तुमने किया या नही? यह जवाब दो।'

'गुरुदेव! क्षमा करे।' वे फिर चुप हो गये।

'आखिर क्या बात है? तुम अपने-आपको स्पष्ट क्यो नहीं करते? क्या कठिनाई है? तुम गुरुकुल मे शास्त्रीय विद्याध्ययन पूर्ण कर चुके हो। हमारे समस्त विद्यार्थियो में सज्जन हो। जो काम सौंपा था, वह तुमने किया या नही? कुछ कहते क्यो नही?' वे युधिष्ठिर को निहारते रहे।

'गुरुदेव! मै हार गया, थक गया।' युधिष्ठिर ने निराश स्वर मे उत्तर दिया।

ऐं! हार गये? क्या कह रहे हो, युधिष्ठिर?' द्रोणाचार्य ने आश्चर्य से पूछा। 'कैसे हार गये' तुम दूर-दूर तक घूम आये हो! असख्य लोगों से मिले हो। शहर और ग्रामो में ढूंढते फिरे हो। न जाने कहाँ-कहाँ की खाक छानी है। फिर कहते हो कि हार गये, दुर्जन न ढूंढ पाये?'

'गुरुदेव मैं दूर-दूर तक घूमने गया, लोगो से मिला-जुला।

उनके गुणो को देखा और जांचा, हर प्रकार परीक्षण किया, पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि मुझे दुर्जन न मिला।'

'अरे, दुर्जन कोई भी न मिला ?' आश्चर्य मिश्रित हर्ष के स्वर में द्रोण ने पूछा।

'हाँ, गुरुदेव ! क्षमा करे, मुझे दुर्जन कोई भी न मिला। मै अपनी असफलता स्वीकार करता हूँ। मैं बहुत घूमा-फिरा, पर दुर्जन खोजे न मिला....।'

'तुम्हे क्या दिखायी पड़ा उनमें :' द्रोण ने पूछा।

'गुरुजी ! मै दुर्जनता तलाश करता रहा, पर मुझे तो हर किसी व्यक्ति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सज्जनता ही दृष्टिगोचर हुई। सभी सज्जन लगे। कोई बुरा व्यक्ति न मिला, क्या करूं ?'

'क्या कहा ? स्पष्ट करो अपना दृष्टिकोट युधिष्ठिण ! कुछ समझ मे नही आया !'

'गुरुजी ! मैं जहाँ कही भी गया, वही मुझे सज्जन ही मिले। मैंने जिस किसी को भी परखा, उसमें सद्‌गुणो के ही दर्शन हुए। अच्छाई की शुभ किरणे फैली हुई मिली। मैंने जिस किसी को भी दुर्जन समझ कर टटोला, उसमें सज्जनता के प्राणतत्त्व मिले। कोई खराब आदमी न मिला।'

'सज्जनता के प्राणतत्व मिले ? यह क्या कह रहे हो युधिष्ठिर ?

'गुरुदेव ! अन्तरात्मा को शब्दों में उँड़ेल रहा हूँ मुझे तो हर किसी व्यक्ति में सज्जनता और ईश्वर की झांकी दिखायी देती रही। दुर्जन एक भी न मिला।'

गुरु द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को प्यार से गले लगा लिया। उन्हें अपने प्रिय शिष्य में कुछ ऐसा दैवी गुण दिखायी दे रहा

था, जिसे उनकी आत्मा अनुभव कर रही थी। उनका रोम-रोम आनन्द में डूबा हुआ था, पर कोई कुछ कह न पा रहा था। वे अपनी गुरु रूप की सर्वोच्च सिद्धि मान रहे थे।

× × ×

दूसरे दिन गुरु द्रोण ने दुर्योधन को बुलाकर उसका भी उसी प्रकार परीक्षण किया। वे बोले, 'दुर्योधन ! अब तुम्हारा शिक्षा क्रम समाप्त होता है। हमें तुम्हें शास्त्रों का जितना ज्ञान कराना था, वह सब पुस्तकीय ज्ञान तुम्हें दे चुके है अब तुम्हे एक कार्य सौंपते है। करोगे, दुर्योधन ? तुम्हारी परीक्षा लेनी है।'

'अवश्य, गुरुदेव ! आप आज्ञा दे। जरूर गुरुजी की आज्ञा का पालन करूंगा।' दुर्योधन ने उत्तर दिया।

'एक सज्जन-खोजकर लाओ, दुर्योधन।'

'सज्जन खोज कर लाऊँ ? ठीक है, गुरुदेव ! मै जाता हूँ, सज्जन खोज कर सेवा मे प्रस्तुत करूँगा।'

दुर्योधन चला गया सज्जन व्यक्ति की खोज मे।

'सज्जन व्यक्ति ! अरे, यह तो बड़ा सरल-सा कार्य है। इसे तो मैं अनायास ही कर डालूँगा।' दुर्योधन ने मन-ही-मन सोचा।

वह एक सज्जन व्यक्ति की तलाश करने लगा। अनेक मानव-समुदायों में घूमता फिरा, लोगो से मिला-जुला, बातचीत की, उनके चरित्रो का परीक्षण किया। उनके मन मे छिपे हुए गुप्त भावों और मन के भेद को जानने की युक्तिया की। सज्जन आदमी चाहिए था।

लेकिन यह क्या ? उसने जितने भी व्यक्तियों को परखा, उसे वे सब दुर्जन-ही दुर्जन प्रतीत हुए। सब में एक से एक बढ़-

कर छल छद्म, कपट, स्वार्थ, पाप ही दृष्टि गोचर हुए। ऊपर से वह जिसे शरीफ समझता, अन्दर से उसे वही खोखला मिलता। जिसे वह गुणों से प्रकाशित समझता, वही कलङ्करूपी अन्धकार से काला मिलता। कोई उसे जुए में लगा मिला, तो दूसरा रिश्वत या बेईमानी से अनाधिकार पूर्वक धन हड़पता प्रतीत हुआ। सर्वत्र विनाशकारी परिस्थितियाँ दिखायी थी। उसने पाया कि सभ्यता और शराफत का बाना पहिने अनेक लोग चुपचाप मनमानी शराब पीकर आपस में लड़ते रहते हैं। खोजते-खोजते वह थक गया, पर उसे कोई सज्जन न मिला। 'हे ईश्वर! क्या दुनिया में कोई सज्जन नहीं हैं?' वह सोचने लगा।

थका-हारा पराजित सा दुर्योधन गुरु द्रोणाचार्य के सामने खड़ा था। कुछ कह नही पा रहा था। 'कहो दुर्योधन! सज्जन खोज कर लाये?'

'क्षमा करे, गुरुदेव! सज्जन की तलाश मे मैं असफल रहा। मैंने बहुतेरा खोजा, पर मुझे तो हर जगह दुर्जन-ही-दुर्जन मिले। उनमें मुझे सैकड़ों दुर्गुण ही दिखायी दिये, सद्गुण दृष्टिगोचर ही न हुए। मैं अपने आपको इस खोज मे असफल मानता हूँ।'

दुर्योधन कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा।

फिर ठण्डी आह भर कर पूछने लगा, गुरुदेव! इसका क्या कारण है? क्या दुनिया में कोई भी सज्जन नही है?'

द्रोणाचार्य कहने लगे दुर्योधन! ऐसी बात नही है! ससार में दुर्जन और सज्जन, काँटे और फूल, पत्थर और रत्न, कालिमा और प्रकाश की तरह सभी जगह मिलते हैं। समाज मे सभी प्रकार के, सभी स्वभावों-रुचियो के गुण अवगुणों से परिपूर्ण व्यक्ति उपलब्ध है।

'पर मुझे सज्जन क्यों न मिला, गुरुदेव !' दुर्योधन ने आगे पूछा।

दुर्योधन ! बुरा मत मानना। यह सब दृष्टि का हेर फेर है। जो व्यक्ति जैसा स्वय होता है, उसे सब अपने ही समान दृष्टिगोचर होते है।'

'फिर मनुष्य-जीवन की सफलता किस बात मे निहित है, गुरुदेव ?

'दुर्योधन ! सुनो, शास्त्रो मे इसका उत्तर है—

येन देवा पवित्रेणात्मान पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पवमानी: पुनन्तु न' ॥

(सामवेद ५।२।८ (५)

मनुष्य के जीवन की सफलता इस तत्व में निहित है कि वह आत्मिक और मानसिक दोषो को त्यागकर अपने दृष्टिकोण और मन को निर्मल और पवित्र बनाये। आत्मा मल विक्षेप और आवरण रहित बने इसके लिए अनेक उपाय वेदो मे वर्णित है। अत: वे पठनीय है।'

दुर्योधन सोच रहा था, जो जैसा स्वय होता है, उसे सब अपने ही समान दृष्टिगोचर होते हैं। गुरुदेव ने बड़ी अनुभवपूर्ण बात कही है यह।'

यह संसार वैसा ही है जैसे वास्तव में हम स्वय है। हम खुद ही अपनी आन्तरिक छाया, अपने मनोभाव, रुचि, अनुभव बाहरी ससार में फकते है। यदि हमे संसार अच्छा प्रतीत होता है तो इसका कारण यह है कि हमारी स्वय की भावभूमि उन्नत है। हम अपनी भावनाओ मे स्वस्थ और सज्जन है। यदि हम स्वयं दुर्जन हैं, तो इसका कारण यह है कि हमारे गुप्त मन में गन्दगी एकत्रित हो गयी है, जिसकी दुर्गन्ध बाहर फैली हुई है।

चरित्र की ऊँचाई

श्रीमन्त ! मराठा सेना ने शत्रु को भगा दिया ?'

क्या मुगल सेनापति बहलोल युद्ध भूमि से भाग गया ?' छत्रपति शिवाजी ने हर्ष-मिश्रित उत्सुकता से पूछा।

'श्रीमन्त ! हमारी सेना ने मुगलों को मार भगाया है। बहलोल की सेना भाग गयी ! हमने उन्हें लूट लिया और छक्के छुड़ा दिये।' विजयोल्लास के स्वर में मराठा सेनापति ने छत्रपति शिवाजी को सूचना दी।

मुगलों की हार और मराठा सेना की जीत की खुशखबरी सुनकर शिवाजी आनन्दित हो उठे !

कहने लगे, सेनापति ! मुगलों को हमेशा के लिए सिखा देना था कि हम भारत के वीर हिंदू है। इस वीर प्रसूता हिन्दुस्थान का पवित्र अन्न और अमृततुल्य जल यहाँ के योद्धाओं के शरीर में प्रवाहित है। हिन्दुस्थान में असुरत्व के दमन के लिये, सत्य और न्याय की रक्षा के हेतु, स्वाभिमान और आत्म रक्षा के लिये हिन्दू वीर सदा से ही शस्त्र पकड़ते रहे हैं। युद्ध में शत्रु को पराजित कर ही बैठना हिन्दुओं के इस देश की प्राचीन परम्परा रही है। सेनापति ! वह हमारे रक्त में आज भी हिलोरें ले रही है।'

छत्रपति के चेहरे पर प्रभात की अरुण आभा सी लालिमा थी।

'महाराज ! आप इस युग के राम हैं, जो भारत में रावण-रूपी मुगलों की दुष्टता के दमन के लिये प्रकट हुए है। आपके

प्रताप से आज मुगलो की हिम्मत नही कि मराठा फौजों के सामने ठहर सके।'

छत्रपति सेनापति के जवाब से कुछ संतुष्ट दिखायी दिये। वे जीवन भर मुगलो से भारत-भूमि वापिस लेने के लिये युद्ध कर रहे थे। शठता और राक्षसत्व का मानमर्दन और फिर से हिन्दू-राज्य की स्थापना उनका लक्ष्य था।

मराठा सेनापति उस दिन बड़े भयकर युद्ध से जीतकर लौटा था। ऊपर लिखी बातें युद्ध भूमि के समीप बने हुए एक फौजी कैम्प मे हो रही थी।

सुसवाद सुनकर शिवाजी कुछ देर चुप रहे। जैसे वे हिन्दुस्थान में *हिन्दू-राज्य की स्थापना* के स्वर्णिम स्वप्न देख रहे हो!

फिर शान्त-संयत सधे स्वर में कहने लगे—

'सेनापति! हिन्दुस्थान वीरता और चरित्र की ऊँचाई में सर्वोपरि रहा है। हमारे देश मे शास्त्रों का गहन अध्ययन करने वाले कवि और विद्वान् तक अपनी पीठ पर तरकस और कंधो पर प्रत्येक क्षण धनुष डाले हुए घूमते फिरते थे, ताकि जरूरत पडने पर दुष्टों से सघर्ष भी कर सकें....लेकिन....'

एकाएक शिवाजी कुछ कहते-कहते बीच ही मे रुक गये। निर्वाक्...निस्पन्द और आश्चर्य के सागर में डूबे हुए।

क्या बात थी यह?

'सेनापति! तुम्हारे हाथ में यह किताब क्या है?....और बाहर....वह डोला किस का दीख रहा है? ओफ! यह मैं क्या दृश्य देख रहा हूँ? किताब और डोला....कुछ समझ नही पा रहा हूं? आखिर क्या रहस्य है यह?'

छत्रपति वस्तुस्थिति को समझने का प्रयत्न कर रहे थे, पर

पहेली की उलझन में फँसे थे। उनके मुखर मुँह की बोलती बन्द हो गयी, नीरव, मूक....मौन ! सबके मन मे कौतूहल और जिज्ञासा थी।

वहाँ एक विचित्र विषादपूर्ण सनाटा छाया हुआ था। अन्त मे डरते-डरते सेनापति कहने लगे—

'यह मुसलमानो की पुस्तक है ?'

'कौन-सी किताब है यह ?'

'कुरान !'

'आप कुरान क्यों लाये है भला ? और इस डोली में क्या है ?' दर्द से कराहते स्वर में छत्रपति ने पूछा।

मराठा सेनापति कुछ सकुचाया। कुछ उत्तर न दे सका। वह चुप था। शिवाजी ने डोली की ओर संकेत करते हुए फिर पूछा, 'यह क्या है ! मैं समझ नही पा रहा हूँ कि इस युद्ध भूमि के कैम्प मे भला डोली का क्या काम ? इसमें कौन है ? जल्द बताओ, यह सब क्या रहस्य है।'

मराठा सेनापति अब भी चुप था, जैसे गला घुट जा रहा हो ! एक शब्द भी डरे हुए सेनापति के मुँह से नही निकल पा रहा था।

इस डोली में किसे लाये हो कैम्प में ललकार कर छत्रपति ने फिर पूछा। सेनापति ने उत्तर दिया, श्रीमन्त ! गुस्ताखी माफ करे।'

'कहो क्या कहना चाहते हो सेनापति ? हम तुम से खुश है, क्योंकि तुमने आज मुगल सेनापति बहलोल को मार भगाया है ! स्पष्टीकरण करो।'

'श्रीमन्त ! आपके लिये एक बेहतरीन भेंट लाया हूँ।' शब्द जैसे निकलते -निकलते होठों में समा गये !

भेट ! वह भी मेरे लिये ?' चकित हो छत्रपति शिवाजी ने पूछा।

'जी हाँ, श्रीमन्त ! इस में दुनिया के सौन्दर्य का बेहतरीन तोफा है ! ईश्वर की सौन्दर्य-कला का जीता-जागता नमूना ! आप ! आप देखेंगे तो मुँह से अनायास ही निकल उठेगा, वाह ! खूब ! वाकई यह सुन्दरता मे सब से ऊंची चीज है।'

'हीरे····जवाहरात····कीमती वस्त्र····बहुमूल्य मणिक····मोती ····हीरे····पन्ने ·· स्वर्ण का ढेर····आखिर कौन-सी बेशकीमती चीज है इस डोल। मे ? बताओ सेनापति ! हम जानने को उत्सुक है ? आखिर हमारे लिये भेट मे क्या लाये हो !'

सेनापति ने देखा अब छत्रपति शिवाजी उसके पक्ष में थे। अब उसे अपने पक्ष को स्पष्ट करने का सुअवसर मिला।

'सेनापति ! क्या भेंट लाये हो सैनिक शिवाजी के लिये ? वह तो एक सिपाही है। देश और समाज की रक्षा के लिये युद्ध कर रहा है। वह अपनी धरती शत्रु के हाथ से निकाल लेने में अपना धर्म समझता है, चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ। वह देश की रक्षा में ही हिन्दू का बड़प्पन मानता आया है। जरूर तुम्हारी भेंट एक सिपाही के लिये काम की होगी जो चीज काम की होती है, वह खूबसूरत भी मानी जाती है।'

ऐसी तो भेट नही है ?' सेनापति कुछ लज्जित था।

'तो फिर क्या है ? हमें दिखाओ, सेनापति !'

अब सेनापति अधिक देर चुप न रह सका। कहने लगा—

'श्रीमन्त ! इस डोली में बहलोल की बेगम है, जो सुन्दरता में अपना सानी नहीं रखती। उसका अनुपम सौन्दर्य मराठा रनवास मे चार चाँद लगा देगा। वीर पुरुषों की सहधर्मिणी संसार की सर्वोच्च सुन्दरी ही होनी चाहिये।'

छत्रपति कुछ सोच रहे थे। उनके नेत्र विचार-मुद्रा में न थे।

'श्रीमन्त ! आप सुन्दरता की कद्र करते है। उसका सही मूल्य जानते है····और फिर सुन्दर चीज़ ऊँचे महलो में रहने योग्य ही होती है। मुझे आशा है, आप इस सुन्दरी को ग्रहण करेंगे····मेरी भेंट स्वीकार करेंगे।'

छत्रपति के मुँह से निकला, 'बहलोल की बेगम।'

मराठा सेनापति ने डोली का पर्दा हटाते हुए कहा, 'देखिये, श्रीमन्त ! यह वह अद्वितीय सुन्दरी है, जो खूबसूरती में अपनी सानी नहीं रखती····यह आपको भेंट के लिए जीतकर शत्रु को परास्त कर लायी गयी है····।'

'श्रीमन्त ! ग्रहण कीजिये यह भेंट !' विनयपूर्वक मराठा सेनापति ने आग्रह किया। 'और यह कुरान लीजिये।'

'यह सब क्यों ? क्या अभिप्राय है तुम्हारा !'

'श्रीमन्त ! जिस तरह मुसलमान लोग हमारी पुनीत भारतीय संस्कृति का उपहास उड़ाता करते है, आप भी उनकी धर्म-पुस्तक का मजाक उड़ाकर उससे हिन्दुओं की मानहानि का बदला लीजिये।'

मराठा सेनापति समझ रहा था कि 'छत्रपति उसकी भेट से खुश हो रहे है।' यह एक चमत्कारिक क्षण था ! क्या होगा आगे ? यही सब की उत्सुकता थी। इतने मे शिवाजी ने कुरान-शरीफ का आदर करते हुए उसे चूमा। फिर मस्तक से लगाया।

यह क्या ? ओह ! ये हिन्दू दूसरे धर्म वालों की पुस्तक को क्यो माथे पर चढा रहे हैं ? इन्हें तो चाहिये था कि कुरान को पांवो तले कुचलते और उस पर थूक देते।

फिर छत्रपति उठे और डोली के पास जाकर उस स्त्री को सम्बोधित करते हुए बोले—

'ईश्वर के हाथ की निरुपम कारीगरी ! उषा के उदय से जैसे सम्पूर्ण प्राणियों को सुख मिलता है, वैसे ही पवित्र नारी के दर्शन से पुरुष धन्य होता है....।'

मराठा सेनापति हतबुद्धि सा किंकर्तव्यविमूढ खड़ा था। एक बार फिर साहस करके बोला—'श्रीमन्त ! क्या ये खूबसूरत नहीं है ? क्या आपको यह तोफा पसन्द नहीं है !' उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

छत्रपति ने मुगल स्त्री को सम्बोधित करके कहा—

'वास्तव में तू बहुत सुन्दर है, माता ! मुझे खेद है कि मैं तेरी कोख से नहीं जन्मा। नहीं तो मैं भी इसी प्रकार सुन्दर होता।'

ये शब्द वातावरण में फैल गये। कैम्प में खड़े हुए उस मराठा सेनाध्यक्ष ने सुने। अन्य जागीरदारों और सैनिकों ने सुने........कुछ देर तक तो वे इन शब्दों का छिपा हुआ अभिप्राय-तक न समझ पाये।

'सेनापति !' छत्रपति ने डॉक्टर हुक्म दिया, 'इन्हें और कुरान-शरीफ को आदर के साथ तुरन्त मुगल सेनापति को लौटा दिया जाय।'

बेचारे सेनापति की वह हालत कि काटो तो खून नहीं ! छत्रपति के चरित्र के इस पहलू को वह नहीं जानता था। वह प्रशंसा की आशा में वहाँ आया था, पर उसे मिला तिरस्कार.... घृणा ...। उसकी बोली बन्द हो गयी। कहे तो आखिर क्या कहे ?

'बड़े अफसोस की बात है।' शिवाजी ने बिजली-जैसी कड़कती आवाज मे कहा।

'श्रीमन्त ! गुस्ताखी माफ कीजिये। मै समझता था कि वीर पुरुष सौन्दर्य की कद्र करते है। आप सुन्दर स्त्री को पसन्द करेंगे........।'

'चुप रहो ! सेनापति ! मुझें यह कहते हुए अफसोस है कि विचार और दृष्टिकोण नही समझा है।'

सेनापति छत्रपति के चरणों पर गिर पड़ा। वह अनिन्द्य-सुन्दरी चकित-विस्मित इस नाटक को देख रही थी। वह भीता-चकिता हरिणी के समान बड़े बड़े नेत्रो से यह दृश्य देख रही थी।

बड़े प्रेम से सेनापति को हृदय से लगाते हुए छत्रपति बोले—

'सेनापति ! दूसरे धर्म के पवित्र ग्रन्थों का उपहास करने और स्त्रियों के सतीत्व लूटने वाले को वीर नही, उसे हिन्दू लोग 'कायर' कहते हैं'...। सच्ची वीरता वही है, जहाँ निज-धर्म रक्षा के लिये आत्मोत्सर्ग के साथ-साथ पर धर्म-समादर की भावना भी हो। प्रत्येक पर स्त्री मे माता की अनुभूति हो।'

सेनापति अपने दुर्व्यवहार पर लज्जित थे। यहाँ तो पाशा ही पलट गया था।

उधर छत्रपति कहते जाते थे, 'सेनापति ! भारतीय परम्परा में नारी का स्थान अत्यन्त सम्मानीय रहा है।'

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।'

—इस देश का पुराना आदर्श कौन भूल सकता है ? नारी मे देवियो के गुणों की प्रचुरता है—

यस्यां भूतं समभवद्यस्यां विश्वमिद जगत् ।
तामद्य गाथा गास्यामि या स्त्रीणामुत्तम यशः ॥

सेनापति ! हम भारतीय दिव्य शक्तिशाली नारी की यशो-गाथा गाते हैं, जो गत-आगत की जननी है और अपने देवताओ जैसे गुणों के का ण सर्वत्र यश को पाती है ।'

'श्रीमन्त ! आज मेरा भ्रम दूर हो गया ।'

छत्रपति फिर बोल उठे—

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणा शत पिता ।
सहस्त्र तु पितृन् माता गौरवेणामिरिच्यते ॥

(मनुस्मृति २।१४५)

'याद रखो, सेनापति ! एक आचार्य गौरव में दस उपाध्यायों से बढ़कर है । एक पिता सौ आचार्यों से उत्तम है और एक माता एक सहस्र पिताओ से भी श्रेष्ठ है ।'

मुगल सेनापति की बेगम और कुरान शरीफ की प्रति आदर पूर्वक लौटा दी गयी ।

अपनी बेगम के साथ किये गये सद्व्यहार और अपनी धर्म-पुस्तक के आदर से बहलोल बड़ा प्रभावित हुआ । 'हम शत्रुओं से भी ऐसा अद्भुत आदर्श बर्ताव ! ये हिन्दू लोग वाकई दुनिया की बेहतरीन कौम है । मैं छत्रपति के दर्शन कर अपने को धन्य करूँगा ।'

दिल्ली लौटने से पूर्व बहलोल ने शिवाजी के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की ।

शत्रु से मिलना शिवाजी के लिये खतरे से खाली न था । पर मानवता के नाते उन्होंने मुगल सेनापति का आदर किया । दोनों की निःशस्त्र आने को बात तय हो गयी ।

छत्रपति शिवाजी अपने सीधे-सादे लिबास में आगे बढ़े, लम्बा सफेद अँगरखा, चूड़ीदार पायजामा और साफा।

बहलोल खाँ हाथ मिलाते हुए उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो गये। उनके मुँह से एकाएक निकला, फरिश्ता !'

'नहीं, देवी भगवती का एक हिन्दू सैनिक। शिवाजी शक्ति का पुजारी मात्र है।'

'आपके बहुत ऊँचे शरीफाना बर्ताव की बात सुनकर मैं चकित हो गया और मेरे मन मे आपके पवित्र दर्शनों की अभिलाषा उत्पन्न हो गयी, वह आज पूरी हो रही है। छत्रपति को देखकर मैं आज से नयी जिन्दगी शुरू कर रहा हूँ।'

शिवाजी ने बड़े प्रेम से उसे गले लगा लिया। अनोखा दृश्य था। सब चकित—स्तम्भित थे !

जब कामासक्त युवती से राजा ने मातृत्व के सम्बन्ध जोड़े !

'मैं बहुत दुखिया हूँ। महाराज से कुछ निवेदन करना है। मुझे अन्दर जाने दीजिये।'

'हर किसी को अन्दर जाने की आज्ञा नहीं है।'

'लेकिन मुझे तो एक बड़े जरूरी काम से महाराजसे मिलना है। किसी तरह मुझे तो उनसे मिला ही दीजिये।'

'काम बताइये अपना ! किस सिलसिले में मिलना है ?

'आप नाहक मुझे रोक रहे हैं। बड़ी दूर से आयी हूँ।'

उप सुन्दर युवती को देखकर महाराज छत्रसाल के भले द्वारपाल चकित रह गये। बार बार पूछने लगे—'बहिन! कहो तो, क्या बातें कहनी है। छोटी-छोटी बातों के लिये महाराज को परेशान नही किया जा सकता। जब कोई बहुत बड़ा कार्य होता है, तभी उनसे मुलाकात करायी जा सकती है। हर कोई उनकी शान्ति नही भग कर सकता। आपको क्या फरियाद करनी है?

युवती ने उत्तर दिया—मै अपने हृदय की बात केवल महाराज से ही निवेदन करना चाहती हूँ। सुना है, छत्रसाल सबके दुःख दूर करने वाले है। उनके पास जो भी जाता है, मनचाही इच्छा पूर्ण करा लेता है। वे कर्ण की तरह दानशील भी है। मै बहुत दुखिया हूँ.......मुझे मिला दीजिये महाराज से!'

सभी कौतूहल में थे।

सोच रहे थे कि क्या माँगेगी यह युवती? शायद यह गरीबी मे फँसी है! हो सकता है इस पर कोई भयानक जुर्म लगा हो! सम्भव है कोई दुष्ट इसे परेशान करने मे पीछे पड़ा हो! आज के कामलोलुप समाज में आवारागर्द लोगो की कमी नही है। शायद खेती बाड़ी के लिये जमीन या अपने माँ-बाप की चिकित्सा के लिये धन का सवाल करेगी।

जितने मुँह उतनी ही बातें।

'अच्छा, तुम्हारी नाजुक अवस्था देखकर हम विशेष परिस्थिति मे महाराज को सूचना दिये देते है।' द्वारपाल ने कहा।

'आपकी बड़ी कृपा है। मै बहुत दुखिया हूँ। वे ही मेरा कष्ट दूर कर सकेंगे।' द्वारपाल छत्रसाल से पुकार करने वाली युवती की सूचना देने अन्दर गया।

'एक तरुणी द्वार पर खड़ी है महाराज ! क्या उसे अन्दर आने दिया जाय ?'

'तरुणी, युवती का यहाँ क्या काम ? क्या सवाल है उसका ?'

'विशेष परिस्थिति में उसकी सूचना देने आये हैं। श्रीमान् ?'

'युवती का आगमन जरूर कोई गुप्त रहस्य रखता है। पता नही उसकी क्या समस्या हो ? हर एक की समस्या अलग-अलग है। परिस्थिति, उम्र, स्वाभाव चरित्र, स्वास्थ्य तथा गुप्त भावों से सम्बन्धित आदमी की सैकडों उलझने हैं। पता नहीं वह किसी उलझन मे फँसी है ?' कैसी है वह स्त्री ?' महराज ने पूछा। 'महाराज, यही होगी पच्चीस-छब्बीस वर्ष की उम्र,देखने में सुन्दर है। बहुत समझाया किन्तु वह मानती ही नही। निरन्तर यहाँ आने की जिद कर रही है।'

युवती से एकान्त में मिलना शास्त्रनिषिद्ध है। यह वासना पण्डित, ज्ञानी, वैरागी महात्माओ तक को परेशान कर सकती है·······युवती को देखकर प्रायः वासना का उद्दीप्त हो उठना सहज स्वाभाविक है।·······मनुष्य की भोगेच्छा ही दु.ख एव अशन्ति का कारण हो सकती है। आज के वहुत से आदमी इस भ्रान्त विश्वास के दास वने हुए है कि सुख का निवास वासना की पूर्ति में है। अपने इसी विकृत विश्वास के कारण आज के युवक-युवती भोगों में लिप्त रहकर सुख-शान्ति की सम्भावना नष्ट किया करते है·······।'

यह सोचते-सोचते महाराज छत्रसाल-कुछ मौन हो गये। द्वार पाल ने फिर पूछा—

'महाराज ! उस युवती को आने दिया जाय, या नही ?'

'अच्छा, उस युवती को ले आओ। देखें, वह क्या चाहती है हमसे ? हमारे यहाँ भिक्षुक, जरूरत मन्द लोग, आर्थिक सहायता के लिये जब-जब भी आये है, हमने उनकी आवश्यकताएँ पूर्ण की है। परमात्मा वह आत्मबल दे कि यह शरीर परोपकार में लगता रहे।'

द्वारपाल चला गया।

महाराज के मन में विचारों का ताण्डव मचा हुआ था। तरह-तरह के ख्याल नदी की तरङ्गो की भाँति उठ रहे थे। वे सोच रहे थे—"मैं इतने धन, सम्पत्ति, समृद्धि का मालिक हूँ, फिर भी मन से शान्त संतुलित नही हूँ। मेरा तो यह अनुभव बन रहा है कि सांसारिक पदार्थों के संग्रह मे सुख की कल्पना करना मरु मरीचिका है। यदि वस्तुओ एव भोग-पदार्थों में सुख शान्ति रही होती, तो ससार मे एक से एक बढकर धन कुबेर तथा साधन सम्पन्न व्यक्ति मौजूद है, वे पूरी तरह सुखी होते।....दुःख अथवा अशान्ति उनके पास से भी नही गुजरते........लेकिन मैंने ऐसा कही नही पाया है। मेरे-जैसे धनकुबेर, साधन सम्पन्न तथा वस्तुओ के भण्डारी एक साधारण गरीब आदमी से भी अधिक व्यग्र, चिन्तित, दुखी और अशान्त देखे जाते हैं। पता नही, यह गरीब औरत क्यो दुखी है ? मुझसे किस चीज की माँग करने आयी है ? मुझे उस दुखिया का कष्ट दूर करना चाहिये।'

इतने में द्वारपाल उस युवती को महाराज के सामने ले आये। युवती ने आदर सहित प्रणाम किया और एकटक महाराज की ओर निहारती मन्त्र-मुग्ध-सी खड़ी हो गयी।

'आपको क्या कष्ट है, देवि !' महाराज छत्रसाल ने सरल हृदय से पूछा।

युवती लगातार महाराज के पौरुष को देखने में डूबी हुई थी, जैसे चकोर चन्द्रमा के सौन्दर्य में अपने को भूल जाता है।

महाराज छत्रसाल थे भी ऐसे ही सुन्दर! उनके शरीर की खूबसूरती तो थी ही, चारित्रिक सौन्दर्य उससे भी कहीं ऊँचा था। युवती उनके सौन्दर्य मे इतनी डूब गयी कि उ। स्मरण ही न रहा कि वह कुछ मांगने आया थी।

महाराज छत्रसाल ने पुनः दोहराया—'आप मेरे यहाँ कुछ कामना लेकर आयी है। ईश्वर ने मुझ इस स्थिति में रक्खा है कि मैं दीन-दुखियों के कष्ट और सङ्कट दूर कर सकूं। मै जनता का सेवक हूँ। सेवा करना मेरा धर्म है। जो जैसी सहायता चाहता है, मैं यथाशक्ति वह सहायता सदा से देता आया हूँ। आपको किसने सताया है? जिस दुष्ट ने आपको कम आयु की समझ दुखी किया होगा, मैं अवश्य ही उसे दण्ड दूंगा। आपको क्या कष्ट है?

युवती चुप थी। न जाने मन की गुत्थी क्यों नही खोल रही थी। कुछ बात जिह्वा पर आ-आकर रुक जाती थी। हृदय पर भार बना था।

'कहिये, आपको मेरी सहायता किस रूप में चाहिये?' महाराज ने फिर पूछा। अब युवती कुछ होश में आयी। क्या पूछे वह? उसने फिर राजा को जाँचा।

बोली—'आप मेरे कष्ट को दूर करने का वचन दे, तो निवेदन करूं।

छत्रसाल विस्मित थे कि आखिर यह क्यो अपनी कठिनाई स्पष्ट नही कह पा रही है। कुछ कहती नही, चुप खड़ी, बस अपलक मेरी ओर निहार रही है।

वे बोले—'मैंने अभी तक सभी के दुःखों को यथासम्भव दूर किया है। मेरा दृष्टिकोण यही रहता है कि गरीबो के कष्ट दूर हों। यदि मुझ से सम्भव होगा तो आपके कष्टों को भी अवश्य दूर कर दूंगा आप कहिये तो।'

'एक शर्त पर कहूँ ? आप इन द्वारपालो को बाहर भेज दीजिये। अकेले मे वह बात कहूँगी। कुछ गुप्त बाते सबके सामने कहने की नही होती।'

'अकेले मे...... ओह ! ऐसी क्या गोपनीय बात है ?'

'बस, इन्हे बाहर भेज दीजिए यह प्रार्थना मान लीजिये।'

'अच्छा, मे द्वारपालो को बाहर भेज देता हूँ।'

एक सकेत पर द्वारपाल बाहर चले गये। अब वहाँ महाराज छत्रसाल और उस युवती के अतिरिक्त तीसरा कोई न था।

'अब ठीक है', युवती बोली। 'क्या बताऊँ, बात ही ऐसी थी जो किसी के सामने कहने की न थी। मजबूरी थी।'

'खैर, अब कहिए ? आपको क्या कष्ट है ?

वह फिर कुछ लज्जित-सी हुई। कपोलो पर हलकी-सी सुर्खी आ गयी।

'मेरे कोई सतान नही है।' युवती ने रुकते-रुकते कहा।

'सतान नही है ! अभी तो आप युवती है। जिन्दगी का एक लम्बा समय आगे पड़ा हुआ है।....धैर्य रखिये।'

'मेरे पति इसमें असमर्थ है !'

'यह क्या पता ? भविष्य बलशाली है। ईश्वर की कृपा से सबकी इच्छाएं पूर्ण होती हैं। प्रजनन प्रकृति को अपनी सृष्टि-सचालन व्यवस्था को चलाते रहने के रूप मे आवश्यक है। इसलिए उसने प्राणियो को ऐसे वासनाजाल मे जकड़ दिया है कि

आमतौर से उन्हें इस गोरखधन्धे को सुलझाने में अपना जीवन-क्रम पूरा करना पड़ता है। पुरुषों में प्रबल वासना और स्त्रियों मे तीव्र मातृत्व की भावना नही होती, तो शायद इस सृष्टि का क्रम पहले ही रुक गया होता। विषय-भोग की क्षुद्र इच्छाएँ ही संतान के प्रति ममता, नाना प्रकार की तृष्णाओं तथा माया-मोह के जाल में मनुष्य को फँसाये रखती है और इस सृष्टि के काम विधिवत् चलते रहे हैं। विषय-भोग की मिथ्या कल्पनाओं मे ही मनुष्य-जीवन का सारा ताना-बाना चलता रहता है। आप धैर्य रक्खे शायद प्रकृति स्वय ही आपकी संतान की लालसा को पूर्ण कर देगी। आपकी गोद खाली न रहेगी। ईश्वर सबकी सुनता है।

'ओह! आप मेरा मतलब नहीं समझे।' उत्तेजित युवती ने कहा। 'आखिर, क्या कहना चाहता हैं आप? स्पष्ट बात कहिये। आपका मतलब क्या है?'

'मेरा मतलब....मै यह कहना चाहती हूँ कि मुझे आपके समान पुत्र चाहिये।'

'मेरे समान पुत्र!' आश्चर्य से महाराज बोले। 'मैं अब भी नहीं समझा। क्या तात्पर्य है आपका?'

'जैसा पिता होता है, वैसा ही उसका पुत्र जन्मता है मनुष्य की अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति पुत्र या पुत्रो के माध्यम से हुआ करती है। पुत्र को गुणी, विद्वान्, सदाचारी, पौरुषवान् पाकर सभी अपना गौरव समझते है। पुत्री की अपेक्षा पुत्र से यह सौभाग्य प्राप्त करने की अधिक आशा की जाती है। मुझे आप-जैसा पुत्र चाहिये।'

महाराज छत्रसाल यह सुनकर गहरे विचार मेनि मग्न हो

गये। उन्हें मालूम हुआ कि यह स्त्री वासना के चंगुल में फँसी हुई है। प्रणय-निवेदन का अभिनय कर रही है।

वे बोले—'पुत्र में क्या धरा है। पुत्र आगे चलकर पिता का नाम रोशन करता है, यह सोचना बिल्कुल फिजूल है। संसार में कितने लोग मरकर चले गये, इनमें से कितने सौभाग्यवान् ऐसे है, जिन्हे उनके बेटो के द्वारा यश मिला है ? यश तो आदमी के खुद के त्याग, तप और श्रेष्ठ कर्मों से मिलता है। इनके लिये निःसतान होना कोई बाधा नही है, देवि !'

इन शब्दों से भी युवती महाराज की उदात्त भावना का संकेत न समझ सकी। वह उन्हें साधारण स्तर का विषयासक्त राजा मात्र समझती रही, जो अनेक रानियाँ रखते है और हर-दम ढलती आयु तक मे नयी युवतियो से विवाह के इच्छुक रहते हैं। फिर अपना प्रणय-निवेदन करती हुई बोली—

'महाराज ! मुझे पुत्र नही, आपके जैसा सुन्दर, सर्वगुण-सम्पन्न, पौरुष और यौवन से भरा पूरा बेटा चाहिए। जैसा पिता होता है, उससे वैसे ही पुत्र का जन्म होता है। आप मेरा संकेत नही समझ रहे है। एक नारी के हृदय की वेदना····छिः छिः आपके हृदय की जगह पत्थर लगे हैं। आप मेरे कष्ट को दूर कीजिये। मैं बहुत दुखिया हूँ। मुझे आपके समान पुत्र चाहिये। मुझे आप ही स्वीकार कर लीजिये। अपनी छत्रछाया मे शरण दीजिये। राजा असहायो को सहायता और शरण देने वाला कहा गया है।'

महराज छत्रसाल उस कामासक्त युवती को क्या उत्तर दे ! वे सोच-विचार मे डूब गये। मानसिक उलझन में फँसे थे। उनके चरित्र की परीक्षा हो रही थी।

क्या उत्तर दें जिससे यह वासनालोलुप रमणी ठीक रास्ते पर आ जाय ? भारत की पुरानी प्रशस्त परम्परा की मूर्तियाँ उनके सम्मुख एक-एक कर घूमने लगीं। ब्रह्मचर्य, संयम, इन्द्रिय-निग्रह—हमारे यहाँ यों ही नहीं पूजे गये हैं। इनके पीछे उन्नति और मानव प्रगति के मूलमन्त्र छिपे हुए है। पर ये बाते कैसे समझायी जायँ इस विषयान्ध युवती को ! उनके मन में विचारों का सागर लहरा रहा था।

उधर युवती समझी कि उसकी वासना पूर्ति होने वाली है। हलकी-सी मुस्कान उसके चेहरे पर थिरकने लगी। वह उत्साह से देखने लगी महाराज का दीप्त मुख-मण्डल !

'आपको मेरे समान ही तो पुत्र चाहिए न ?' महाराज ने फिर पूछा। 'जी हाँ, ऐसा ही सुन्दर, ऐसा ही तेजस्वी, ऐसा ही मोहक—मादक, समस्त गुणों से परिपूर्ण।'

'माता ! आज से इस छत्रसाल को ही आप अपना पुत्र समझिये !' महाराज ने कहा।

युवती घबड़ा गयी, बोली—'है, मेरे लिये 'माता' शब्द का प्रयोग—उफ् ! यह क्या कह डाला आपने। मैं और आपकी माता नहीं नही, माता नहीं, माता नही।'

'मैंने अपको अपनी 'माता' मान लिया·······सदा सर्वदा के लिये बस अब आप मेरे जैसे सुन्दर पुत्र को पा गयी है। मुझे आप से कोई नहीं छीन सकता। आप मेरी माता। मैं आपका पुत्र ! पवित्रतम सम्बन्ध। माता ! लो, इस पुत्र को स्वीकार करो। अब आप मेरी पूज्या हो गयीं, लक्ष्मी, दुर्गा, को सरस्वती जैसी, उन्ही की तरह पूजनीया।'

युवती चुप थी। अपनी कामान्धता पर उसे लज्जा आ रही थी। कितने पवित्र है महाराजा!

उस दिन से महाराज ने उस युवती को निज जननी के रूप में ही स्वीकार किया और उसके साथ सदा वैसा ही व्यवहार करते रहे। धन्य!

●●

दुर्गुणों को स्वीकार करना पाप निवृत्ति का उत्तम प्रायश्चित है

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत॥

(सामवेद ६)

अर्थात् (पापी, अधम, गिरे हुए लोगों में भी परमात्मा के तत्त्व है। देर-सबेर यह परमात्मा प्रकट होकर उन्हे सत्य पथ पर चलाता है।) परमात्मा ज्ञानियों के हृदय मे प्रकाश रूप और मस्तिष्क मे विचाररूप मे प्रकट होता है।

अजीब आत्म-समर्पण

थानेदार साहब को उस दिन सुबह-ही-सुबह किसी ने आवाजे दी—'साहब! नीचे आइये। मुझे आपसे कुछ अर्ज करना है। थानेदार साहब! थानेदार साहब!!'

दुमञ्जिला मकान था। थानेदार साहब रात किसी खून के

मामले की तफशीश से देर में लौटे थे। अभी सो रहे थे। नीचे से बार-बार आवाज आने से उनकी पत्नी ने उन्हें जगाया, 'देखिये तो, एक तगड़ा-सा आदमी बड़े तडके से ही आप से मिलने के लिये बाहर बैठा है। शायद कोई बात है, जिसे उसे आपसे कहनी है। मैंने उसे बाहर बैठे बहुत देर से देखा है।'

आँखे मलते-मलते वे कह उठे—'कानेस्टबिल भेज कर पुछवाया होता कि क्या चाहता है वह? मुझे तो नींद आ रही है। इतनी जल्दी न उठाओ।'

'जी, दो बार वह उससे पूछ आया है। तब तक आप सोये रहे। अब एक घण्टा हो गया उसे बाहर बैठे-बैठे। बेचारा अधीर होकर फिर आवाजे देने लगा है। तनिक देखिये न, कोई मुसीबतजदा मालूम होता है। चेहरा मायूस, आवाज में दर्द और पीड़ा, मुँह पर हवाइयाँ उड़ती हुई! उठिये तो! देखिये, कौन है?'

पत्नी की सहानुभूतिपूर्ण आवाज से थानेदार साहब कुछ नरम पड़े। खिड़की से झाँक कर पूछा, कौन हो? अच्छा, नीचे आ रहा हूँ। थोड़ा और बैठो!'

वह दुखी आदमी प्रतीक्षा में नेत्र बिछाये फिर थाने के बाहर चबूतरे पर उसी प्रकार बैठ गया। बड़े तड़के ही वह थाने मे पहुँच गया था। पहरे पर खड़े कानेस्टबिल ने उसे अन्दर न घुसने दिया था।

'मुझे थानेदार साहब से ही एक खास काम है। कोई खुफिया-सी बात है। आप से कोई पुलिस-रिपोर्ट नहीं लिखानी है।' वह यही कहता।

मुन्शीजी ने उससे कई बार पूछा, पर वह कुछ न बोला।

गुमसुम ही बना रहा। उसने मन की गुत्थी किसी दूसरे से न खोली।

'मुझे तो सीधे थानेदार साहब से ही कुछ खास काम है।' वह यही उत्तर देता। पर कुछ कहने को अधीर था।

'अच्छा तुम बाहर बैठ कर उनकी प्रतीक्षा करो। वे घण्टे भर बाद ही मिल सकेंगे।'

कानेस्टबिल यही कह कर उसे ठहराये रहे। वह थानेदार साहब की प्रतीक्षा मे बाहर बैठा-बैठा थक गया।

सचमुच एक घण्टे का भी डेढ घण्टा हो गया, पर थानेदार साहब की नीद न खुली और खुली भी तो, उन्होंने जल्दी नीचे आने का कष्ट न किया। पुलिस के अफसरों की नीद आसानी से नही खुलती है।

पुकारने पर उत्तर पा, आगन्तुक को कुछ सन्तोष हुआ। वह चबूतरे पर बैठ कर फिर उत्सुकतापूर्वक उनकी प्रतीक्षा करने लगा।

× × ×

थोड़ी देर बाद बैठक का दरवाजा खुला। कानेस्टबिल आगन्तुक को अन्दर लिवा ले गया। क्रूर थानेदार तने हुए बैठे थे, जैसे निरीह बकरे को जिबह करने को तैयार कसाई!

'क्या काम है? तुमने मुंशीजी को ही रिपोर्ट क्यो नही लिखा दी थी? फिजूल मुझे परेशान किया।' कड़ककर थानेदार साहब बोले, मानो बन्दूक से गोली छूटी!

'माफ करे, सरकार! मुझसे गलती हो गयी! कुछ ऐसी गुप्त बातें है, जो सिर्फ हजूर से ही अर्ज करनी थी।' विनय के स्वर मे आगन्तुक बोला।

'आश्चर्य है, मुझसे कौन-सी पेचीदा बातें कहनी हैं ! यहां तो चोर, डकैत, कातिल, बदमाश, आवारा गर्द लोग ही आते है और वे हर बात छिपाने की कोशिश करते हैं। अजीब आदमी हो, जो खुद अपनी गुप्त बाते आज एक पुलिस के अधिकारी से कहने आये हो !'

सहानुभूति के ठण्डे स्पर्श से व्यक्ति कुछ आश्वस्त हुआ। उसमें धैर्य और साहस का सञ्चार हुआ।

फिर वह कहने लगा—'वही तो हुजूर से अर्ज करना चाहता हूं। मन में जो दर्द-गुब्बार इकट्ठा हो गया है उसे कह कर मन का भार हलका करना चाहता हूँ ! आपको ही तो सारी बातें खासतौर पर सुनाना चाहता हूं। कुछ ऐसी गुप्त बाते है, जो सिर्फ आप से ही निवेदन करनी है। सबसे बड़े अफसर तक पहुँचानी हैं।'

तो, मुझी से कहनी हैं ?' आगन्तुक की बातों में रुचि लेते हुए थानेदार साहब ने सूत्र पकड़ा—'अच्छा, कहो ! क्या कहना है तुम्हें ! क्या स्पष्ट करने को तुम थाने के दरवाजे पर दो घण्टे से बठे हुए हो ? अरे भले मानुष ! यहां से तो लोग दूर-दूर भागते है एक तुम हो, जो कहने को दो घण्टे से बैठें हो। क्या किसी की शिकायत करनी है ?'

'एक टाइम था, जब मैं भी थाने से ऐसे ही दूर भागता था। जैसे अपराधी फरार या डकैत भागा करते हैं।'

तो क्या तुमने भी कभी अपराध किया था ?'

'जी हुजूर, मुझसे भी वह भयानक गलती हो गयी थी।'

'तो जेलखाने की मार भी पड़ी होगी ? पुलिस के हंटरों के कड़े निशान कमर पर उभर आये होंगे ! एक बार जेलखाने जाकर कौन भूल सकता है !'

'जी नही, जेलखाने तो नहीं गया !'

'कसूर किया, पर जेलखाने नहीं गये। कानून की पैनी निगाह से बचे रहे। खूब, तुम बड़े चालाक निकले आंखो में धूल झोक दी तुमने। शैतान कही के !' थानेदार के स्वर में कठोरता आ गयी।

'पुलिस को तो चकमा दिया, पर खुद को धोखा न दे सका, सरकार! मेरे मन मे ईश्वर की दिव्य ज्योति चमकने लगी। मुझे यह विवेक हुआ कि मुझे देवत्व की ओर बढना चाहिए, असुरता की ओर नही ! अपने अपराध पर बड़ा पछतावा हो रहा है। उसी की माफी माँगने आया हूँ हुजूर !' कहते कहते उसके नेत्रो से आँसू झरने लगे ! चेहरा फीका पड गया।

अभियुक्त को पछतावा ! यह खूब कही ! हमने तो सारी जिन्दगी पुलिस मे गुजारा है, पर किसी खूनी चोर, डकैत, अपराधी को पछताते नही सुना। आज पहली बार यह तुम्हारी जुबानी सुन रहे है। साफ बताओ, क्या बात है ? तुम आखिर क्या कहना चाहते हो ?' थानेदार साहब गुर्राये।

"जी ! मै अपनी अपराध-वृत्ति पर बड़ा लज्जित हूँ। मैंने महसूस किया है कि जो गलती करके नही सुधरता, वह बड़ा अभागा और मूर्ख है। जो आदमी इस सुरदुर्लभ मानव जीवन को पाकर उसे सुचारु रूप से सञ्चालित नही करता अथवा ऊँचा उठने की कोशिश नही करता, तो उसका यह बड़ा दुर्भाग्य ही कहा जायगा। मानव-जीवन वह पवित्र क्षेत्र है, जिसमे परमात्मा ने सारी विभूतियाँ बीजरूप मे रख दी है और जिसका विकास नर को नारायण बना देता है। प्रायश्चित्त-स्वरूप आज अपना अपराध आपके सामने कबूल करने आया हूँ। जब से मैंने डाकेजनी मे भाग लिया था, तब से ही मेरी आत्मा पाप

कर्म के लिए अन्दर-ही अन्दर से कचोटती रही है। मैं अब किये हुए अपराध को दबा नही पा रहा हूँ। आत्मा की आवाज कहती है कि 'अपना पाप कह दे। सबके सामने कबूल कर ले और उसकी सजा भुगत ले, तो प्रायश्चित्त हो जायगा और मन का भार हल्का हो जायगा।' इसी गुप्त मानसिक व्यथा को हटाने के लिये अपना अपराध प्रकट करने हजूर के पास आया हूँ। मुझे माफी दी जाय।"

वह रो रहा था। प्रायश्चित्त के आँसू बह रहे थे।

'तुम कौन हो ? पूरी तफशीश दो कि क्या-क्या हुआ ? कैसे हुआ ? क्या केस है ?' थारेदार ने कहा। 'अपने को दीन-हीन और दुखी मान कर रोते रहना, दिन-रात खुद को अपराधी ही मानते रहना तो आत्मा का अपमान है। जिस आदमी को आत्मा जैसा प्रसाद मिला हो, बुद्धि और विवेक जैसा पुरस्कार मिला हो, क्षमता और विशेषताओं से भरा सुन्दर सुदृढ शरीर मिला हो, वह मनुष्य भला दीन हीन कैसे हो सकता है ? दीनता और अपराध का अनुभव करना मनुष्य की अपनी मानसिक न्यूनता के सिवा और कुछ नही है !'

अपराधी अपनी जीवन-कथा कहने लगा—

'मैं जुम्मन नामक फरार अभियुक्त हूँ' उसके नेत्रों से गरम अश्रु धारा बहने लगी। 'मेरा सम्बन्ध नौ माह पूर्व कानपुर जिले के ग्राम बारा (ककवन थाना क्षेत्र) निवासी मोहनलाल नामक ग्रामीण के घर घटित सशस्त्र डाकेजनी से है। मेरे नेतृत्व में ही वह डकैती हुई थी। इसके अलावा मैंने कई जगह और भी, छोटी-मोटी चोरियाँ करवायी हैं। पर अब मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि यह सब पाप कर्म था। मेरी अपराधवृत्ति का कुफल था। एक शरीफ नागरिक को चोरी-डकैती जैसा पाप कर्म नहीं

करना चाहिये। अब मैं समझता हूँ कि साहसी आदमी वही है, जो अज्ञान मे की गयी भूल के लिये प्रायश्चित्त करने मे सङ्कोच न करे। मुझे सजा दिलवाइये।'

थानेदार साहब डकैत का आत्म समर्पण देखकर चकित रह गये। वे सोचने लगे कि आज की समस्त विकृतियाँ मानवीय आदर्शों तथा व्यक्तिगत जरूरतो को बढ़ा लेने के दुष्परिणाम-स्वरूप ही है। झूठ, कपट, चोरी, डकैती, वैषम्य और सङ्कीर्ण स्वार्थपरता की अभिवृद्धि ने ससार मे अगणित प्रकार की उलझनें और समस्याएं पैदा की है। अपने चारों ओर जिन कुत्साओं और कुण्ठाओं का घटाटोप छाया हुआ हम देखते है, उनके पीछे मानवीय दुर्बुद्धियों और दुष्प्रवृत्तियो का ही खेल है। आधार जब तक विद्यमान है, तब तक सुधार को आशा किस प्रकार की जाय ? मन मे विष भरा हो, तो अपराधों से छुटकारा कैसे मिले ? आग को हाथ में लेकर जलने से बचाव कैसे हो ?

थानेदार साहब ने जिज्ञासावश पूछा—

'अब आगे तुम्हारा क्या करने का विचार है ?'

'जी, मैं अब शेष जीवन मे अच्छाई और शराफत की जिदगी अपनाना चाहता हूँ। शेष जीवन मे जो कुछ बन सके भलाई और उपकार करना चाहता हूँ। अब तक डकैत बने रहने मे गर्व करता रहा हूँ, आगे से सज्जन कहलाने की इच्छा रखता हूँ। मैंने हर प्रकार की टक्करे, मुशक्कतें कर, चोरी कर रुपया गवां कर सीखा है कि शराफ़त का जीवन ही स्थायी और शांति-मय जीवन है। परोपकार ही मनुष्य का सहज कर्त्तव्य है। उसी से उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है। आवारा गर्दी से आत्मा दुखी रहती है।'

यह सुनकर थानेदार साहब सन्तुष्ट हुए।

'तब तो मैं तुम्हें शरीफ बनाने में हर सम्भव कोशिश करूँगा—ऊचा उठते हुए को सहायता देना परोपकार है। गिरे हुए को सज्जन बनाना भी तो धर्म ही है। मै तुम्हें अदालत से मांफी दिलवाऊँगा।'

थानेदार साहब ने कोशिश भी की और अन्त में वे अपने शुभ मनोरथ में सफल होकर भी रहे।

एक दिन अखबारों में यह समाचार छपा—

'कानपुर जिला फरुखाबाद के जुम्मन नामक फरार अभियुक्त ने आज यहाँ श्री एम० सी० सिह जे० ओ० भोगनीपुर की अदालत में आत्म समर्पण कर दिया। अभियुक्त का सम्बन्ध नौ माह पूर्व जिले में ग्राम बारा निवासी श्री मोहनलाल नामक ग्रामीण के घर में घटित सशस्त्र डाकेजनी से था। प्रायश्चित्त का ऐसा उत्तम उदाहरण कम मिलता है।'

हर मनुष्य में, चाहे वह कितना ही गिरा हुआ क्यों न हो, सद्‌गुण छिपे रहते हैं। तनिक-सा प्रोत्साहन पाकर वे सही दिशाओं में विकसित हो सकते हैं। जरूरत यह है कि हम कर्मठ होने के साथ-साथ अपने इर्द-गिर्द के व्यक्तियों, गिरे हुओं को भी कर्त्तव्य परायण बनाये। शुभ कर्मों के प्रति उत्साह भरें। जो अपनी पवित्र और ऊँची विशेषताओं के अनुरूप विशेषताएँ अपने साथियों में विकसित नही करता, वह एक दिन या तो उनके संसर्ग से निकम्मा हो जायगा, या वह बिना साथी के अकेला रह जायगा।

क्रत्व' समह दीनता प्रतीप जगमा शुचे।

मृडा सुक्षत्र मृडया॥

(ऋग्वेद ७।८९।३)

ईश्वर को साक्षी मानकर अपनी त्रुटियाँ, ऐब, दुर्गुण तथा दुष्कर्म स्वीकार करते रहें, ताकि इनके निवारण में ढील न पड़े। परमात्मा से हमारी यही प्रार्थना हो कि 'प्रभो! हमारे दुर्गुण दूर करो।'

हत्यारे का हृदय-परिवर्तन

अहमदाबाद जेल मे आज एक हत्यारे को फाँसी देने की तैयारियाँ की जा रही है। सुबह से ही जेल के कर्मचारी और कैदी इधर-इधर-उधर भाग-दौड कर रहे है। कानेस्टबिल और अफसर अहाते मे दौड़ रहे हैं। जेल के अहाते में बड़ी चहल-पहल है।

फाँसी के इर्द-गिर्द का स्थल साफ किया जा रहा है। बहुत कम दिन ऐसे होते है, जब जेल में ऐसी सजीवता नजर आती है। फाँसी की सजा उन हत्यारो को मिलती है, जो हर दृष्टि से गिरे हुए लाइलाज अपराधी होते हैं। अदालत यह समझ कर मौत की सजा देती है कि अमुक हत्यारे समाज के लिये खतरनाक है। पता नही उत्तेजना मे और कितनों को कभी भी मौत के घाट उतार दे।

कोई भी अनुचित कार्य करने से पूर्व मनुष्य का अन्तःकरण उसे पाप कर्म से सावधान कर देता है। फिर भी यदि मनुष्य बुराई में प्रवृत्त होता है, तो उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है! अन्तःकरण की आवाज को दबाना ईश्वर के संकेत को दबाना है।

हत्यारे का नाम कान पर्वत पटेल था। वह जूनागढ के एक गाँव का निवासी था। जुआ और चोरी के अभियोग मे उसे दो कानेस्टबिलो ने गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया था। वह

खूँख्वार प्रवृत्ति का था और हिंसा करने में उसका मन खुला हुआ था। मार पीट, गाली गलोज, डाकेजनी और हर तरह की गुण्डा गर्दी करने की उसकी खोटी आदत थी। शरीर से वह तगड़ा था। निर्द्वन्द खाना-पीना, आवारागर्दी करना, हर तरह की शरारत करना उसका स्वभाव—उच्छृंखल सिंह की तरह।

इसलिए जैसे ही पुलिस वालों ने उसे हत्या करते हुए गिरफ्तार करने का उपक्रम किया, उसने अपनी जेब से छुपा हुआ तेज चाकू निकाल कर उनके पेट में घुसेड़ दिया। रक्त का फव्वारा बह निकला। एक गिरा, तो दूसरा कानेस्टबिल भागा। पर हत्यारे ने उत्तेजित होकर उसकी पीठ मे भी तेज छुरा भोंक दिया। जब उसके हाथ खून सने से थे। रक्त से सना लाल-लाल छुरा उसके हाथ में था।

तड़पती हुई दो लाशें रक्त में नहा रही थी। उसे क्या पता था कि क्रोध के पागलपन का क्या कुफल होता है ? पर हत्यारा भाग न सका शोर करती हुई उत्तेजित भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोग पागल होकर चिल्लाने लगे—

'पकड़ो ! पकडो !! इस दुष्ट ने दो खून कर दिये। कातिल कहीं भाग न जाय !!!'

लोग लाठी ले-लेकर चारों ओर से घिरे आये। कातिल हक्का-बक्का रह गया। कोशिश तो की, लेकिन वह कहीं भाग न सका। चारों तरफ से घिर कर आखिर पकड़ लिया गया।

पहले तो उत्तेजित भीड़ ने कातिल की खूब मरम्मत की, फिर कत्ल का केस पुलिस के पास आया। कत्ल का मुकदमा कई वर्षों तक चलता रहा दोनों ओर से वकीलों ने बहस की। उसे पागल करार दिया गया, पर मौत की सजा से उसे कोई

बचा न सका। अन्त में अदालत ने फाँसी की सजा का हुक्म दिया। आज उसे फाँसी मिलने वाली है। उसी की तैयारी की जा रही है।

अन्तिम दिनो मे सदाचार-समिति के कुछ कार्यकर्त्ता हत्यारे से मिले थे। उपदेशो ताथा प्रार्थनाओ द्वारा उसका हृदय-परिवर्तन करने का उन्होंने प्रयास किया था'। वे सफल भी हुए।

उन्होंने कई दिनों तक हत्यारे को उपदेश दिया था, आग के समीप रहने से शीत का कष्ट चला जाता है। इसी प्रकार मनुष्य पाप की ओर तब बढता है, जब वह परमात्मा से दूर रहता है। आपके शरीर में ईश्वर का निवास है। आप मे समस्त सद्भावनाये और सत्यप्रवृत्तियाँ है। ईश्वर-पूजा के लिए किसी प्रतिमा की पूजा या विशिष्ट साधन-पद्धति की आवश्यकता नही है उसकी पूजा तो ईश्वर को बनायी उस जीव-सृष्टि की पूजा करना है। ईश्वर हमारी शुभ सात्त्विक भावनाओं में निवास करता है।

'जिसके भीतर जितनी समाज-सेवा का भाव और सदाचरण रहेगा उसमे उतना ही ईश्वरीय प्रकाश का उदय माना जा सकता है। परमात्मा का दिव्य प्रकाश जिस भी अन्तःकरण में उदीयमान रहेगा, उसमें तृष्णाओं और अपराध भावनाओ का अन्धकार कैसे टिकेगा? वहाँ द्वेष, चिन्ता, भय निराशा और उद्वेग के लिए स्थान कहाँ रहेगा?'

इस प्रकार के आत्मा सुधार-विषयक उपदेश सुनते-सुनते उस हत्यारे के विचारो मे खलबली मच गयी! ईश्वर का चमत्कार उसमे से प्रकट हुआ। उसमे आस्तिकता और परोपकारी दिव्य भावनाएँ उदित हुई।

उसने अनुभव किया कि विकृति और अपराध-वृत्तियो मे

फँस कर उसका समस्त जीवन नष्ट हो चुका है। उसने अपने आपको अपराधी माना। दो-दो हत्यायें कर देने के पाप से वह विक्षोभपूर्वक प्रायश्चित्त करने को बेचैन हो उठा। मनुष्य के भीतर जहाँ असुरता होती है, वहाँ उससे अधिक देवत्व भी होता है। अब इस हत्यारे के देवत्व ने जोर मारा। उसका दृष्टिकोण एकाएक बदला। अब वह नई दृष्टि से सोच रहा था—'अब क्या करूँ, जो अन्त समय मे मेरे इस शरीर से कुछ परोपकार का कार्य हो जाय ?'

फल क्या हुआ ?

अन्तिम क्षणों में वह हत्यारा बदल कर एक नये तरह का भगवद्भक्त उदार आदमी बन गया। उसमे देवत्व जाग्रत् हो उठा। पुण्य, सज्जनता, शील, गुण, सहानुभूति, दया, परोपकार मनुष्य क जन्म जात विभूतियाँ है। एक बार सज्जनों-जैसा जीवन का मधुर स्वाद चखने पर मनुष्य स्वय पाप से घृणा करने लगता है उसे पाप-वृत्तियों में फँसते हुए अस्वाभाविकता और पश्चाताप का अनुभव होने लगता है। पुण्य तथा देवत्व का रास्ता मिल जाने पर कोई भी व्यक्ति किसी को नीचा नहीं दिखा सकता, क्योंकि सत्य, प्रेम, स्नेह, पुरुषार्थ तथा सौहार्द में मानसिकता और तेजस्विता होती है।

परोपकार भाव का परिणाम आन्तरिक प्रकाश है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य का जीवन आनन्द मय हो जाता है। परमात्मा ऐसें सैकड़ों तरीके निकाल देता है, जिससे उसे जीवन के सद्-व्यय का नया अवसर प्राप्त हो जाता है।

गीता में भगवान् ने स्वय घोषणा की है—

'जो प्राणिमात्र का मित्र है, जो दया शील है, जो मोह, ममता और अहङ्कार से रहित सत्कर्म करता है, जो क्षमावान्

है, सर्वदा सन्तुष्ट, स्थिर-चित्त, संयमी तथा दृढ निश्चयी है, जिसने अपने मन तथा बुद्धि को प्रीतिपूर्वक मुझे समर्पित कर दिया है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है। वह सुख-दुःख में समान रहता है क्रोध भी उसे नही आता। इस प्रकार पुण्य कार्यों में विश्वास रखकर, सम्पूर्ण प्राणियो के हित को ध्यान मे रख कर आचरण करता है, निन्दा से दुखी नही होता, मान प्रतिष्ठा से हर्षित नहीं होता। जो सुख-दुख दोनो को समान रूप से प्यार करता है, वह पुण्यात्मा मुझे प्रिय है।'

हत्यारे ने उस फांसी को अपने लिये वरदान समझ लिया उसने यह माना कि ईश्वर के पाप पूर्ण इस जीवन का अन्त कर अगले जन्म में श्रेष्ठतर जीवन देने की युक्ति कर रहा है। मौत की सजा पाकर इस अपराध वाली कलङ्कित जिन्दगी से छुटकारा मिल जायेगा। अगले जन्म में वह भला इन्सान बनेगा।'

मृत्यु से पूर्व आदमी के जैसे विचार और भावनाये मन में होती है, वैसा ही उसे पाप या पुण्य का फल मिलता है। मरते-मरते भगवान् का नाम ओठो पर रखने से कितने ही पापियो को मुक्ति मिली है।

फांसी के दिन—

वह बड़े तड़के उठा। पहली बार पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से हृदय मे स्थित भगवान को पुकार कर बोला—

हे ईश्वर! अब मैं तेरी शरण में आ रहा हूँ। मैं अपने पुराने पापो के कलुषित जीवन से ऊब उठा हूँ। मैं पाप की गन्दगी में नही रह सकता, पुण्य और सज्जनता का नया जीवन चाहता हूँ। मेरे पुराने सञ्चित पापों और अपराधो को क्षमा

करो। नया अगला जीवन ऐसा दो, जिससे शुद्ध आचरण का अवसर मिले।'

जब जेल क्रूर कानेस्टबिल उसे फांसी पर चढाने के लिए आये, तो परमात्मा की प्रार्थना में उसके हाथ जुड़े हुए थे।

उसे फासी के तख्ते पर खडा कर दिया गया।

अधिकारियों ने पूछा—'मरने से पहले क्या तुम्हारी कोई इच्छा है ?'

'मुझे अपने सञ्चित दुष्कर्मों का प्रायश्चित् करना है।'

'वह किस तरह ? प्रायश्चित्त का क्या तरीका सोचा है तुमने ?'

'एक बख्शीशनामा बना कर।'

'किसके नाम अपनी सम्पत्ति को बख्शीश करना चाहते हो।'

वह सोचता रहता ? फिर जैसे ईश्वर ही उसके मुंह से बोला

'मैं अपनी सम्पत्ति का आधा भाग उन दोनों सिपाहियों की धर्म पत्नियों और बच्चों को देना चाहता हूँ, जिनको हत्या आवेश के कारण मेरे हाथों हो गयी है।'

उसकी यह इच्छा सुनकर इधर-उधर खड़े जेल के सिपाही और अधिकारी चकित—विस्मित थे। परोपकार का यह भाव कहाँ से आ गया इस हत्यारे में ?

सच बात तो यह है कि मानवीय सदाचरण के बीज पापी अपराधी, हत्यारे इत्यादि सब में सोये पड़े रहते हैं। उन्हें जगाने की जरूरत है। यदि उचित प्रोत्साहन मिले, तो ये बीजांकुर आज नहीं तो कल जरूर पनपेंगे।

आप समाज को जो कुछ बन सके, सेवा-सहयोग, सहानुभूति,

परोपकार के रूप में कुछ भी दीजिए। धनवान् धन दे सकता है और शक्तिमान् साहस !

किन्तु जो न धनवान् है, न शक्तिमान्, वह किसी को कुछ देने की इच्छा रखता है, तो क्या दे ? यह प्रश्न बहुत से उदार हृदयों को निष्फल बना देता है।

जिस के पास प्रत्यक्ष रूप से कुछ देने के लिए नहीं है, उसके पास एक ऐसा अनुपम तथा अक्षय कोष होता है, जो धनवानों और शक्तिमानो के पास नही होता ! वह अक्षय कोष है—सेवा और सहानुभूति ! प्रेम और स्नेह ! दया और करुणा ! धन और शक्ति का कोष समाप्त हो सकता है, उसमें कमी आ सकती है, पर अपनी सेवा और सहानुभूति को दिन-रात कितना हो क्यों न बाटा जाय, वह रत्तीभर भी नही घटती।

●●

मृत्यु का स्मरण पाप मुक्ति का सहज उपाय है

एकनाथ महाराज से जिज्ञासु विचित्र प्रश्न किया करते थे। जैसे प्रश्न, वैसे ही नपे तुले अचूक उत्तर। प्रत्येक उत्तर में नया मार्ग दर्शन, जीवन में नया आलोक, उन्नति के लिए नई राह ! उनके पास जिज्ञासुओं का जमघट रहता था।

एक दिन एक व्यक्ति ने पूछा :

'महाराज, मुझे आपका जीवन बडा भला, सरल, सीधा लगता है····कोई दुराव छिपाव नही,कोईछल छद्म नहीबाहर भीतर कोई

घबराहट या उद्वेग नहीं, सब कुछ खुली पुस्तक की तरह है जिसका प्रत्येक पृष्ठ पढा जा सकता है। आपका व्यवहार कितना मधुर है, प्रत्येक पल सीधा सादा है, कितना निष्पाप है। दूसरी ओर हम तरह तरह की पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक चिन्ताओं में दबे है, शक-सन्देह में फसे हैं और अपना वाह्याडंबर बनाये रखने में एड़ी-चोटी एक कर रहे है। हमारा जीवन ऐसा निष्पाप क्यों नहीं ?'

एकनाथ प्रश्न पर सोच विचार करते रहे। प्रश्न एक समस्या बन कर उनके सामने उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था।

उन्होंने सोचा कि उत्तर ऐसा देना चाहिए जो यह व्यक्ति सरलता से समझ सके। दृष्टान्त देकर समझाया जाय तो अच्छा रहे।

समझाने की दृष्टि से वह बोले—'अभी मेरी बात छोड़ो ! एक बात कहनी है।'

'आपका क्या आदेश है महाराज !'

तुम्हारे सम्बन्ध में हमें एक गुप्त बात मालूम हुई है !'

'मेरे सम्बन्ध में ?' आश्चर्य से उस व्यक्ति ने पूछा—'मेरी बाबत आपने क्या सुना ? कौन-सी खुफिया बात है वह ! जल्दी बताये।'

उस व्यक्ति के मुँह पर अपनी गुप्त बाते मालूम हो जाने का डर स्पष्ट अंकित हो उठा। हवाइयाँ उड़ गईं। वह डर गया।

'बड़ी खराब बात हैं !' रोनी सी सूरत बना कर एकनाथ बोले : 'कहो तो स्पष्ट करूं, यदि बुरी लगने का भय हो, तो जबान दवाये रखूं। कड़वी बात कहते हुए अटक गया हूँ। पता नही उसका तुम पर क्या असर हो !'

'महाराज, मुझे बड़ी उत्सुकता हो उठी है।'

'आज से सात दिन के भीतर तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।'

'ओफ ! मृत्यु····! सात दिन मे मौत····। हाय ! हाय !! यह आप क्या कह रहे हैं····? क्या ठीक हो सात दिन के बाद मै इस सुन्दर ससार में नही रहूँगा। सात दिन मे मरण·········। ओह।'

एकनाथ महाराज ने फिर करुण स्वर में वही बात दोहराई।

'आज से सात दिन के भीतर आपकी मृत्यु हो जायेगी।'

'सात दिन मे मृत्यु·····।' उसने हृदय थाम लिया। चेहरा फक पड़ गया,वहवहां न ठहर सका। डर कर फौरन घर की ओर दौड़ा। अब उसके मस्तिष्क में मौत की कल्पना तरह तरह के रूप धारण कर उभर रही थी। मरने पर कैसी पीडा हाती है, इसी कल्पना मे लग गया। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मृत्यु की काली छाया उसके ऊपर पड रही है। वह मृत्यु शय्या पर पड़ा जिन्दगी के कुछ क्षणो के लिये छटपटा रहा है, जैसे क्रूर बाज के खूनी पंजो मे फँसी कोई नन्ही सी निरीह चिड़िया।

मरने से पहले जल्दी जल्दी जरूरी काम करने मे जुट गया। वह शीघ्रता से अपना सामान एकत्रित करने लगा। कभी कोई काम निबटाता, कभी किसी को समेटता किसी का ऋण लौटाता और किसी से आखिरी विदा माँगता। अपनी पत्नी और बाल बच्चो के लिये मरने के बाद पैसे की व्यवस्था करता। कभी पत्नी से बिछुडने का करुण क्रन्दन करता। सात दिन में सब कुछ काम पूरे करने का क्रम चलता रहा। सात दिन मे— सब समेट लेने की प्रवृत्ति से तथा मौत के प्रच्छन्न भय से डरते डरते वह अधमरा हो गया।

गुप्त मानसिक भार से बेचारा बीमार पड़ गया। लोगों ने एकनाथ महाराज को उसकी मानसिक व्याधि की सूचना दी।

'महाराज, वह सातवे दिन सचमुच मर जाएगा, उसे कि ी प्रकार बचाइये। बेचारा मर रहा है। उसे चारो ओर मृत्यु ही मृत्यु नजर आ रही है।'

एक-एक कर छः दिन देखते देखते व्यतीत हो गये। काल की तरह सातवां खौफनाक दिन आ गया। ओफ ! कितना भयावह था वह काला दिन !!

सातवे दिन महाराज एकनाथ उससे मिलने आये। देखे, उस सूचना का क्या प्रभाव पड़ा ?

परिवार के सदस्यों ने आकर सूचना दी कि महाराज द्वार पर खड़े है। सान्त्वना देने आये है, उनके वचनों से लाभ होगा।

'महाराज आये है। उन्हें फौरन अन्दर लाइये। आखिरी क्षणो में कुछ बाते कर लूँ।'

अन्दर आकर महाराज शान्ति पूर्वक बैठ गये, पूछा, 'कैसी तबियत है आपको ?'

'बस मौत........की........घड़ियाँ गिन रहा हूँ........थोड़ी देर का मेहमान हूँ।'

'यह क्या कह रहे है ? ऐसा न कहिए।'

'ठीक ही अनुभव कर रहा हूँ........ऐसा लगता है मृत्यु मनुष्य के साथ चलती है.... ...साथ ही बैठती है ....दूर जाने पर भी साथ नही छोड़ती........और........साथ जाकर भी वापिस लौट आती है .. ....बस, महाराज अब चला........।'

एकनाथ जी उसकी गिरी हुई दशा देख कर स्तम्भित रह गये ! अरे यह क्या हालत हो गई इसकी ?

'एक बात पूछूं ?'

'महाराज ! पूछिये, अब मरने से पूर्व जो कुछ पूछेंगे वही बताऊँगा । क्या पूछना है ? आपसे क्या छिपाना है भला ।'

'इन छः दिनों में कितना पाप किया ? झूठ, कपट, मिथ्याचार हिंसा, व्यभिचार, अर्थ-सग्रह कितना हुआ ? पाप के कितने विचार मन में आये ? यह बताइये ।'

वह व्यक्ति हर क्षण मरने की प्रतीक्षा कर रहा था । करुणा भरे स्वर और लड़खड़ाती आवाज में बोला—

'नाथ जी, पाप का विचार करने की फुरशत ही नही मिली ·······थोड़े से क्षण दुनिया मे रहना है । इन गिने चुने क्षणो मे हर मिनट मौत आँखो के सामने खड़ी रही है । न जाने कब यह जीवनदीप बुझ जाय । यही विचार सामने रहने से क्षुद्र सांसारिकता के कामों के लिए फुरसत ही नही मिली है । न झूठ बोलने का वक्त मिला, न कपटपूर्ण व्यवहार को तबियत की । हिंसा और व्याभिचार की तरफ से मन हट गया । रुपये पैसे में कोई रुचि नही रही । थोडे दिन जीना है, फिर बहुत सा धन-संग्रह करने से भला क्या फायदा ! जो बहुत जरूरी काम थे, उन्हे जल्दी-जल्दी निपटाया है । पाप मे तो प्रवृत्ति तब होती, जब व्यर्थ का समय होता, बहुत सा रुपया पास होता मौत का ध्यान न होता या जिम्मेदारियों से बचने की प्रवृत्ति होती । अब तो बेहद जरूरी कार्यो और उत्तर-दायित्वो पर ही दृष्टि है ।'

एकनाथ जी ने समझाते हुए कहा, 'हमारा जीवन इतना निष्पाप क्यो है—इसका उत्तर मिल गया न ?'

उस व्यक्ति के नेत्र खुल गये । अब वह खुद अपनें ही उत्तर को गम्भीरता से सोच रहा था ।

'महाराज ! समझ गया.... ...अपने जो भी समझाया वह समझ में आ गया।'

'फिर भी क्या समझे ? मुँह से कहिये, तो जाने।'

मौत को हमेशा याद रखना पाप से मुक्त होने का उपाय है।'

'बस, तो अब स्वस्थ हो जाइये। अभी आपको बहुत जीना है। यह बात मैंने केवल तत्व को समझाने मात्र के लिए ही कही थी, जितना मृत्यु को याद रखोगे उतने ही वैरागी बनोगे, अधिक जिओगे।'

'अच्छा, तो यह रहस्य था।' कह कर वह व्यक्ति उठ बैठा। 'अब मुझे पाप से मुक्ति का रहस्य स्पष्ट हो गया। इस जीवन मे परोपकार के सब काम जल्दी कर डालने चाहिए, पता नहीं मौत कब दबा ले।'

मृत्यु के सहायक काल दूत

मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्या कृत्रिमा शरुः ।
पुरा नु जरसो वधीन् ॥

ऋग्वेद ८।६७।२०

अर्थात् हमारा जीवन इस प्रकार हो कि हम पूर्ण आयु प्राप्त करें। हमारी अकाल मृत्यु न हो, इसलिए हम संयमित जीवन जियें।

उस दिन ब्रह्माजी चिन्तित होकर कुछ सोच रहे थे। मुख पर चिन्ता के चिह्न काले बादलों की तरह उभरे हुये थे ! पहली बार वे विचारों में डूबे हुए थे !

उनका मुख्य कार्य सृष्टि का नव-निर्माण है। वे सृष्टि के जन्मदाता है । अनेक प्रकार के जीवों को जन्म देना, उनके पालन पोषण की सुव्यवस्था और विकास की देख भाल उन्ही के जिम्मे रहती है। बडा ही उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है उनका !

यदि जीवो के उत्पादन और विकास के क्रम मे कमी आ जाय तो सृष्टि का ही अन्त हो जाय ! ब्रह्मा जी को यही ध्यान रहता कि जीवो के निर्माण में कमी न आये वे अपना सारा समय निकाल सृष्टि को बढाने मे ही लगे रहते। सृष्टि हर प्रकार भरी परी रहे यही उनकी इच्छा रहती थी।

जहा और और जीव बढ़े वही मानव-समुदाय भी बढ़े-ब्रह्माजी ने यह ध्यान रखा था। उन्होने मानव–समाज के प्रजनन, बढ़ते रहने का उपक्रम किया था। ऐसी मोहक–मादक कामोत्तेजक प्रवृत्तियाँ प्रोत्साहित की थी कि प्रजनन बढता रहा। मनुष्यो की संख्या उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर रही। जैसे एक माली को अपने खेत को लहलहाता, पुष्पित फलित होते देखकर आनन्द होता है, उसी प्रकार ब्रह्माजी मनुष्यो की संख्या बढ़ते देखकर आह्लादित होते रहते थे। एक समय ऐसा आया कि वे जितनी जनसख्या चाहते थे, उतनी पूरी हो गई। अब वे सतुष्ट हो गये कि सृष्टि का अन्त नही होगा।

लेकिन मूर्ख मनुष्यों ने प्रजनन कर्म पुरानी गति से फिर भी जारी रखा। उनकी भोग विलास की कामुक प्रवृत्तियों पर कोई रोकथाम न रही। वे दिन रात प्रजनन सम्बन्धी निद्य-कार्यो में ही लगे रहते, फलस्वरूप जनसंख्या अनापशनाप बढ़ने लगी। भोजन में कमी पड़ने लगी। ब्रह्माजी ने चाहा कि अब जनसंख्या पर कुछ रोकथाम लगे, अन्यथा मनुष्यों को भूखा

रहने को विवश होना पडेगा ! वे अपने ही बनाये मनुष्यो को क्षुधा-पीडित देखकर करुणा पूरित हो उठे ।

आज वे प्रजनन के बढते रहने से चिन्तित बैठे जनसख्या के नियंत्रण पर विचार कर रहे थे । 'इस अनियत्रित अभिवृद्धि की रोकथाम कैसे हो ?' उनके स्वर में झुंझलाहट थी !

यकायक क्षितिज पर उदित होती हुई रश्मिकी तरह एक नया विचार उनके मन में आया कोई ऐसी शक्ति हो, जो बर-बस जनसख्या पर नियन्त्रण करे । अनापशनाप बढती हुई जन-सख्या को रोकने के लिए कोई ऐसी ताकत हो, जो भोजन और निवास के अनुपात मे जनसख्या को सन्तुलित कर दे !'

बहुत सोचकर उन्होने अपने तपोबल से मृत्यु को जन्म दिया ! मृत्यु एक नवोढा युवती के रूप मे ब्रह्माजी के सामने खड़ी थी । उसने अपने पितामह को आदर पूर्वक प्रणाम किया ।

'पितामह ! मेरे जीवन का क्या लक्ष्य होगा ? मैं इस ससार मे किसलिए पैदा की गई हूं ?' मृत्यु ने जिज्ञासा प्रकट की ।

'मैं तो ससार का स्रष्टा हूँ । तरह तरह के अच्छे बुरे जीवो को बनाता रहता हूँ । मैंने तुम्हे भी बना डाला !'

फिर भी मेरे जन्म का कोई तो प्रयोजन होगा ही ?' मृत्यु बार-बार पूछने लगी ।

'तुम जिद कर रही हो !'

'हर व्यक्ति का कोई न कोई लक्ष्य है । जन्म का प्रयोजन है । मेरे जन्म का भी कोई छिपा हुआ गुप्त अभिप्राय होना ही चाहिए ?' मृत्यु ने पूछा—

'हां, है तो एक लक्ष्य !'

'वह क्या है, पितामह ? मुझे अपना काम बता दीजिए, जिससे खाली आलस में न बैठकर अपना कार्य प्रारम्भ करूं ।'

अब ब्रह्माजी को अपना अभिप्राय स्पष्ट करना पड़ा।

'मनुष्य—लोक मे जनसख्या बडी तीव्रता से बढ रही है। प्रतिदिन हर क्षण कीड़े मकोडो की तरह आदमी बढते जा रहे है। यहाँ तक कि उन्हे भूखे मरने की नौबत आ गई है। स्थान तक कम पडने लगा है अब।'

'यह तो आपकी सृष्टि है। आप जितना चाहे बढा सकते हैं।'

'लेकिन उसमे सन्तुलन भी रहना चाहिए। कुछ नियत्रण जरूरी है।'

'फिर मैं क्या सहायता कर सकती हूँ, पितामह ? आज्ञा दे।'

मन मे उद्विग्नता लिए टीस भरी आवाज मे ब्रह्माजी बोले, 'मनुष्यो की अनियत्रित बढोत्तरी न होने पावे, इसलिए तुम सन्तुलन बनाये रखने की दृष्टि से उन्हे मार मार कर परलोक मे भेजती रहा करो।'

'ओफ! ऐसा निंद्य कार्य! लोगों को मारने जैसा बीभत्स दुष्कर्म! पितामह, यह हिंसा का कर्म तो मुझसे न होगा।'

'यह तो सन्तुलन स्थिर रखने की दृष्टि से है।'

'पितामह, निरपराध जीवो का वध करना कितना निर्दयतापूर्ण और कुत्सित है।' उसकी जिह्वा मे करुणा का स्वर था।

'जो जीव बच जायेगे, वे सुखी और स्वस्थ रहेगे।'

'क्या आजीवन मुझे सहार का ही पाप कर्म करते रहना होगा ?' मृत्यु ने पूछा। 'क्या मुझे नित्य ही असख्यो का अभिशाप ओढना होगा ?'

थोडी देर के लिए मृत्यु कुछ आगे न बोल सकी। उसका कंठ भर आया। उसका यौवन और सौन्दर्य आँसुओ से भीग

उठा। असंख्य व्यक्तियों को मारने की हिंसक कल्पना ने उसे विचलित कर दिया।

'ओ! तुम तो रोने लगीं!' सिर पर हाथ फेरते हुए ब्रह्मा जी ने मृत्यु को सान्त्वना दी। वे आगे समझाते हुए कहने लगे, 'इसमे तुम्हारा दोष नही है। खेतो से व्यर्थ के झाड़ झखाड और खराब घास कूड़ा भी तो फेका जाता है। सृष्टि का सन्तुलन स्थिर रखने के लिए पवित्र कर्म समझकर जनसख्या के नियत्रण का यह कार्य करो। इसमे तुम्हें कोई पाप नही लगेगा।'

'नही, मारने और जीवन पर्यन्त हिसा ही करते रहने का यह दुष्कर्म करने का साहस मुझ से न हो सकेगा। मारने का काम बड़ा घिनौना है। उसे करने की हिम्मत नही बन पड़ रही है मुझ से! क्या कोई और अच्छा कर्म मेरे भाग्य में नही लिखा है? कुछ शुभ कर्म बताइये मुझे।'

'सृष्टि का नियन्त्रण भी बहुत महत्वपूर्ण कर्म है। इसमें तुम्हें पाप न समझना चाहिए। तुम रोओ नही, स्थिति को समझो।'

मृत्यु रोती ही रही। दुष्कर्म करने को तैयार न हुई।

'ओ! तुम नेत्रों पर हाथ रखकर लगातार रो रही हो! कुछ सोचो तो! यह तो कर्तव्य है। मैंने तुम्हे सर्वोपरि शक्ति बनाया है। तुम्हारे चुगुल से कोई न बचेगा! तुम जीव-जन्तु किसी को भी न छोड़ोगी। तुम सबसे ऊपर हो।'

'पितामह, इस नरसहार से मुझे घृणा हो रही है।'

मृत्यु अपने चेहरे को हाथों से ढके हुए धेनुकाश्रम के समीप वाले वन मे चली गई। वहाँ जाकर उसने घोर तप करना आरम्भ कर दिया।

उस तपस्या से ब्रह्माजी का आसन डोल उठा।

उन्हे फिर मृत्यु की स्मृति हो आई ! वे दयार्द्र होकर धेनु-का श्रम पहुँचे । देखा, वह तपस्या मे तप कर आधी हो गई है।

दया और प्रेम से अभिभूत ब्रह्माजी ने प्यार से उस पर हाथ फेरा और पछा, 'पुत्री ! तुम्हारे इस तप की क्या कामना है ? मुझ से कहोमैं उसे पूर्ण करूगा ।'

'पितामह, मुझ से हिंसा जैसा वह कुत्सित दुष्कर्म न हो सकेगा, जो आपने मुझे करने को कहा है।'

ब्रह्माजी सुन रहे थे।

'पिताम', मैं निर्दोष प्राणियो का बध करू ऐसी बुरी मेरी मन.स्थिति नही है। मुझे इस पाप से बचाइये। यही इस तप का उद्देश्य है।'

'जिस उद्देश्य के लिए इसकी सृष्टि की है, यह उसी से बचना चाहती है। यह तो जटिल समस्या है।' यह सोचकर ब्रह्माजी असमजस मे पड गये ।

उधर जनसख्या उसी तरह अनियन्त्रित गति मे बढती जा रही थी। उसे रोकना आवश्यक था। वे करते भी क्या ? बढती हुई प्रजा के नियमन के बिना सन्तुलन स्थिर रखने का कोई उपाय ही न था। उधर मृत्यु हिंसा के लिए तैयार न होती थी ।

वे कोई दूसरा हल सोचने लगे।

मुस्कराते हुए उन्होने मृत्यु के सामने एक दूसरा विकल्प रख दिया। देखो, मैं तुम्हारी सहायता के लिए आठ काल-दूतो को पृथ्वी पर भेजता हूँ।'

वे क्या करेगे ?' मृत्यु ने पूछा—

'कालदूत मनुष्यो के मन मे प्रवेश कर उन्हे भीतर ही भीतर खोखला करते रहेगे ।'

माँ का वात्सल्य हिलोरे ले रहा था। वह अपने शिशु की प्राण रक्षा के लिए बेचैन थी।

माँ से बच्चे का कारुणिक रुदन न देखा गया। वह बार-बार कोशिश करती कि किसी प्रकार उसके स्तन से दूध की दो बूंदें भी निकले, किन्तु एक भी बूँद दूध न निकला। बेचारी बडी निराश, बडी चिन्तित। हाय ! यह बच्चा क्यों कर बचेगा ? इसे कौन स्त्री दूध पिलाकर पालेगी ? दाई तो आखखिर दाई ही होती है। क्या वह माँ के समान प्यार से बच्चे को अपना स्नेह दान देगी ?

माँ बार-बार सोचती, किन्तु निर्णय न कर पाती।

वह हर स्त्री को इस आशा से देखती कि शायद कोई अपना दूध पिला कर बच्चे को प्राण-दान दे दे। यदि ऐसे ही वह बिलखता रहा तो मृत्यु निश्चित है। प्यास से बच्चे के ओठ सूखने लगे थे। उसकी करुण प्रार्थना को समझने वाले हृदय वहाँ न थे। दूध का प्रबन्ध न हो सका !

जब कोई उपाय न हुआ, तब घर वाले चारो ओर किसी दाई की तलाश मे भागे। कई गांवो में तलाश हुई। क्या कोई ऐसी औरत है, जो अपने बच्चे सहित घर छोड दरभङ्गा के इस परिवार मे चली आ ये ? गांव की कई औरतो से बातचीत हुई मोल-भाव हुआ पैसे का प्रलोभन दिया गया, किन्तु जल्दी ही दाई का प्रबन्ध न हो सका।

जब सब मानव प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं, तब ईश्वर की गुप्त सहायता रुके हुए रथ को आगे बढाती है। हर भले कार्य मे दैवी सहायता मिलती रहती है। कुछ ऐसा ही करिश्मा यहाँ देखने मे आया।

संयोग से एक गाँव में रोने-पीटने की ध्वनि सुनायी दी।

पूछने पर मालूम हुआ कि एक गरीब परिवार मे एक माता का शिशु चल बसा था। मा करुण रोदन कर रही थी। 'हाय! मेरा लाल मैं कैसे उसके दूध पीने से उत्पन्न सुख का अनुभव कर सकूँगी। मेरा पहला शिशु भी इसी प्रकार चल बसा। यह दूसरा भी यों ही गया। हाय! मेरा शिशु? क्या मेरे स्तनो में भरा हुआ यह दूध फिर ऐसे ही सूख जायगा। मुझे अनुभव ही न हुआ कि शिशु माँ का दुग्ध पान कैसे करते हैं। मेरे स्तनो मे प्यार का दूध, पर उसे पीने वाला कोई नही।'

लोग आशा से वही ठहर गये। जब उस माता का दुःख कुछ शान्त हुआ, तब उसके पति से बातचीत हुई। 'क्या ये हमारे बच्चे को दूध पिलाकर जीवन-दान देंगी? बड़े परोपकार का काम है। कृपया निराश न करे। बारम्बार प्रार्थना दोहरायी गयी।

पति उदार विचारो का था।

उसने सोच-विचार कर उत्तर दिया—

"पैसे के लिये नही, अपके पुत्र को दूध पिलाकर मेरी पत्नी अपने मातृत्व की तुष्टि पायेगी। उसके मन मे ढाढस बँधेगा। मातृत्व की क्षुधा स्त्री के लिये सहज स्वाभाविक कर्म है। यह उसकी प्राकृतिक भूख है। उसे कोई भी बच्चा चाहिए जिसे वह दूध पिला सके।'

'आपकी बड़ी भारी कृपा है। आप बच्चे को नये प्राण दे रही हैं। आपके दूध का मूल्य पैसो मे नही चुकाया जा सकेगा।'

धाय के रूप मे वह नारी आ गयी। दाई ने माता के समान वात्सल्य से ही शिशु को अपना दूध पिलाया। बच्चा धीरे-धीरे उस दूध से परिपुष्ट हो विकसित होने लगा। उसके अस्थि-

जबरत् शरीर में माम आ गया। उसमे रक्त का सौन्दर्य नजर आने लगा।

ईश्वर की कुछ ऐसी कृपा हुई कि दाई का दूध इस बच्चे को माफिक बैठ गया। बच्चा स्वस्थ और सुन्दर होने लगा। उसकी किलकारी दोनो नारियो को स्वर्ग का सुख देती थी।

माँ दाई से प्रायः कहा करती—'तूने मेरे पुत्र की जान बचा दी। यदि तू दया कर समय पर इसे न संभालती, तो दूध के अभाव में यह कभी का मर गया होता। तेरे दूध से ही पल कर बड़ा हो रहा है। इसके प्रत्येक रंग-रेशे मे तेरा ही दूध तो चमक रहा है। मैं तो केवल जन्म देने वाली माँ हूँ, दूध पिला-पिलाकर प्राण देने वाली असली माता तो वस्तुतः तू ही है!

दाई कहती—'माँजी! मैं तो केवल स्नेह-वश इस बच्चे को पाल रही हूँ। इसे अपने स्तन का दूध पिलाने से मुझे ऐसा अनुभव होता है, जैसे यह स्वय मेरा ही शिशु हो। कितना दुलारा है यह शङ्कर।'

'नही, नही, तुम ही इसे प्राणदान करने वाली ममतामयी माँ हो। तुमने मेरे बालक को जो स्नेह-युक्त दूध पिलाया है, उसका कोई मोल नही दिया जा सकता। यह ऐसा उपकार है, जिसका बदला न मैं दे सकती हूँ और न यह लडका ही, वह दिन कितना मधुर होगा, जब यह बालक कुछ कार्य कर दिखायेगा। एक दिन शकर बडा होगा पढेगा-लिखेगा, विद्वान् बनेगा, पैसे कमायेगा,' माँ कहती।

'अहह! वह दिन मेरे लिये भी कितना शानदार होगा' दाई उत्तर देती, 'यह पढना-लिखना, यह विद्वत्ता, यह चमत्कार, यह प्रसिद्धि, सब कुछ मेरे दूध के कारण ही तो होगी। मेरा दूध—मुझे अपने पिलाये हुए दूध पर बड़ा गर्व है। दूध पिलाने

के कारण मैं भी शङ्कर को अपना पुत्र समझती हूँ।' ऐसा कह, प्यार से दाई शिशु का चुम्बन कर लेती और आँचल मे छिपा लेती।

'सचमुच शङ्कर तेरा ही पुत्र है। भला तेरे पिलाये दूध का मैं क्या मूल्य दे सकती हूँ!

'मुझे अपने दूध का दाम नही चाहिये। बारम्बार दूध के मूल्य की बात न कहिये।' 'पर मैं तो कुछ देना चाहती हूँ। कुछ तो उऋण हूँ तुम्हारे बोझ से!' 'फिर देखा जायगा। समय आने दीजिये।'

'नही, नही! कुछ तो मिलना ही चाहिये। सोचती हूँ क्या दूँ? अक्ल परेशान है।' हँस कर दाई बोली, 'मैं आपसे नही, शङ्कर से ही कुछ माँगूगी। उसकी कमाई मे मेरा हिस्सा होगा।'

माँ व्यग्यपूर्वक कहती, 'बडा होने पर इसका विवाह हो जायगा। फिर यह हम दोनो के काबू से बाहर हो जायगा। जो कुछ है, अभी दे देना चाहिए।'

'नही, नही, अभी दाम देने को क्या जल्दी है। अपने पुत्र से क्या मोल लूँगी भला?' दाई कुछ भी लेना न चाहती थी। बार-बार इन्कार करती थी।

उधर माँ कुछ-न-कुछ देने पर तुली हुई थी। जोर देकर कहने लगी—

'अच्छा एक बात है। मेरा शङ्कर जो पहली कमाई लायेगा, सो तेरी होगी।' 'पहली कमाई मेरी! माँजी, यह आपने क्या कहा! मुझे यह कुछ न दे, तो भी इसकी उन्नति और सम्मान देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती रहेगी।'

हाँ, कही पहली कमाई मात्र से मैं उऋण थोड़े ही हो

जाऊंगी। मेरे शङ्कर को जो दूध पिलाया है, उसा आभार मैं आजन्म मानती रहूँगी।' कहते-कहते शङ्कर की माँ भावातिरेक से गद्गद हो उठी।

× × ×

धीरे-धीरे शङ्कर बडा होने लगा।

बालक से विकसित होकर उसने किशोर अवस्था में पाँव रक्खा। पता नही क्या बात है जो बच्चे शुरू मे अभाव और कष्टों मे पलते है, वे ही बड़े होकर महापुरुष निकलते हैं। मुसीबते उनको पर्वत की तरह मजबूत बना देती हैं। प्रतिकूलताओं से वे सफलतापूर्वक टक्करे लेते हैं कठिनाइयाँ उनका जीवन-मार्ग नहीं रोक पाती।

शङ्कर पढने मे कुशाग्रबुद्धि निकला। उसे अपनी योग्यता बढाने मे विशेष अभिरुचि था। वह स्कूल मे पढने के अतिरिक्त बचे हुए सारे समय को स्वाध्याय मे लगाया करता था। प्रतिदिन कुछ-न-कुछ पढते रहने और अपना ज्ञान-कोष बढ़ाते रहने के कारण शङ्कर बुद्धिमान् होता गया।

शङ्कर ने अनुभव किया कि जीवन के विकास के लिए पुस्तको का पठन-पाठन, चिन्तन और उन पर आचरण करना बहुत जरूरी है। स्वाध्याय के अभाव मे कोई भी व्यक्ति महान् नही बन सकता। प्रतिदिन नियमपूर्वक सद्ग्रन्थो के अध्ययन करते रहने से उसकी बुद्धि तीव्र होने लगी, उसका विवेक बढ़ने लगा और अन्तःकरण शुद्ध हो गया। वह बहार के कलुषित वातावरण से बचकर सारे दिन अपने मन को स ग्रन्थो के अध्ययन मे लगाये रहता था। उत्तम ग्रन्थों के अच्छे संस्कारों से शङ्कर विद्वान् हो गया।

स्व ध्याय, चिन्तन, पठन-पाठन, उच्च विचार धारा मे रहने के कारण मनुष्य के अन्त:पट खुल जाते हैं, जिससे वह मामूली स्तर पर पडे हुये क्षुद्र सांसारिक लोगो की कोटि से ऊंचा उठ जाता है। आत्मा द्वारा परमात्मा को पहचानने की जिज्ञासा बलवती होती रहता है। स्वाध्यायशील व्यक्ति का जीवन अपेक्षाकृत अधिक पवित्र हो जाता है। ग्रन्थो में सनिहित सद्वाणी तो अपना प्रभाव एवम् सस्कार डालती ही है, साथ ही अध्ययन मे रुचिमान् होने से व्यक्ति अपना शेष समय भी पढने मे लगाता है। शङ्कर मिश्र या तो अपने कमरे मे बैठा हुआ एकान्त अध्ययन किया करता था अथवा किसी पुस्तकालय या वाचनालय मे अखबारो मे उलझा रहता था। उसके पास ऐसा कोई भी फालतू समय नही रहता था जिसमें इधर-उधर व्यर्थ गप्प लडावे या सिनेमा के इर्द-गिर्द फिरे। दूषित वायु मण्डल में अवाञ्छनीय कुसस्कार ग्रहण करे।

यह ससार कर्मभूमि है। कठोर परिश्रम के फलस्वरूप एक दिन वह लडका सम्कृत का उद्भट विद्वान् हो गया। शङ्कर मिश्र की विद्वत्ता की प्रसिद्धि आसपास सर्वत्र फैल गयी।

शङ्कर मिश्र के काव्य की प्रशसा होने लगी। स्वाध्याय के फलस्वरूप उसके काव्य मे बडी गहराई थी। नयी नयी जानकारी, मौलिक विचारधारा और अभिनव तर्कों की प्रधानता थी। उसके मुंह से काव्य पाठ सुनकर श्रोता मन्त्रमुग्ध हो उठते थे और उसका तेजपूण मुखमण्डल देखते ही रह जाते थे।

शङ्कर मिश्र अपना काव्य-सम्पदा के लिए अपने क्षेत्र में विख्यात हो गये। लोग दूर-दूर से उनसे मिलने और काव्य-पाठ सुनने आत। उनके ललित पदो की लहर मे श्रोता बह जाते। पदो मे उत्पेक्षा, दृष्टान्त, उपमा और वक्रोक्ति आदि अलकारो

क। प्रयोग देखकर पाठक दङ्ग रह जाते। उनके काव्य मे सभी रसो का उत्कर्ष पाया जाता था। भावपूण स्थल चुनने मे उन्होने काव्य-कौशल का परिचय दिया था। शील और सौन्दर्य का समन्वय कर उन्होने उत्तम आदर्श प्रस्तुत किये थे। उनकी कविता मे लोकहित की उदात्त भावना भी कार्य कर रही थी।

एक दिन गजा ने कविवर शङ्कर मिश्र की ख्याति सुनकर उन्हे बड़े आदर सहित दरबार मे आमन्त्रित किया।

शङ्कर मिश्र की काव्य-माधुरी पर समस्त दरबार श्रीकृष्ण की वशी की तरह झूमने लगा। राजा ने काव्य-सुधा पर प्रसन्न होकर अपने गले का मूल्यवान् हार उतार कर कवि को उपहार मे दे दिया।

कवि की यही पहली कमाई थी। उसका काव्य सराहा गया था, यह उसके लिये गर्व का विषय था।

उस दिन कवि के हर्ष का वर्णन करना कठिन था।

वे आनन्दातिरेक मे मस्त हो, माँ के पास आये। गद्गद कण्ठ से बोले—

'माँ! राजा ने मुझे काव्य पर मुग्ध हो आज यह हार इनाम के रूप मे दिया है। आप कहती थी कि कुछ कमाकर नही लाता, सारे दिन काव्य-रचना मे ही लगा रहता है। व्यर्थ समय नष्ट किया करता है। यह देखो कीमती हार। उम्र भर की कमाई इसमे आ गयी। कितना मूल्यवान् है! कितनी बड़ी कमाई है यह!'

'शङ्कर! यह तुम्हारी पहली कमाई है न?'

'हाँ, माताजी, पहली ही बार मे लाखो की कीमत का यह हीरों का मूल्यवान् हार है।'

लाखो की कीमत का हार—राजा का मूल्यवान् हार—

इसमे तो एक-से-एक कीमती रत्न जडे हुए हैं। राजा कोई साधारण वस्तु नही रखते। इसका मूल्य पता नही क्या होगा। इसे बेचकर.........।

'हाँ माँ, यदि इसे बेच दे, तो हम पलक मारते ही आलीशान महल मे निवास कर सकते हैं, राजसी वस्त्र धारण कर सकते हैं, स्वादिष्ट भोजन ग्रहण कर सकते है, धनाड्यो मे हमारी गिनती हो सकती है। जरा देखो तो कितना खुबसूरत दृष्टिगोचर होता है। राजा ने कितना आकर्षक हार मुझे उपहार में दिया है। अहह !'

शंकर मिश्र गर्व से सिर ऊँचा किये खडे। उन्हे अपनी कविता का कद्रदान मिल गया था। अपनी कला कीपरख पर कौन हर्षित नही होता ?

'लेकिन बेटा ! यह पहली कमाई—यह मूल्यवान् हार तेरा या मेरा नही है। इस पर और किसी का अधिकार है।'

'क्यो, क्या यह मेरी काव्य-रचना का पुरस्कार नही है ?'

'हो तो है, पर मैं तेरे बचपन मे ही किसी दूसरे को दे चुकी हूँ।'

'मेरे कमाने से पूर्व ही कमाई किसी दूसरे को दे चुकी हो—यह कैसे हुआ ? यह किस का है माँ ?'

माँ थोडी देर के लिये चुप हो गयी।

आवेग, उद्वेग, व्यग्रता और मानसिक अस्त व्यस्तता ने उसे आगे कहने से रोक दिया।

अतीत की एक स्मृति उसके मानस-पटल पर उभर उठी।

'बेटा ! जब तू शिशु था, तो मेरे दूध नही उतरता था। तुझ पालने के लिये दाई रखनी जरूरी हो गयी। वह दाई मामूली स्त्री नही थी, उसे पैसे का लालच न था। वह किसी भी

'और मारने का काम कौन करेगा ? आश्चर्य से मौत नें पूछा--

'इन कालदूतो के चंगुल मे फँसे रहने के कारण वे अपनी आग मे स्वय ही जलते रहेगे । इस प्रकार जब वे मरणासन्न हो जायेंगे, तो क्लेश से शान्ति पाने के लिए मौत को स्वयं ही पुकारने लगेंगे ।'

'फिर पाप किसे लगेगा ?'

'इस अवस्था मे भला तुम्हे पाप क्यो लगेगा ? तुम तो पीड़ितो और मानसिक रागियो को आश्रय दिया करोगी ।'

'मेरा यह कार्य पाप या पुण्य, किस कोटि का माना जायगा ।'

तुम्हारा कार्य निष्ठुरता का न रहकर दया और सान्त्वना का बन जायगा ।

'तब तो ठीक है । यह कार्य पाप न रहे तो मैं करना स्वीकार करती हूँ ।' उसने कुछ हलकापन अनुभव किया ।

ब्रह्माजी ने नेत्र मूद अपने आत्मबल से आठ कालदूतों को जन्म दिया । वे बड़े विकराल रूप के थे । उनकी आकृति हिंसा के दूष्कम से मिलतो जुलती थी ।

'यह लो आठ कालदूत । ये तुम्हारी सहायता करेंगे । ब्रह्मा जी बोले ।

'इनका परिचय तो कराइये, पितामह !'

'यह देखो, वह पहला काल दूत असयम है । जो इसके कब्जे मे आ जायेगा, वह धीरे-धीरे स्वय तुम्हारे मुँह मे चला आयेगा । वह मनुष्य खानपान आचार व्यवहार, मद्यपान, जुआ खेलना तनिक सी बातो पर उत्तेजित होना आदि सवत्र विनाशकारी परिस्थतियाँ उत्पन्न करेगा और तुम्हारे मुँह मे आ जायगा ।

"और कौन-कौन हैं ये कालदूत ?"

"यह देखो हरी आंखो वाली ईर्ष्या, यह लाल नेत्रों वाला आवेश, यह मोटे पेट वाला लोभ, यह निष्ठुरता, यह अशिष्टता, यह तृष्णा और यह आलस्य हैं। ये आठो जहां रहेगे, वहां धीरे-धीरे मनुष्य स्वय ही तुम्हारे मुंह मे आजायेंगे।"

" अब मेरा कार्य हलका हो गया।" कहकर मृत्यु ससार में उतर आई।

●●

शत्रु के सद्गुणों की प्रशंसा करना शिष्टता का उच्च सोपान है।

"अहह! आज का यह शुभ्र चन्द्रमा बडा मधुर लग रहा है! कितना दीप्तमान है?"

"प्रिये! आज का यह चन्द्रमा वैसा ही दीप्तिमान है....."

'कैसा, पतिदेव ?" पुलकित, प्रमुदित ऋषि-पत्नी अरुन्धती ने साश्चार्य महर्षि वशिष्ठजी से पूछा।

"अरुन्धती, अभी जब तुम आज के इस शीतल चन्द्र की दीप्ति की प्रशसा कर रही थी, तो मेरे मन मे अनायास ही एक उपमा आ गई!" वशिष्ठजी ने अपनी धर्म-पत्नी को उत्तर दिया।

"कौन सी उपमा? बताइये न, आज के दीप्तिमान चन्द्र की तुलना आपने किसकी की है? चुप क्यो रह गये?"

हूँऊ......बुरा तो न मान जाओगी?"

"उपमा तो साहित्य का एक अलङ्कार मात्र है। इसमें बुरा मानने की भला क्या बात है ?"

'प्रिय, आज का यह चन्द्रमा वैसा ही दीप्तिमान है, जैसा विश्वामित्र का तप !"

इस उपमा को सुनकर सचमुच ऋषि-पत्नी अरुन्धती खिन्न हो गई।

'अरे तुम म्लान-मुख कैसे रह गईं !"

विश्वामित्र की प्रशसा महर्षि वशिष्ठ के मुँह से सुनकर अरुन्धती दु:खी हो गई। अनायास ही उसे अपने अतीत जीवन की एक कटु स्मृति याद हो आई। वह ऐसी भयानक घटना थी जिसे कोई भी माँ कभी भूल नही सकती। जो उसके गुप्त मन मे सदैव उभरने को तैयार रहती है।

वशिष्ठजी ने पुन: कहा—"अरे अरुन्धती ! तुम उपमा सुनकर चुप कैसे रह गईं ?"

"क्या वह अतीत का भयङ्कर पृष्ठ खुल जायेगे महर्षि ! अपने सौ पुत्रो को निर्ममतापूर्वक मार डालने वाले हत्यारे की ऐसी प्रशसा भला मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ! आखिर मा हूँ न ! एक माता का व्यथित हृदय लिए बैठी हूँ ! आप तो सासारिक माया मोह से ऊपर हैं, ममता के बन्धन मे नही बधे हैं, पर मैं तो वात्सल्य के कोमल तन्तुओ मे जकडी माँ हूँ। इस हत्यारे ने मेरे पुत्रों की हत्या कर डाली है। हाय, जीवन मे क्या छोड़ा है अब ?"

ओह ! तो यह बात है ठीक भी है। तुम्हारे हृदय पर बडा मानसिक आघात लगा है। विश्वामित्र ने उत्तेजना-वश वह अमानवीय दुष्कर्म डाला था.........पर.....''एक बात है.... किसी व्यक्ति के सद्गुणो का मूल्याकन करते हुए हमे व्यक्तिगत

वैमनस्य से ऊँचा उठना चाहिये। यह मानता हूँ कि विश्वामित्र ने क्षणिक भावावेश मे आर हमारा समस्त परिवार ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है, पर ·· ··· उसमे कुछ सद्‌गुण भी हैं··· विशिष्ट महानता भी है ·· इस विशिष्टता की हमे कद्र करनी चाहिये। शत्रु मे भी यदि दिव्यगुण हो, तो उनकी प्रशसा करनी चाहिये।'

अरुन्धती सहसा उत्तर नही दे सकी।

फिर हल्के से व्यग्य-मिश्रित स्वर मे बोली—'महर्षि यदि ऐसा है ही तो आप उन्हे 'ब्रह्मर्षि' की उपाधि क्यो नही दे डालते ? वह यही तो आपसे कहलवाना चाहते है। इसी का तो सारा झगडा है !'

महर्षि वशिष्ठ व्यग्य व्यथित हो गये।

एक कटु सत्य की ओर निर्देश किया गया था। उनपर जो आरोप लगाया गया था, वह सच ही था।

"उन्हे ब्रह्मर्षि ' कह दीजिए और उनका सारा रोष समाप्त हो जायेगा। 'बस इतनी सी बात है।"

महर्षि वशिष्ठ चुप ! जैसे कोई गहरी बात सोच रहे हो। "महर्षि, क्या सोचने लगे। बोलते क्यो नही ? क्या इसे मेरी अशिष्टता मानकर मौन हैं ?"

वशिष्ठ को बोलना ही पडा, भद्रे ! सद् गुणो की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा करना मनुष्य का कर्तव्य है। विचार भी संक्रामक है। वे वायु मण्डल मे तरगो की भाति तैरते रहतें हैं। उनकी गति वायु की भाँति तीव्र है। यदि हम सद्‌गुणो की प्रशसा न करेंगे, तो दुर्गुणो का गन्दा वातावरण स्वत फैलता जायेगा। समाज का अहित होगा, इसलिए स्वस्थ वातावरण की सृष्टि के लिए सद्‌गुणो का चिन्तन आवश्यक है।"

"पर, विश्वामित्र तो अनेक दुर्बलताओं के घर है।"

"विश्वामित्र में वस्तुतः तो एक ही दोष है। अन्य दुर्बलतायें तो उसी के इदगिर्द पनपने वाली शाखा-प्रशाखाएँ है।"

"क्या मैं जान सकती हूँ, कौन-सा दोष है, वह ?"

"अहङ्कार ! वे अपने तप के समान किसी दूसरे का तप नही मानते हैं। जो उनके तप श्रेष्ठता स्वीकार नही करता, उसी से बे रुष्ठ हो जाते हैं।"

मात्रा अहंकार ही उनका दोष है ?"

"हाँ, अरुन्धती अहङ्कार से ही ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और विक्षोभ उत्पन्न होते हैं और उसी से प्रेरित होकर मनुष्य दुष्कर्म करने लगता है।"

"सच ! तो यह आपके मनोभाव है ! एक हत्यारे को भी आप अहङ्कार-रहित होने पर महान् पुरुष की कोटि में रखते हैं ?" अरुन्धती ने वक्र भाषा का प्रयोग किया।

"मनुष्य को चाहिये कि दुष्टों से बचकर साधु पुरुषों के साथ रहे। सद्‌गुणों की प्रशंसा करे। मैं विश्वामित्र के दुर्गुण (अहङ्कार) को न देखकर उनके सद्‌गुणों, तपश्चया, कष्ट सहिष्णुता को देख रहा हूँ। तभी मेरे मुँह से निकल गया कि आज का चन्द्रमा वैसा ही दीप्त मान हो रहा है, जैसे महर्षि विश्वामित्र का तप।"

"अब समझी आपका दृष्टिकोण ! आपने अपने पुत्रों के हत्यारे में भी सद्‌गुण ही देखे है !"

संयोग की बात महर्षि विश्वामित्र, महर्षि वशिष्ठ की कुटिया के पीछे छिपे यह सम्वाद सुन रहे थे। वशिष्ठ जी कभी उनकी प्रशंसा न करते थे। उन्हे प्रसन्न करने के लिए उन्होंने भारी तप किया था। अनेक प्रकार से कष्ट सहे थे। समस्त विश्व

उनके तप की श्रेष्ठता स्वीकार करता था किन्तु वशिष्ठ मौन रहते थे। रोष और उत्तेजना मे आकर उन्होने वशिष्ठ जी के पुत्रो की हत्या तक कर डाली थी, किन्तु समुद्र जैसे गम्भीर वशिष्ठ के मुँह से न तो प्रशसा के शब्द निकले और न क्लेश की आहे ! अत वे वशिष्ठ को अपना शत्रु समझते थे और आज उन्हे मारने आये थे। ब्रह्मर्षि' बनने की अदम्य और उत्कट लालसा उन्हें उद्विग्न बनाये हुए थी।

वार्तालाप सुनकर उनका मन—कमल खिल उठा। अहह ! आखिर वशिष्ठ जी ने उनके तप की श्रेष्ठता स्वीकार कर ही ली ! उन्हे ऐसा लगा कि वे 'ब्रह्मर्षि बन गये हैं। उनका अहकार तृप्त होगया, उद्विग्नता जाती रही। शान्ति और सतुलन की शीतलता ने उनको मस्त कर दिया।

अब उनका विवेक पूरी तरह सक्रिय था। न्याय भावना उभर आई थी। विवेक की दृष्टि से देखने से विश्वामित्र को अपनी भयङ्कर भूल का ज्ञान हुआ। उन्होने जाना कि द्वेष से नही बल्कि न्याय से प्रेरित होकर ही वशिष्ठ उन्हे ब्रह्मर्षि घोषित नही करते थे।

अब विश्वामित्र की दृष्टि मे वशिष्ठ एक न्याय-दृष्टि रखने वाले कर्त्तव्यनिष्ठ सज्जन मित्र बन गये।

विश्वामित्र अब कुटिया के पिछे न रह सके। पश्चात्ताप के वशीभूत हो, पिछवाडे से हट कर यकायक अरुन्धती और वशिष्ठ के सम्मुख उपस्थित हो गये। महर्षि वशिष्ठ के चरणो पर गिर कर अपने पाप, हत्याएँ, अपराध, और अविवेक के लिए क्षमा मांगने लगे।

जिसे अरुन्धती हत्यारा कह रही थी, वही दुष्ट उनके पति के चरणो पर गिर कर क्षमा याचना कर रहा था ! पश्चात्ताप

के गर्म आँसू वशिष्ठजी के पावों पर टप-टप कर गिर रहे थे। वशिष्ठ जी को अब पूरा विश्वास हो गया कि विश्वामित्र का अहङ्कार दूर हो गया था।

अहङ्कार गलित हो जाने के बाद पशुत्व और निकृष्टता का स्तर कहाँ रहता है? मन सही दिशा में बदला, तो मानों सब कुछ बदला।

वशिष्ठजी ने 'ब्रह्मर्षि' कह कर विश्वामित्र को हृदय से लगा लिया। विश्वामित्र जब भीतर से बदले, तो उनका बाहरी स्तर बदलने में क्यों कठिनाई होती? दर्प और द्वेष से जो चाहते थे, वह उन्हे नही मिला, पर हृदय-परिवर्तन होते ही सारी बाधायें दब गईं।

विश्वामित्र सर्वत्र 'ब्रह्मर्षि' के नाम से पुकारे जाने लगे।

●●

वचन का पालन भारतीय शिष्टता का अंग है

दरभङ्गा के एक घर में बच्चे का रुदन सुनायी पड़ रहा है। उसे चुप करने के प्रयत्न बेकार हो रहे है। माँ-बाप तथा निकट खड़े हुए सम्बन्धी उस करुण रुदन से व्यथित है।

नन्हें से शिशु का रुदन किसे दुखित नही करता! सभी उसे चुप कराने को प्रयत्नशील है, किन्तु बालक की ॐ ॐ ॐ हृदय पर चोट कर रही है।

'क्या बात है? बच्चा क्यों चुप नहीं हो रहा है?'

सब ओर से यही प्रश्न है और उसका उत्तर....शिशु को दूध पिलाने के निष्फल प्रयत्न। शिशु की माँ के स्तन से दूध नहीं उतर रहा है।

'ओफ! तो यह भूखे पेट रो रहा है। बिना माँ के दूध के शिशु बिलख रहा है।

नवजात शिशु के लिए माँ का दूध ही जीवन का आधार है। यदि वह जीवनदायिनी अमृत-तुल्य महौषधि नहीं, तो वह क्यों कर चुप रह सकता है? शिशु के पेट मे किसी का दूध तो पहुँचना ही चाहिये। माँ टुकुर-टुकुर शिशु को निहार रही है, फिर अपने सूखे दूध विहीन स्तनो को धिक्कार रही है। हाय! वह अपने शिशु को दूध पिलाने मे असमर्थ है। क्या करे अब!

बकरी का दूध दिया जाय!

बकरी का दूध भी माफिक न आया। बच्चा रोता रहा। गाय का दूध दिया गया, पर वह भी बच्चे ने उल्टी कर दिया।

डाक्टर चिन्तित हो बोले, 'यह बोतल से दूध न पियेगा। यदि बच्चे का जीवन चाहते है, तो जल्दी किसी धाय का प्रबन्ध कीजिए। यह स्तन से ही दूध पियेगा। बोतल का दूध इसके लिए बेकार सिद्ध हो रहा है। बिना धाय के न बचेगा यह!

अब विषम समस्या उपस्थित हुई! है कोई औरत जो अपना दूध पिलाकर बच्चे के प्राण बचाये! किसी प्रकार कहीं से भी किसी भी मजदूरी पर धाय आनी चाहिये।

पर धाय का प्रबन्ध कैसे हो? उसे इतनी जल्दी कैसे लाया जाय? कौन स्त्री अपने बच्चे के हिस्से का दूध थोड़े से पैसो के बदले दूसरे के बच्चे को पिलाये?

दाम पर अपना स्नेह बेचने को तैयार न हुई। उसने माता के समान अत्यन्त प्रेम से तुझ अपना दूध पिला-पिलाकर पाला था। तभी मैने उसे वचन दिया था कि यह बच्चा जीवित बच गया और कमाई करने लगा, तो जो पहली कमाई लावेगा, सो तेरी होगी'

ओह ! तो यह रहस्य आज मुझे विदित हुआ।

'यह हार तेरी उस धाय माँ का है! उसे ही मिलना चाहिये।'

दाई की ढूँढभाल हुई। 'मेरा शकर कमाई करने लगा ?' यह सुनकर वह घर आयी।

'यह हार तुम्हारे शकर की पहली कमाई है। बहिन, इसे स्वीकार करो।'

'लेकिन मैं हार लेकर क्या करूँगी ?' दाई ने लेने से इन्कार किया।

'कुछ भी करना। मै तो वचन का पालन करूँगी। वचन को पलटने मे भारतीय नारी का गौरव जाता है।'

'मै नही लूँगी। मुझे हार पहनना थोड़े ही है। आप इसे वापिस लीजिये।'

लेकिन शकर मिश्र की माँ नही मानी। कहने लगी--'सत्कर्मो की पुण्य प्रवृत्ति कभी कभी ही पैदा होती है। दूसरे का ऋण उतारने का उत्साह भगवान की शुभ प्रेरणा से ही मिलता है, अन्यथा मनुष्य लालच के वश मे होकर सदा ही स्वार्थ और पाप की बात सोचने मे दिन गुजारता है। इसलिये परमार्थ की पुण्य प्रवृत्तियाँ जब कभी उत्पन्न हो, तो उन्हे कार्यान्वित करने के लिये साहस का प्रयोग कर डालना चाहिये। बहिन ! इस पहली

कमाई पर तुम्हारा ही नैतिक अधिकार है। इसे ले लो! इससे मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी।'

अन्त मे विवश होकर वह मूल्यवान् हार दाई को स्वीकार ही करना पडा। वह भी परोपकारी वृत्ति की स्त्री थी।

'भगवान् ने इस हार के माध्यम से मुझ से कोई पुण्य कार्य करवाने की योजना सोच रक्खी है।' वह सोचने लगी, 'सत्कर्म करने मे परिस्थितियाँ नही, आदमी की भावना ही प्रधान होती है। परोपकार की इच्छा प्रबल है, तो मुझ जैसी निर्धन और आर्थिक दृष्टि से असमर्थ दीखने वाली स्त्री भी कुछ स्थायी, कार्य कर सकती हूँ—आसाधारण और आश्चर्यजनक परिणाम पैदा कर सकती हूँ—श्रेष्ठ सत्कर्म आदमी से हमेशा नही बन पडते। उनमे कितनी ही बाधाएँ आ खडी होती हैं। मनुष्य का लालची और स्वर्थी मन कम बाधक नही है। ऊँच-नीच, सौ तरह का आगा-पीछा निकालकर यह सोचता है कि अभी तो अमुक आवश्यक काम पूरे करने को शेष पडे हैं। पहले उन्हे पूरा कर ले, दान-धर्म परोपकार के काम तो पीछे कभी भा हो सकते हैं। अभी क्या जल्दी पडी है? इस प्रकार मन के धोखे मे आकर मनुष्य सत्कर्म से वञ्चित रह जाता है। मैं ऐसा नही करूँगी। नही, नही, मैं तुरन्त इस हार को बेचकर उसके रुपये से कुछ परोपकार का काम शीघ्र करूँगी। शकर मिश्र की पुण्य की कमाई किसी अच्छे काम मे ही लगेगी।'

दाई ने उस हार का मूल्य जंचवाया, तो सचमुच वह डेढ लाख रुपये की कीमत का बैठा

डेढ लाख! इतना अधिक! वह हार एक बार फिर शकर की माता को लौटाने आयी। 'मै परिश्रम के बिना यह धन न लूँगी'—वह बोली।

मामूली आदमी डेढ लाख का हार जरूर स्वीकार कर लेता।

पर शकर मिश्र और उसकी माता बोले, इस रुपये पर तुम्हारा ही पूर्ण अधिकार है। जो चाहो करो। हम तो वचन से लौटाने को तैयार नही है।'

दाई ने उस धन से सूखे प्रदेश मेदरभगा के समोप पानी का एक बडा तालाब बनवा दिया है।

आज भी यह दरभगा में 'दाई का तालाब' के नाम से मौजूद है।

पवित्र ते वितत ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत ।
अतप्तनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥

(ऋग्वेद ९।८३।१)

'यह ससार शुभ मङ्गलदायक और मधुर पदार्थों से भरा पडा है, किन्तु वे मिलते उन्ही को है जो तप के द्वारा उनका मूल्य चुकाने को तैयार रहते हैं। विवेकपूर्ण तप से विद्या-धन आदि की प्राप्ति होती है।'

●●

जैसा खाये अन्न वैसा बने मन

'पिताजी, महात्मा जी द्वार पर खडे है? आपसे कुछ कहना है?'

'कौन से महात्मा जी?' पिता ने उत्सुकता से पुत्र से पूछा।

'वही बड़े त्यागी महात्मा, जो तीन दिन पहले हमारे यहाँ धर्मोपदेश करने आये थे। अरे, कही वे ही तो उस चोरी से सम्बन्धित नही हैं?'

'पुत्र ने उत्तर दिया, 'पिताजी, वे बडे लज्जित से द्वार पर खडे हैं। कहते हैं अपने पिताजी से मिलने का समाचार कहो। वे किसी बड़े जरूरी काम से आपसे मिलने का आग्रह कर रहे है।'

'लज्जित से है ?'

'जी, उनके नेत्र लज्जा से पृथ्वी पर गडे हुए हैं। उनकी शक्ल सूरत देखकर मालूम होता है कि वे मन ही मन बड़े दुःखी हैं।'

इधर हम कौन से सुखी हैं। तीन दिन से अपने यहाँ से खोये हुए सोने के हार को खोज रहे हैं। हमने महात्मा जी की खातिर की उन्हे भोजन कराया, रात्रि में शयन कराया, पर वे बिना बताये ही सुबह को घर से गायब हो गये। उसी दिन से हमारा सोने का हार गायब है। गेरुवा वस्त्रो मे भी चोर छिपे होते हैं।'

'हो न हो, कही महात्मा जी ही के मन मे लोभ तो नहीं आ घुसा ?

'यह संभव तो नही है। पर आदमी आखिर हाड माँस का पिण्ड ही है। कौन कह सकता है कि महात्मा चोरी नही कर सकते ? किसी न किसी क्षण मनुष्य मे कमजोरी आ सकती है।

'तो महात्मा जी को अन्दर बुला लाऊ ? क्या आज्ञा है आपकी ?' पुत्र ने फिर पूछा —

'ले ओ ! देखे, वे क्या कहना चाहते हैं ?'

पिता की आज्ञा पाकर पुत्र बाहर चला गया। द्वार पर वही त्यागी महात्मा खड़े हुए थे, जो तीन दिन पूर्व उनके यहाँ ठहरे थे। उनका उपदेश सुनने के लिए शहर के असख्य लोग आये थे। खूब भजन कीर्त्तन हुआ। बीच बीच मे उनका धार्मिक

प्रवचन भी चलता रहा था। समां बध गया था गृहस्थों को बडा सन्तोष हुआ था यह सब देखकर! सभी ने अपने जीवन को धन्य समझा।'

उसको भावनाओं में उफान आया। उसने अपने को बडा धन्य समझा जो इतने बड़े महात्मा ने उसका घर पवित्र किया था। उन्हे अपने घर मे ठहरा लिया।

तीन दिन तक त्यागो महात्मा का धर्मोपदेश उनके यहाँ रहा। धर्म और सद्ज्ञान की गङ्गा यमुना प्रवाहित होने लगी। सभी ने सत्संग का लाभ उठाया ।

फिर यकायक एक दिन वे सुबह को गायब हो गये। उसी दिन सोने के हार के गायब होने की बात मालूम हुई। चोर की खोज मच गई 'हाय, किस दुष्ट ने हार चुरा लिया ?'

यही सोच विचार उस गृहस्थ के मन मे चल रहा था। मन मे बडा विक्षुब्ध था वह! थोडी देर बाद गृहस्थ दरवाजे पर आया। देखा, वही महात्मा शर्माये से उनके द्वार पर खड़े है। उनके नेत्र नीचे है, जैसे उनसे कोई अपराध हो गया हो! कुछ कहना चाह रहे है,पर शब्द उनके मुँह पर आकर रह जाते हो! मन का अन्तर्द्वन्द चेहरे पर उभर रहा था ।

'कहिऐ, महात्मा जी, कैसे दर्शन दिये ? चित्त तो प्रसन्न है न ?'

क्षमा कीजिए, मुझ से एक बड़ा अपराध हो गया। उसी के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करना है।

'आपसे.......और अपराध हो गया। त्यागी महात्मा से अपराध! यह तो असंभव है! क्या कह रहे हैं आप ? समझ में नही आ रहा है।'

'नही यह सभव है । मुझ जैसे त्यागी धर्मोपदेश से भी पाप हो गया ! हाय, मुझ अपने ऊपर बडी आत्मग्लानि हो रही है । हर मनुष्य से गलती हो सकता है ।'

यह कहते कहते महात्मा जो रोने लगे । गृहस्थ को उन पर बडी दया आई । एक सत्पुरुष को दुखो देख वे द्रवित हो उठे । उन्हे मन मे क्षोभ हुआ ।

आप इतने दु खी क्यो होते है, महात्मा जी ! गृहस्थ बोले, 'मेरे मन मे आपके प्रति लेशमात्र भी घृणा नही है ।'

महात्मा जी ने दु:खित मन से अपनी झोली मे से वह सोने का हार निकाला ।

लडका चिल्ला उठा, पिता जी, यही है हमारा वह खोया हुआ सोने का हार। मिल गया। अहह ! नुकसान दूर हो गया ।' वह खुशी से नाच उठा ।

उधर महात्मा जी आत्मग्लानि से मरे जा रहे थे । गृहस्थ ने वह हार ले लिया । मुक्त कठ से क्षमा करते हुए बोला, 'महात्मा जी, मैं आपको क्षमा करता हूँ । गलती इन्सान स होती है । आपने अपनी गलती के प्रति दु ख प्रकट कर दिया, यही काफी है ।'

कुछ देर शान्ति रही । ऐसा लगता था कि महात्मा जी कुछ कहना चाह रहे थे ।

गृहस्थ को बडा आश्चर्य हुआ कि इतने त्यागी और विद्वान होते हुए भी क्यो उन्होने हार चुराया ? क्यो उसे लौटाने आये ?

महात्मा जी, जाने लगे तो गृहस्थ ने उन्हे आदर पूर्वक रोका । उसके मन मे जो गुत्थी थी उसे सुलझाने के लिए

उसका मन विद्रोह कर रहा था। वह शका निवारण करना चाहता था।

'ठहरिये त्यागी जी, में मन एक शका पैदा हो गई है। कृपा कर उसे शान्त करते जाइये। आप जैसे विद्वान से ही शका समाधान हो सकता है। मैं जानता हूँ कि आज आपका मन दुःखी है फिर भी पूछने की इच्छा बलवती हो उठी है विना पूछे मन नहीं मानता है।

'कहिए क्या पूछना चाहते है आप ? शका समाधान करूँगा।'

'क्षमा करें, इतने त्यागी और विद्वान होते हुए भी आपने भला मेरे घर से हार क्यो चुराया और फिर क्यों लौटाने आये ? यह उलझन मुझे परेशान किये हुये है।'

उन्होनें एक गर्म उसास भरी। पछताते हुए कहने लगे—

'क्या बताऊ भाई। यह बुरे अन्न का कुप्रभाव था।'

'सो कैसे ? बात समझ मे नही आई ? स्पष्ट कीजिए इसे ? अन्न के कुप्रभाव का हार की चोरी से भला क्या सम्बन्ध हो सकता है ?'

महात्मा भारी मन से धीरे-धीरे कहने लगे—

'अन्न का मन पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन ! ईमानदारी के अन्न से सद्प्रवृत्तियां उभरती है, जब कि बेईमानी के अन्न से कुप्रवृत्तियाँ। अच्छे से अच्छे इन्सान पर बुरी कमाई का खराब असर अपना कुफल दिखा सकता है। हाय, मैं उसी का शिकार बना !'

'उस दिन क्या हुआ था ? कृपया वातावरण स्पष्ट कीजिए।'

'मुझे बाद में मालूम हुआ।'

'क्या मालूम हुआ ?'

'जिस आदमी के यहाँ । मैंने भिक्षा ली थी, संयोग से वह एक चोर निकला। उसका अन्न भी चोरी से ही लाया हुआ था। चोरी के अन्न को खाने से मेरी बुद्धि मे चोरी के कुसस्कार उत्पन्न हो गये। मैंने इन्ही कुसस्कारो के प्रभाव मे आकर आपके सोने के हार की चोरी कर डाली थी। बुरे अन्न का खाने से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी।'

'ओह! तो यह था चोरी के अन्न का बुरा प्रभाव! फिर आप यह हार कैसे लौटाने आये?'

'सौभाग्य ही समझ लीजिये। इसके बाद मुझे दस्त शुरू हो गये और वह चोरी का अन्न बाहर निकल गया। तब फिर सुबुद्धि लौटी और अपने द्वारा होने वाले पाप का ज्ञान हुआ। हाय, वह चोरी का अन्न! उसी की वजह से त्यागी होकर भी मैं आपके यहाँ से हार चुरा लाया! अन्न से मन बनता है। कुधान्य खाने से सदा बचना चाहिए। उसी से पाप की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।'

'अब समझा महात्मा जी, जब आप जैसे सन्यासियो पर बुरे अन्न का ऐसा कुप्रभाव पड़ सकता है, तो हम जैसे गृहस्थो पर तो और भी हानिकारक असर पड़ सकता है।'

'वही मनुष्य सुखी है, जो ईमानदारी के सूखे टुकड़े तक खाता है। बेईमानी से कमाये अन्न का खाकर चोरी, हिंसा, झूठ, कपट, भ्रष्टाचार, धोखेबाजी की कुप्रवृत्तियाँ पैदा होती हैं। अन्न का सम्बन्ध धर्म से है। जो अन्न सच्चे परिश्रम से कमाया गया है, उसी से स्वस्थ और निरोग रहता है और सुमति विकसित होती है। पाप और पुण्य की स्थिति भोजन की पवित्रता पर निर्भर है। पाप की कमाई से रोग, शोक और चिन्ता उत्पन्न होती है। धर्म का वास्तविक ज्ञान सच्चाई से

परिश्रम कर जीविका उपार्जन से ही होता है। भोजन बुद्धि का निर्माता है। पवित्र मार्गो द्वारा कमाये भोजन से आत्मबल, धर्माचरण और सद्‌गुणो का विकास होता है।'

'ओह ! आज तो बड़ा ही अमृतमय उपदेश मिला महात्मन्।'

गृहस्थ महात्मा के चरणो पर गिर पडा।

ममता-मोह के बन्धन का बढ़ता हुआ विचित्र प्रवाह

प्रथम जीवन-झाँकी

जीवन से विरक्त भगवद्‌भक्ति में लगे गेरुवाँ वस्त्र धारण किये एक सन्यासी नदी मे स्नान कर पर्णकुट मे आते है। उनके शरीर पर नग्नावस्था को ढकने मात्र के लिये एक छोटी-सी जीर्ण-शीर्ण कौपीन मात्र है। वस्त्र नाम की किसी चीज से उन्हे माया-मोह नही है। वैरागी को सासारिक वस्तुओ से क्या लगाव ! उनके गीले शरीर से पानी अब भी टपक रहा है।

किन्तु उनकी कौपीन अब इतनी जर्जर अवस्था में है कि वे कठिनता से अपना नगापन ढक पाते है। कौपीन बदलकर नया ले लेने की बेहद जरूरत है, लेकिन संसार के माया, ममता और मोह से छूटे हुए साधु का ध्यान उस ओर नहीं है। अपने शिष्यो को विद्या-दान देना, उपदेश करना, साधन, पूजन, स्वाध्याय मे लगे रहना ही उनके जीवन का क्रम है। वे अपना अधिकांश

समय शिष्यों के जीवन निर्माण मे ही बिताते है। उनके शिष्य उनकी वैरागी वृत्ति से चिन्तित रहते हैं। वे चाहते हैं कि उनके गुरु को जीवन बिताने की सभी आवश्यक वस्तुएँ मिलती रहे, जिससे वे अधिक दिनो तक अध्यापन-कार्य करते रहे।

शिष्य गुरुजी की नग्नावस्था देखकर मन-–ही-मन दुखी है। वे प्राय सोचा करते हैं कि कैसे गुरुजी की सेवा करें। फटी कौपीन देखकर उनको बडा विक्षोभ होता है। क्या करे कि गुरु की मर्यादा बनी रहे ?

उस दिन शिष्य अपना प्रस्ताव इन शब्दो मे गुरुजी की सेवा मे रखते है—

एक शिष्य—(विनम्र और आदर भरे स्वर मे) गुरुदेव ! हम शिष्यो के मन में आपके प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति है। कई बार हम सबने आपके सामने एक प्रस्ताव रखने की बात सोची, पर रुष्ट होने के डर से न कह सके।

दूसरा शिष्य—(साग्रह) गुरुदेव ! सचमुच हम सब की तरफ से आप कुछ निवेदन करना चाहते हैं, पर आपको नाराज करने के भय से कुछ निवेदन करते नही बनता। आज तो आप को हमारा विनम्र निवेदन सुनना ही होगा….आज्ञा मिले तो कुछ निवेदन करे ……..(चरणो पर गिरकर) पैर पकडते हैं। विरक्त साधु शिष्यो को को पुत्रवत् प्यार करते हैं। वे दयार्द्र हो उठते हैं।)

गुरुदेव—(दयार्द्र स्वर मे हर्षित मुद्रा) अच्छा ……….अच्छा !! तुम लोग नही मानते, तो कहो, क्या कहना चाहते हो ? मैं माया मोह से दूर हूँ। सासारिक बन्धनो मे नही फँसना चाहता हूँ… दुनियाँ छोड़ चुका हूँ। कुछ ऐसा प्रस्ताव न रख देना कि मैं दुनियाँ के प्रलोभन मे फिर फँस जाऊँ….यह माया बड़ी ठगनी है। तरह-तरह से अपने फन्दे फेकती रहती है। मैं अपने शिष्यो

को पुत्रवत् प्रेम करता हूँ। उनके मन की बात सुनना मेरा कर्तव्य हो जाता है।

पहला शिष्य—(चुपके से दूसरे से) 'तुम्ही कहो ! मुझे तो भय होता है। कि कही गुरुदेव प्रस्ताव सुनकर नाराज न हो जाँये।'

दूसरा शिष्य—'अच्छा, लो मैं ही निवेदन कर देता हूँ।'

पहला शिष्य—'गुरुदेव ! यह जो कह रहे हैं, यह हम सब की ओर से समझियेगा।'

दूसरा शिष्य—गुरुदेव, आपके पास नग्नावस्था ढकने को केवल एक ही फटी जीर्ण कौपीन है। अब वह इतनी जीर्ण हो चुकी है कि तन ढकने मे असमर्थ है। उसमें इतनी सामर्थ्य नही कि शरीर रक्षण का कर्तव्य निभा सके। वह तो वस्त्र का उपहास मात्र है !

पहला शिष्य—(आदर सहित) आपके पास केवल यही कौपीन है। उससे स्नान करने, उसे साफ करने, फिर पहनने में आपको बडा कष्ट होता है। आपकी यह स्थिति नही देखी जाती। यदि एक और कौपीन हो, तो उसे धारण कर गन्दी कौपीन को साफ कर लिया जाया करे। सफाई की दृष्टि से आपके पास दो कौपीन का होना आवश्यक है।

दूसरा शिष्य—गुरुदेव ! यह जरूरत देख हम एक और कौपीन आपके लिए पहले से ही ले आये है। कई बार इसे भेट करने का साहस किया, किंतु संकोच और भय के कारण प्रस्तुत न कर सके। (कौपीन दिखाता है) देखिये, यह नयी कौपीन है। विशेष रूप से आपके लिये लाये हैं। (अनुनय करते हुए) लीजिये इसे धारण कर लीजिए। हमें कदापि निराश न करें। बडी आशा और श्रद्धासहित यह तुच्छ भेट प्रस्तुत कर रहे है।

गुरुदेव—(कौपीन हाथ मे लेकर) बच्चा! मैं विरक्त साधु हूँ। ससार को त्याग सन्यासो का निर्मोह वैरागी जोवन व्यतीत कर रहा हूँ। त्याग जीवन का एक आवश्यक धर्म हैं, जावन शोधन का राज मार्ग है। ससार से विरक्त होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

पहला शिष्य—गुरुदेव! आप तो सब कुछ छाड़ चुके हैं हम आपका त्यागमय जीवन देखते रहते हैं आपने ही तो हमे सिखलाया है कि इन सभी बातो का त्याग किया जाय, जो मनुष्य के लिए अशुभ हैं। बुरी चीजो का त्याग करने पर ही तो शुभ की प्रतिष्ठा होगी।

दूसरा शिष्य—लेकिन एक दूसरी कौपीन रखना तो अत्यन्त आवश्यक है। मलमूत्र विसर्जन मे भी पहनी हुई कौपीन अपवित्र हो सकती है। स्वास्थ्य और पवित्रता की दृष्टि से दूसरी कौपीन लेनी जरूरी है। हम पर दया करे और इसे स्वीकार करे।

गुरुदेव—बच्चो! आदमी का यह जीवन एक पगडडी है और यह पगडडो बडो लम्बी है। ससार का मोह बडा विचित्र है। मोह और ममता से बचने के लिए नित्य सावधानीके साथ त्याग करना पडेगा ही। मेरे लिये तो एक हो कौपोन बहुत है। व्यर्थ माया-मोह बढाने से क्या लाभ!

(दोनो शिष्य गुरुदेव के पाँव मे लोटने लगते हैं उन्हें। दया आ जाती है। पुत्रवत् वात्सल्य के कारण वे शिष्यो के प्रेम पूर्ण आग्रह को स्वीकार कर कौपीन जैसी तुच्छ भेंट को स्वीकार कर लेते हैं। दया परमात्मा का गुण है। परमात्मा का यह दिव्य गुण उन्हे अभिभूत कर लेता है।

गुरुदेव—अच्छा, अच्छा तुम दोनों का इतना प्रेमपूर्ण आग्रह है, तो स्वच्छता की दृष्टि से मैं इस कौपीन को ले लेता हूँ। इसे

धारण करूंगा, तब तक तुम पुरानी कौपीन को धोकर साफ कर दिया करना। तुम्हारा मन रखना है।

दोनो शिष्य—(हर्षित होकर) अहह ! गुरुदेव ने हमारी तुच्छ भेट स्वीकार करली। एक कौपीन धोकर सुखा दी जायेगी, तब तक आप दूसरी धुली हुई पहिन लिया कीजियेगा। गुरुजी ! हम प्रेम से यह चीज लाये थे ! अब तीर्थयात्रा पर जारहे है। बहुत दिनों में वापस लौटेंगे हमें यह सतोष है कि हमारे गुरुदेव ने हमारी तुच्छ भेट स्वीकार कर ली है।

गुरुदेव—अच्छा, तुम लोग तीर्थ यात्रा पर जा रहे हो। खैर, यह भी जरूरी है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। यहाँ और भी चेले है, तब तक वे देख-रेख करेंगे। तुम जल्दी ही वापस आने का प्रयत्न करना।

(दोनो शिष्य आदर सहित प्रणाम कर चले जाते है। गुरुदेव अब पर्णकुटि मे अकेले है। गुरुजी नयी कौफीनी को एक ओर सावधानी से रख लेते हैं।)

समीप के बिल से चूहे निकले और नयी कौपीन को कुतर-कुतर करने लगे। एका एक संन्यासी का ध्यान उधर गया, तो विक्षुब्ध हो उठे। कितने स्नेह से भेट स्वरूप दी हुई चीज है और ये दुष्ट चूहे उसी को काटने लगे!

गुरुदेव—(चिढकर क्रोध भरे स्वर में) नयी कौपीन लिए देर नही हुई और दुष्ट चूहो ने उसे निममता से कुतर-कुतरकर नष्ट करना शुरू कर दिया। बेरहम चूहे कपडा नही छोड़ते। जब देखो, तब कपड़े को काटने लगते हैं। कुटिया मे तनिक सा कपड़ा आते ही एक नयी मुसीबत शुरू हो गयी मैंने शिष्यो से पहले ही कहा था कि मुझे दूसरी कौपीन नही चाहिये। मेरे लिये एक ही ही यथेष्ट है। मैं मोह के बन्धन मे नही बंधना

चाहता, पर क्या करूँ ? वे बुरी तरह हठ करने लगे, तो उनका मन रखने के लिये यह कौपीन रख ली थी।

(एक शिष्य का प्रवेश)

गुरुदेव—देखो श्रीधर ! कौपीन लिये देर नही हुई कि चूहो की नयी मुसीबत शुरू हो गयी। कम्बख्त किस बे रहमी से नयी कौपीन को काट रहे हैं। यह कितनी उपयोगी है। बिल्कुल नयी है, वह बात भी तो मूढ नही समझते। बस, कुतरे जायेंगे....मैने पहले ही कहा था कि मुझे दूसरी कौपीन-ओपीन नही चाहिए। वैरागी साधुओ को माया-मोह मे क्या काम !

श्रीधर—गुरुदेव ! आप ठीक कहते हैं। सचमुच नयी कौपीन पर ही इन्होने अपने तीखे दाँत गडा दिये हैं। लिये देर नही हुई और इन्होने परेशान करना प्रारम्भ कर दिया....लेकिन....इसे आप फैक क्यो नही देते ?

गुरुदेव—फेक क्यो नही देते ? यह क्या कहा तूने ! अरे फेक दूँगा, तो हेमेन्द्र और सत्येन्द्र की प्रेम पूर्वक दी हुई भेट की अवज्ञा जो होगी। वे लोग भला क्या कहेगे कि गुरुजी ने हमारी श्रद्धा और स्नेह की वस्तु को फेक दिया ?

श्रीधर—चूहो की परेशानी तो भविष्य मे और भी बढती ही जायगी। क्या किया जाय ? एक तरीका है—आप कहे तो कही से एक बिल्ली ले आऊँ।

गुरुदेव – हाँ, हाँ, ठीक है। बिल्ली के डर से कुटिया के सब चूहे बिलो मे बैठे रहा करेंगे। बाहर निकल कर वस्त्रों को कुतरने की हिम्मत न होगी। दुष्टो को भय दिखाकर दबाना चाहिए। अभी जा—एक तगडी सी बिल्ली ले आ। देर न कर जल्दी जा। बिल्ली आ जाने पर फिर ये चूहे कुटिया की किसी भी चीज को नष्ट न कर सकेंगे बिलो मे पड़े सडा करेंगे....।

श्रीधर—जो आज्ञा, मै जल्दी ही बिल्ली लाता हूँ।

(चला जाता है)

गुरुदेव—(अपने आप) शठ को शठ से ही दबाया जा सकता है। ये चूहे बिल्ली से ही वश मे आयेगे। इस समय बिल्ली ही इनके दमन का एक उपाय दीखता है।

(शिष्य का बिल्ली लेकर प्रवेश)

श्रीधर—लीजिए गुरुदेव, आपकी आज्ञा हुई और यह बिल्ली हाजिर है। देखिए, कितनी सुन्दर है यह ! सयोग से इधर पास ही मिल गयी। यह किसी की पाली हुई-सी प्रतीत होती है। शायद किसी ने अपने घर से निकाल दी है। नये घर की तलाश मे घूम रही थी। इसे भी नया सुखदायक घर मिल जायगा और आप भी चूहों की परेशानी से बच जायेगे।

गुरुदेव—ठीक, ठीक ! बिल्ली को देखते ही कुटिया के सब चूहे भाग खडे हुए है। भला, डर के सामने वे कैसे टिकेंगे ? मेरी सज्जनता का अनुचित लाभ उठा रहे थे अब तक।

(कुटिया के सब चूहे बिलो मे घुसे बैठे हैं। बिल्ली कूदती है और प्रेम से सन्यासी के पाव चाटती है। अपने कोमल बालो को उससे रगड कर ममता प्रकट करती है। गुरुदेव खुशी का अनुभव करते हैं।)

गुरुदेव—अहह ! इस बिल्ली मे मेरे प्रति कितना स्नेह है ! यह मुझे कितना चाहती है। शरीर से चिपट-चिपट जाता है। इन अधम कहलाने वाले जीवो मे भी कितना ममत्व है। यह तो ऐसी लगती है जैसे पूर्व जन्म की कोई बाल-सहचरी हो हो। यह तो मुझे अपनी-सी जानी-पहचानी लगती है।

(बिल्ली इधर-उधर अकेली घूमती है। ऐसा लगता है जैसे वह अपने-आपको अकेला अनुभव कर दुखी हो रही हो।)

एक शिष्य—(भारी मन से) यह बिल्ली इस कुटिया में अकेलापन-सा अनुभव कर रही है।

दूसरा शिष्य —यहाँ और कोई—और जीव भी तो मन लगाने को नही है। जो चूहे थे, वे डर के मारे बिलो मे घुस गये हैं।

पहला शिष्य—कही अकेलेपन से परेशान होकर भाग न जाय। लाइये, इसे बांध दूँ रस्सी से।

(बाँधता है)

अब यह भाग कर अन्यत्र जा न सकेगा। चूहे बाहर नहीं निकल सकेंगे। इसके आने से दुष्ट चूहो की परेशानी मिट गयी। ईश्वर ने बिल्ली भी कैसी उपयोगी बनाई है। कोई चूहा बिल से नही निकल सकेगा।

(पटाक्षेप)

द्वितीय झाँकी

[लगभग एक मास बाद]

(अपनी पर्णकुटी मे विरक्त सन्यासी चिन्ताग्रस्त बैठे है। पहले चिन्ता मुक्त हो। योग-साधन करते थे, पर बिल्ली की गिरती हुई हालत से परेशान- से हो रहे है।

सन्यासी—(आप-ही-आप) शिष्यो का भी कैसा ममत्व था मेरे प्रति। मुझे नग्न देख लाख मना करने पर थी नयी कौपीन ले आये। कौपीन का चूहो ने कुतरना शुरू किया तो चूहो से बचने के लिए बिल्ली पाल दी। अब यह बिल्ली भूख के मारे दुबली हो रही है। इसे पूरा पेट भर भोजन ही नही मिलता बेचारी की हड्डियाँ और पसलियाँ निकल आयी हैं। इससे कम-

जोरी की वजह से चला-फिरा नही जाता। ऐसे तो यह मर जायगी। हाय ! यह तो बड़ा बुरा होगा……पाप हो जायगा। जो प्राणी मुझ पर आश्रित है, उसे दुखी नहीं रहना चाहिये ? हाय ! अब बेचारी को कैसे बचाऊँ ? कैसे इसकी प्राण रक्षा हो ? मै सारे दिन इस बिल्ली को स्वस्थ रखने की बात सोचता रहता हूँ। बिल्ली के लिए दूध का कोई प्रबन्ध होता, तो यह जरूर बच जाती। भर पेट भोजन से इस पर माँस आ जाता। पर दूध का प्रबन्ध……कैसे करूँ ? मेरी बिल्ली की प्राण रक्षा के लिए दूध तो चाहिए ही। 'अरे शिष्यो !…अरे शिष्यो…इधर आओ…! यह बिल्ली मर जायगी…इसे किसी तरह बचाना चाहिए…।'

(शिष्य आते है)

शिष्य—कहिए गुरूदेव ! कैसे याद किया।

सन्यासी—(चिन्तित मुद्रा मे) कहे क्या, इस बिल्ली की हालत नही देखते कैसी दुबली होती जा रही है। भूख के मारे बेचारी की हड्डियाँ-हा-हड्डियाँ निकल आयी है। इसका पेट ही नही भर पाता। इसके लिए दूध का कोई प्रबन्ध होना ही चाहिए।

शिष्य—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। गुरूदेव ! आश्रम मे कई धनी लोग गायो का दान करना चाहते हैं। हमने ही उनसे कह दिया था कि गुरूजी ससार से विरक्त संन्यासी है। उन्हे गाय से क्या सरोकार ! अब हम उनसे गायो का दान स्वीकार कर लेंगे। कई भक्तजन गाय लेकर आज भी आये हैं। हम उनकी भेंट स्वीकार कर लेंगे। बिल्ली के अतिरिक्त सभी को दूध मक्खन-दही की सुविधा हो जायेगी।

गुरुदेव—कम्बख्त बिल्ली ने मुझे कैसा ममता-मोह मे बाँध लिया है । अब गया लेनी ही पडेगी । (शिष्य से) अच्छा, जाओ तुम एक गाय की भेट को स्वीकार कर लो ।

(शिष्य जाता है)

चलो, आश्रम मे दूध मक्खन और दही की तो सुविधा हो जायगी । बहुत दिनो से अतिथि- महाशय भी निराहार ही वापस जाते थे । अब सभी को दूध से लाभ होगा ।

[शिष्य गाय लेकर आता है । पानी पिलाता है और घास डालता है ।]

शिष्य—अब बिल्ली भूखी रहेगी ।

तृतीय झाँकी

[दो-तीन मास बीत गये है । गाय खूब दूध देती है, जिससे बिल्ली मोटी-तगडी हो गयी है । आश्रम मे सभी को दूध मक्खन की सुविधा हो गयी है । गुरुदेव भी दूध पीकर मजबूत होते जाते हैं, किन्तु एक नयी चिन्ता ने उन्हे परेशान कर रक्खा है । ममता के बन्धनो मे वे लिपटते जा रहे हैं]

गुरुदेव—गाय तो मिली, पर अब कौन रोज रोज इसके लिये घास काटकर लाये… गोबर साफ करे ? मल-मूत्र की सफाई सिर पर आ पडी । भजन, साधन-पूजन, अध्ययन स्वाध्याय छूटता जाता है । सारा समय बिल्ली और गाय की सेवा-चाकरी मे ही लग रहा है । पहले एक कोपीन थी, उसके धोने मे तनिक सा समय लगता था । अब दूसरी कोपीन को धोने का काम अलग है । चूहों का भय बना रहता है । चिन्ता रहती है कि कही घास, दाना न मिलने से गाय भूखी न मर जाय । अजब

जञ्जाल में, माया मोह में फँस गया हूँ··· घर के काम में ही सारा समय बरबाद हो रहा है, न बिल्ली छूटती है, न गाय। कोई इन दोनो की देख-रेख और सेवा-चाकरी करने वाला मिले, तो मुझे साधन-भजन और ईश्वर चिन्तन के लिये पूर्ववत् समय मिले। यदि कोई इस काम को कर लेता, तो·······हाँ, तो मैं स्वाध्याय करता ······ अध्यात्म मे आगे बढता ···—किसी नौकर का प्रबन्ध करूँ, तब यह माया जाल छूटे। (पुकारता है, 'ओ शिष्यो··· शिष्यो····)

(दो शिष्य आते हैं)

गुरुदेव – देखो, इस बिल्ली और गाय की सेवा-चाकरी मे तो हमारा सारा समय नष्ट हो जाता है। गाय के लिये घास, चारा, दाना, गोबर इत्यादि की सफाई इत्यादि के लिये किसी सेवक की जरूरत है। कोई इन दोनो को सभाल ले, तो हमे साधन विषयक कार्यों के लिये फुरसत मिल सकती है। आज कल तो सारा समय इन दोनो मे ही खराब हो रहा है। इनका ममता मोह हमे आध्यात्म-चिन्तन नही करने दे रहा है।

शिष्य—गुरुदेव ! आज्ञा दे।

गुरुदेव—इस बिल्ली और गाय के ममता-मोह से परेशान हूँ बेटा ! भजन करते समय इन्ही का ध्यान बार-बार आता रहता है।

शिष्य—क्षमा करे गुरुदेव ! ये काम तो गुरुआनी जी के है। घर का सारा काम सँभालना औरतो की जिम्मेदारी होती है। पुरुष घर के, बाहर के काम करता है, स्त्रियाँ गृहिणी कहलाती है। घर की सारी चिन्ताओ से मुक्ति के लिये कहे तो एक सुशीला गुरुआनी का प्रबन्ध कर दे। फिर वे घर का भोजन,

बिल्ली-गाय की देख रेख, वस्त्रो को धोने इत्यादिका सारा प्रबन्ध स्वय कर लिया करे"ी । आपको सम्पूर्ण समय साधन विषयक का"र्यों के लिए मिल जाया करेगा· ···· निर्विघ्न योग-साधन, स्वाध्या'य, ग्रन्थ-लेखन, ईश्वर-चिन्तन होता रहेगा ।

गु‍रुदेव— कुछ(सोचकर) सुझाव कुछ बुरा नही है, किन्तु तू कहाँ स गुरुआनो लायेगा ?

शिष्य – (सहर्ष) केवल आपकी आज्ञा मात्र चाहिए । यहाँ किसी की कोई कमी नही है । कई नारियाँ स्वय यह सेवा कार्य करने का प्रस्ताव कर चुकी हैं, पर आपके सामने निवेदन करने की हिम्मत नही हुई थी······· कहिए, तो ले आऊँ ।

गुरुदेव--(कुछ सोच मे पड जाते है)

शिष्य—मै गुरुदेव के मौन का मतलब समझ गया । जाता हूँ, अभो सेवा कार्य के लिए सुशील । गुरूआनी ले आता हूँ जाता है) ।

गुरुदेव—कितना बुद्धिमान् शिष्य है । अब घर के सारे झझटो से मुक्ति मिल जायेगी । वह घर का काम सम्भाल लेगी, मै सारा समय साधन मे दिया करूंगा । चलो, गुरुआनी के आने से घर की चिन्ता से छुटकारा मिलेगा ।

[शिष्य एक सुन्दर सुशील नारी को लेकर प्रवेश करता है नारी आदर सहित प्रणाम कर गुरुदेव के चरणो को स्पर्श करती है ।]

नारी--(श्रद्धा और आदर सहित) गुरुदेव ! मेरे धन्य भाग्य जो आपने मुझे इस घर की सेवा-चाकरो का सुअवसर प्रदान किया है आज से मैं आपको समस्त घर की चिन्ताओ से मुक्त करती हूँ । समय पर भोजन मिलेगा, बिल्ली और गाय की

देख-रेख होगी, वस्त्र आदि धोये जाते रहेंगे। अब आप निर्विघ्न साधन भजन का उच्च काय पूर्वत् कर सकेंगे।

गुरुदेव—ठीक-ठीक, तुम इस बिल्ली··· इस गाय को सँभालो। मैं अध्यात्मक-चिन्तन करूँगा·······।

शिष्य—गुरूदेव ! अब एक हमारी भी प्रार्थना स्वीकार करे। बहुत दिनो से हम सबकी इच्छा है कि धार्मिक पर्यटन करे। भारत के समस्त धर्म-स्थानो पर जाकर स्नान आदि का पुण्य लाभ ले। आश्रम के बाहर के स्थानों को भी देखले।

गुरुदेव (सहर्ष) तुमने हमारी बडी सेवा की है। पर्याप्त पढ भी लिया है। अब तुम धार्मिक यात्रा कर सकते हो। घूम-घूमकर अच्छी तरह ज्ञान लाभ करो। वापस आने की जल्दी मत करना·······।

(शिष्य सब चले जाते है।)

गुरुदेव—(नारो से) सँभालो यह घर-द्वार·········—यह सब कुछ। अब हम ईश्वर चिन्तन करेंगे।

[पटाक्षेप]

चौथी झाँकी

शिष्य कई वर्ष बाद धार्मिक यात्रा से लौट कर गुरुदेव के आश्रम में आते हैं। पर, अरे ! यह क्या ! उस आश्रम का तो कही नाम-निशान भी नही। और वह कुटिया कहाँ गयी ? यहाँ तो एक आलीशान बिल्डिङ्ग खडी हुई है। न वह पीपल का पेड़ है, न वह घास-फूस की झोंपड़ी ! सब कुछ बदल गया है शिष्य यह परिवर्तन देखकर घबरा रहे हैं कि कहीं हम भूल

कर नयी जगह तो नही आ गये हैं ! घर से बाहर कुछ बाल-बच्चे खेल रहे है ।

शिष्य—(बच्चो से) क्यो रे बच्चो ! कुछ वर्ष पहले इधर एक पीपल के पेड के नीचे एक सन्यासी विरक्त साधु की कुटिया थी·······उसके पास एक बिल्ली थी ······एक काली गाय थी ··· क्या तुम उस सन्यासी के विषय मे कुछ बता सकते हो ?

एक बालक—यहाँ कोई झोपडी नही है । तुम शायद मार्ग भूल गये हो ।

एक कन्या—हमने कोई पीपल का पेड नही देखा, न कोई, विरक्त सन्यासी ·······।

शिष्य—नही, जगह तो वही है ··· ···इधर-उधर का वातावरण मैं नही भूला हूँ ·· ···यह देखो, स्थान की सीमाये मैं पहचानता हूँ ··· ···।

[इतने मे आधुनिक वस्त्रो मे एक व्यक्ति घर से बाहर निकल कर आते हैं ।]

शिष्य—माफ कीजिए, यहाँ कुछ वर्ष पहले एक विरक्त संन्यासी रहा करते थे । उनकी एक पर्णकुटी थी·······। कुटिया मे उन्होने एक बिल्ली पाल रक्खी थी । दूध के लिये एक काली गाय थी·······।

सन्यासी—(शिष्य को पहचान कर) अरे, मैं ही तो वह सन्यासी हूँ और वह पर्णकुटी बदल कर यह पक्का आलीशान मकान बन गया है । ये बच्चे मेरे ही तो हैं । बच्चो ! अपनी मम्मी को बुला कर लाओ । (बच्चे जाते हैं) तब से बडा परिवर्तन आ गया । सभी कुछ बदल कर नया जीवन हो गया है । (एक आधुनिक फैशन की नारी बाहर निकलती है । शिष्य उन्हें प्रणाम करता है ।)

ये वे गुरुआनी जो है, जिन्हें तुम सेवा-चाकरी के लिये रख गये थे........।

नारी—यह देखो, सब कुछ बदल गया। जङ्गल से नगर के सब साधन-ऐश्वय विलास के उपकरण एकत्रित हो गये है। कौन इन्हें देख कब कह सकता है कि वे कभी ससार से विरक्त सन्यासी रहे होंगे ? घर, परिवार, बाल-बच्चे, पत्नी, जमीन, जायदाद सभी कुछ है। गृहस्थ के सारे बन्धनों मे बँधे हुए गृहस्थ बन गये हैं।

शिष्य—तो क्या गुरुदेव ! अब आप पूरे गृहस्थ बन गये है।

संन्यासी—मैं क्या करूँ उस नयी कौपीन से माया-मोह का चक्र फैलता गया। तनिक-तनिक-सा होते-होते मैं ममता बन्धन मे बँधता गया। मैं वासना के कुटिल चक्र मे फँस गया। इन नारी के पदार्पण से तो गृहस्थी पूरी ही हो गयी........और अब ये बाल-बच्चे....यह पत्नी....यह जमीन जायदाद....सर्वत्र माया और मोह का बन्धन-ही-बन्धन मुझे बाँधे हुए है....मैं अनेक सासारिक चिन्ताओं मे बंधा हुआ हूँ ....यह छुड़ाये नही छूट पा रहे है........।

शिष्य—हाय रे दुनियाँ, सांसारिक लोग दुनिया के कुचक्र से ऊब कर विरक्त-सन्यासी बनते हैं, जङ्गलो मे भाग कुटिया में रहते है, ईश्वर-भजन के लिये नगे रहते हैं या एक कौपीन मात्र से काम चलाते है, उधर हमारे गुरुजी एक नयी कौपीन के मोह से विरक्त से गृहस्थी बन गये है।

गुरुदेव—मोह का बन्धन इसी को तो कहते है बेटा ! यही ससार है, जिसको माया मे समस्त जीव बँधे हुए हैं।

माया ममता ना मिटी, मर-मर गये शरीर........।

(पटाक्षेप)

संगति ही गुण ऊपजै, संगति ही गुण जाय

एक साधु के पास कई तोते थे। उसे तोतों का पढाने का बेहद शौक था। तोतो की आदत है कि बार-बार जिस बात को सुनते हैं, बडो जल्दी उसे सीख लेते हैं।

साधु वेद मन्त्रो का उच्चारण करता। बार बार उन्ही वेद मन्त्रो को सुनते सुनते वे ताते भी अपनी लाल चोच और तुतली बोली से उन्हे दुहराते —

'वस्यो भूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयास वसु मयिधेह।'
(अथर्ववेद १६।८।४)

मनुष्यो! ईश्वर पर आस्था रखो और परोपकार करते हुए श्रेष्ठ पद प्राप्त करो।

'मा प्र गाम पथो वय मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्त स्तुर्नो अरातय.॥'
(अथर्ववेद १३।१।५८)

अर्थात् हम परमात्मा को उपासना करें। हम सदा सत्कर्म करे। हम दानशील बने और सुपथ से कभी विचिलित न हो

ताता के मुँह से य वेद मन्त्र बड़े प्रिय प्रतीत होते। जो कोई सुनता मुग्ध हो जाता। सज्जन पुरुष ता उनसे विशेष प्रभावित हाते।

एक दिन वहाँ एक कसाई आया। कसाई ने सदा ही कटु-वानी सुनी और हत्या कर मांस बेचने का दुष्ट कर्म किया था।

उसकी आत्मा मानो गहरो निद्रा मे निमग्न थो।

तोतों का वेदमन्त्रो का उच्चारण करते देख वह दग रह गया। कैसे प्रिय वचन यह पक्षी बोल रहे हैं! क्या ही अच्छा

हो यदि मै एक तोता पाल लूँ और नित्य प्रति यह शुभ वचन सुना करूँ। उसका मन तोते को लेने के लिए मचल उठा।

'साधु महाराज, मुझे कृपा, कर एक तोता दे दीजिये। शुभ वचन सुनकर जीवन को समुन्नत बनाऊँगा।'—कसाई ने याचना की।

'यदि तुम किसी से सदुपदेश से जाग्रत हो सकते हो, तो सहर्ष मैं तुम्हे यह तोता देता हूँ। अच्छा है, तुम्हारी रुचि सज्जनता की ओर है। शुभ वचनो से लाभ होगा।'

तोते का पिंजरा उठाये कसाई खुशी घर आया। उसने

अपने घर में उसे टाँग दिया कसाई के यहाँ बकरो की काटने, गोश्त का मोल भाव बताने, गाली गलौज इत्यादि होता रहता था। हिंसक और दुष्ट प्रकृति के खरीददार मांस खरीदने आते, तू तू मैं-मैं करते रहते थे। शराबियो की शरारत भरी गन्दी बात चलती रहती थी। सारा वातावरण ही राक्षसी प्रवृत्ति का था। इस राक्षसी वातावरण मे रहकर सात्विक प्रवृत्ति के तोते की सद्वृत्तियाँ दब गई और दुष्ट प्रवृत्तियाँ उभडने लगी।

एक दिन पहले वाले साधु के पास राजा के सिपाही आये। कहने लगे, महात्मा जी, राजा ने आपको स्मरण किया है। वे सत्सत का प्रभाव जानने के इच्छुक हैं। इस सम्बन्ध में आपके विचार जानना चाहते हैं कृपा कर हमारे साथ चलिए जिससे राजा की शकाओ का समाधान हो सके।'

साधु जाने को तैयार न हुए। 'हम विरक्तो का राजाओ के यहाँ भला क्या प्रोयजन ?'

'फिर कुछ तो उत्तर दीजिए। महाराज को सत्संग और कुसंग के विषय में आपका क्या सन्देश दिया जाय ?'

साधु ने अपने यहाँ के एक तोते का पिंजरा दिया और बोले, 'इसी के साथ का एक और तोता था। वह कुछ मास पूर्व मुझ से एक कसाई माग कर ले गया था। आप उस कसाई के यहा जाइये और वही तोता इस तोते के साथ ले जाइये। इन दोनो तोतो की वाणी मे जो अन्तर है, वही सत्सग और कुसग मे फर्क है। ये दोनो तोते महाराज की शकाओ का समाधान कर देंगे। मेरे कुछ भी कहने आवश्यकता नही रह जायगा।'

यह कहकर साधु ने अपने तोते का पिंजरा सिपाही को द दिया उस कसाई का पता दिया।

सिपाहियो ने वैसा ही किया।

कसाई वाला तोता तथा साधु वाला तोता राजा के महल में ले जाये गये।

दोनो ही राजमहल मे टाग दिये गए।

मनुष्य क्या हर जानवर जिस वातावरण में रहता है, वैसा ही ढल जाता है। जीवो के सब गुण या दोष ससर्ग से उत्पन्न होते हैं। 'सगति ही गुण ऊपजें, सगति ही गुण जाय।'

प्रात काल चार बजे से ही साधु वाले तोते ने वेद मन्त्रो का उच्चारण प्रारम्भ किया।

सूर्योदय के बाद कसाई वाले तोते ने बकरे काटने, मांस के भाव बताने, गाली गलौज करना शुरू कर दिया। गाली देना, निन्दा करना, चोरी करना, शरारत भरी बात, सब कुसग से तोते मे आ गई थी।

राजा ने उसकी गन्दी बातो को सुनकर उस तोते के बुरे आचरण से क्रुद्ध होकर उसे मार डालने का आदेश दिया।

जब साधु को यह खबर मिली तो वह भागा-भागा आया और बोला, महाराज, यह तोते आपकी शका का स्पष्ट उत्तर दे

रहे है। मनुष्य मे गुण दोष सत्सग अथवा कुसग से ही फैलते है। बच्चे शुभ-अशुभ, माठी कड़वी बाते बोलना कैसे सीखते हैं ? निश्चय ही सगति से। सत्संग ही सबसे बडा विद्यालय है। मनुष्य जिस वातावरण मे रहता है, वैसा ही उसका व्यक्तित्व बन या बिगड़ जाता है। सगति ही चरित्र गुण, स्वभाव, आदत, भाषा, रहन सहन का निर्माण करती है। पशुओं तक का यही हाल है। वे सब ससर्ग से अच्छे बुरे बनते हैं। तोता शुभ वातावरण में रहने से वेदमन्त्र उच्चारण करने लगा। दूसरा तोता गदे वातावरण में जाकर दूषित हो गया इसमे कसाई के तोते का कोई दोष नही है। सब सगति का नतीजा है।

'ओह ! यह बात है !'

'हाँ, महाराज, एक ही जल नदी मे तो मीठा रहता है, लेकिन समुद्र मे जाकर खारी हो जाता है। एक ही वायु गन्ध भेद से सुगन्धित होकर प्रिय बन जाती है। एक पौधा जो ठीक हवा जल, प्रकाश, पाने पर फलता फूलता है, न पाने पर मुरझा जाता है। मनुष्य का ठीक यही हाल है।'

राजा ने साधु का अभिवादन कर ऊँचा आसन दिया। अब उसकी शकाएँ दूर हो चुकी थी। सच है घोड़ा, शस्त्र, वीणा वाणी पुरुष, स्त्री जिस प्रकार के व्यक्ति के हाथ मे पड़ जाते है, वैसे ही योग्य अयोग्य बन जाते हैं।

धर्म प्रचारक को अपमान और विरोध से क्षोभ कैसा ?

(१)

राजकुमारी वासवदत्ता हर प्रकार शील-गुण सम्पन्न अत्यन्त रूपवती थी। उनके पिता इस सुशील कन्या के लिए योग्य वर की खोज में चिन्तित रहते थे। जो कोई योग्य युवक दृष्टि में आता, राजा उसे लुब्ध-दृष्टि से देखते और उसमें भावी जामाता के दर्शन करते। शायद राजकुमारी के अनुरूप उच्चतम गुणों से विभूषित कोई राजकुमार उपलब्ध हो जाय।

किन्तु राजकुमारी वासवदत्ता के अनुरूप राजकीय कुल का युवक न मिला। उनके नेत्र चातक स्वाति नक्षत्र की बूँद के लिए तरसता रहता है, उसी प्रकार सतृप्त आकांक्षा से खुले रहे।

पर राजा ने खोज जारी रखी कस्तूरी की तलाश में मृग की तरह।

संयोग से एक दिन उस नगर में गौतम बुद्ध ने पदार्पण किया, चन्द्रमा के उदय होने की तरह सर्वत्र एक अलौकिक प्रकाश फैल गया। राजा युवक गौतम के रूप-गुण-सौन्दर्य और उच्च विचारों से मन्त्र-मुग्ध हुए। चुम्बक-सदृश गौतम का व्यक्तित्व सचमुच अत्यन्त आकर्षक था।

'क्या ही सौभाग्य हो, यदि गौतम-जैसा योग्य दामाद मुझे प्राप्त हो जाय ! तब मैं वासवदत्ता-जैसी शीलगुण सम्पन्न पुत्री से सच्चा न्याय कर सकूँगा'—राजा ने मन ही- मन निर्णय

किया—'मुझे गौतम को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये हर युक्ति से।'

राजा ने युवक गौतम के पास राजकीय विवाह प्रस्ताव भेजा। प्रस्ताव स्वीकार करवाने के लिये बड़ी खुशामद की। नाना प्रकार के सासारिक प्रलोभन भी दिये। जीतने का हर प्रकार से प्रयत्न किया।

किन्तु सब उपाय व्यर्थ!

उनके भेजे गये संदेशवाहकों को नकारात्मक उत्तर मिले!

'अच्छा, अब मैं स्वय ही गौतम से प्रार्थना करने जाऊँगा। मैं उन्हे राजी कर सकूँगा।' राजा ने निणय किया।

मन मे आशा का दीप जलाये राजा पूरे राजसी ठाटबाट से गौतम के पास पहुँचे। अपना ऐश्वर्य दिखाकर वे युवक गौतम का मन जीत लेना चाहते थे।

गौतम जिज्ञासुओ मे धार्मिक प्रवचन कर रहे थे। जनता उनकी वाणी का रसास्वादन कर रही थी। जब गौतम अपना प्रवचन समाप्त कर चुके और तृप्त श्रोताओ की भीड़ छँट गयी, तब एकान्त पाकर राजा ने अत्यन्त मधुर और विनीत स्वर में निवेदन किया—

'वत्स! मेरी सुपुत्री वासवदत्ता रूप-शील और गुणो में सर्वथा आपके योग्य है। मै बहुत दिनों से आप जैसे उदीयमान, विचारशील और सच्चरित्र की खोज मे था। सौभाग्य से घर बैठे ही गङ्गाजी-सदृश आप हमारे नगर मे पधारे है। आप मेरी पुत्री वासवदत्ता को सहधर्मिणी के रूप मे स्वीकार कीजिए। कृतार्थ होऊँगा। ऐसी कुशल गृहिणी को पाकर आपका दाम्पत्य जीवन सुखी होगा।

गौतम इस प्रकार के सुझाव के लिये किंचित् भी तैयार न थे। भला क्या उत्तर देते ? बात को सुनी-अनसुनी कर दी।

राजा ने पुनः मधुर शब्दो मे दोहराया—

'भगवन् ! मेरी पुत्री रूप शील-गुण मे सर्वथा आपके योग्य है। कृपा कर इसे जीवन सहचरी के रूप मे ग्रहण कीजिये। मैं अपने को धन्य मानूँगा।'

गौतम तब तक विचारो मे खोये हुए थे।

राजा चन्द्र-चकोर की तरह उनकी ओर उत्सुकतापूर्वक उत्तर की प्रतीक्षा मे निहार रहा था।

राजन् ! मैने यशोधरा जैसी रूपीशीलवती धर्म पत्नी को धर्म प्रचार के उद्देश्य मे लगे रहने के कारण त्याग दिया है। क्या यह बात आपको विदित नहीं है ?'

'यह मैं जानता हूँ तथागत ! वासवदत्ता यशोधरा से कई दृष्टियो मे आगे है। आप वासवदत्ता के साथ रहकर यशोधरा को भूले जायेंगे। वासवदत्ता बहुत योग्य, चतुर और आकर्षक है।'

'भूल जाऊँगा ? सो कैसे ? आप अपना अभिप्राय स्पष्ट कीजिये।' बुद्ध ने पूछा।

'वासवदत्ता हर दृष्टि से यशोशधरा से रूप-गुण मे ऊँची है।'

'वह यशोधरा से ऊँची तो भला क्या होगी ?'

'नही··· नही' राजा ने प्रार्थना की, 'वासवदत्ता गुणो मे बढो-चढी है। आप उसे देख तो लीजिये।'

'पर·· पर··· एक शङ्का है !' गौतम झिझके।

'क्या शङ्का है भगवान्। कहिए, मैं उसका निवारण करूँगा।'

राजन् ! मुझे आत्म ज्ञान की जिज्ञासा हुई थी, वैराग्य की भावना उदित हुई तो मैंने यशोधरा-जैसी प्रिय, शील-गुण सम्पन्न धर्म पत्नी तक का परित्याग कर दिया था, फिर····अब भला········!'

'फिर, अब भला क्या ? भगवन् । मेरी पुत्री वासवदत्ता उसकी अपेक्षा श्रेष्ठतर है ।'

'एक भोगत्यागी वैरागी भला किसी की भी कन्या को कैसे स्वीकार करेगा !'

'ओफ ! तो यह बात है, तथागत !'

'हाँ राजन् ! विवशता है, क्षमा करें, । शेष जीवन मे अब मैं विवाह की कल्पना भी नही कर सकता ।'

राजा निराश होकर चले गये, टूटा हृदय लिये हुए !

यह सारी घटना और बाते राजकुमारी वासवदत्ता के कानों तक पहुँची । उसने इसे अपना व्यक्तिगत अपमान समझा । वह उग्र हो उठी और उसने गौतम बुद्ध से अपने अपमान का बदला लेने की ठानी ।

घायल सर्पिणी के समान फूत्कार करते हुए उसने गर्जना की—

'गौतम ने हमारे साथ सरासर अन्याय किया है । यह तो मेरा और मेरे पिताजी के अपमान का प्रश्न है । उनसे इस अपमान का प्रतिशोध लेकर रहूँगी । जीवन में कभी तो अवसर आयेगा ही ।'

प्रतिशोध का भाव एक अग्नि की तरह है । इसकी अग्नि गुप्त रूप से धधकती रहती है और मन को सर्वदा अशान्त तथा उद्विग्न करती रहती है । एक बार जब किसी से बदला लेने की भावना मन मे बैठ जाती है, तो वह व्यक्ति अच्छे बुरे, उचित-

अनुचित, देर-सबेर पर ध्यान नही देता । प्रतिशोध का दुष्ट विकार मनुष्य के विवेक को लुप्त कर देता है ।

× × ×

(२)

बहुत दिनो बाद ।

यु । का प्रभाव तेजी से आगे बढ़ता गया । जो किशोर थे, वे अब युवक बन गये ।

राजकुमारी वासवदत्ता का विवाह कौशाम्बी के राजा उदयन से हुआ । वासवदत्ता अब महारानी के पद पर आसीन थी। उनके हाथ मे अब सत्ता थी , वे कौशाम्बी के राजमहलो मे ऐश्वर्य का राजसी जीवन व्यतीत करती थी ।

एक दिन संयोग से उन्हे समाचार मिला कि गौतम बुद्ध अपने शिष्यो के साथ कौशाम्बी मे पधारे हैं । गौतम का नाम सुनते ही अतीत की स्मृतियाँ जाग्रत् हो आयी ।

प्रतिशोध की अग्नि एकाएक जल उठी । बदला लेने का यह अच्छा मौका लगा ।

'अब मैं अपनी उच्च स्थिति से लाभ उठाकर गौतम को नीचा दिखाऊँगी । नारी को कोमल माना जाता है, किन्तु मैं दिखा दूँगी कि मै कितनी शक्तिशालिनी हूँ ।' उसने मन मे सोचा ।

वासवदत्ता ने दुष्टो को धन देकर यह सिखाया कि गौतम बुद्ध को खूब तिरस्कृत और हर प्रकार से अपमानित किया जाय । अधिक से अधिक सताया जाय ।

दुष्ट अपनी दुष्टता कब छोड़ते हैं ? उन्हे पात्र-कुपात्र का ध्यान नही रहता । वे यह भी नही देखते कि किससे बदला लिया जाय किसे छोड़ा जाय ।

यहाँ भी ऐसा ही हुआ। गौतम को भयानक सामाजिक विरोध का सामना करना पड़ा। उकसाये हुए दुष्ट उनके पीछे पड़ गये।

कौशाम्बी राज्य मे गौतम बुद्ध जहाँ भी गये, दुष्टो ने उन्हे परेशान किया। नाना प्रकार के विघ्न उपस्थित किये। मान-हानि की। वे जहाँ कही भी प्रवचन के लिए तैयारी करते, वही से उन्हे निराश होना पडता। कोई दुष्ट उन्हे अपशब्द कहता, तो कोई बदमाश सडी वस्तुएँ उन पर फेकता था। उनके धार्मिक भाषणो मे आने वाले श्रोताओ को बहकाया जाता था। खुले आम उनकी निन्दा की जाती थी।

यह अपमानित जीवन किसी भी भावुक व्यक्ति के लिए असह्य होता। महात्मा बुद्ध का अपमान होते देखकर उनके प्रधान शिष्य आनन्द को बडा मानसिक आघात पहुँचा। और शिष्यो ने भी अपमान का विष पहा, पर वे कुछ कह न सके।

पर आनन्द इसे न सह सके। उन्होने कहा—'भगवन् ! यहाँ के लोग धर्म का अर्थ तनिक भी नही समझते। आपके अमृतमय उपदेशो से वे कुछ भी लाभ नही उठाते। उलटे आपका उपहास करते हैं।'

'फिर क्या चाहते हो, आनन्द ?' गौतम ने पूछा।

'तथागत ! यहाँ के लोग बहुत खराब है। इनमे धार्मिक चर्चा से कुछ भी लाभ न होगा। यह सब अरण्यरोदन के समान व्यथ ही जायेगा। हम सब को अन्यत्र सज्जनो में चलना चाहिए, जहाँ जीवन को गूढ़ गुत्थियो को समझाने वाले विवेकशील व्यक्ति हो। वे कुछ धम का मार्ग समझे !,

'आनन्द ! यदि वहाँ भो लोगों ने हमारा ऐसा ही अपमान किया तो हम क्या करेंगे ?

'तो हम आगे और कही चलेगे, सज्जनो की तलाश में।'

और यदि वहाँ भी ऐसे ही खराब आदमी मिले तो....?, बुद्ध ने शङ्का की।

'तो हम किसी चौथी जगह चलेगे, पर शरीफ लोगो मे ही प्रवचन करेगे।,

'आनन्द ! तो क्या हम इसी प्रकार अच्छे लोगो की तलाश मे इधर-उधर दुनियाँ मे चक्कर लगाते रहेगे ?,

'जी हाँ, सुपात्र की खोज ता करनी ही होगी।'

यह कह कर आनन्द गौतम बुद्ध का मुँह निहारने लगे। वे समझते थे कि गौतम उनके उत्तर से सहमत होगे। पर गौतम ने फिर कहा —

'नही, आनन्द ! तुम्हारा दृष्टिकोण सही नही है।'

'फिर क्या करना धर्म रहेगा ? धार्मिक दृष्टि से भला सेवा का क्या मतलब है, भगवन् ?

'आनन्द ! सेवा का अर्थ है दीन, हीन अविद्याग्रस्त लोगो को, वे चाहे कही भी मिले, ऊपर उठाना। भूले को मार्ग दिखाना।'

'पर उसके लिए अच्छा वातावरण और उर्वर क्षेत्र भी तो होना चाहिये भगवन् !

'नही आनन्द ! धर्म की चेतना और आत्मोन्नति का कार्य तो किसी भी क्षेत्र से किया जा सकता है'

'क्या स्थान और क्षेत्र बदलना जरूरी नही है ? किसान बीज बोने से पूर्व अच्छे खेत की तलाश करता है। उसे खब जोतता-गोडता है। तब कही बीज बोता है। इसलिए अच्छे लोगो का लाना जरूरी है।,

'नही, आनन्द ! लोग सब जगह प्राय एक से ही हैं । यह समझना कि दूसरी जगह लोग ज्यादा अच्छे होगें एक भ्रान्ति है । हर स्थान के लोग थोड़े-बहुत अन्तर से प्राय: एक से ही होते है उनकी समझ में थोड़ा-बहुत अन्तर हो सकता है, पर मूल रूप एक ही है ।'

'तो फिर इस नगर के लिए हमारी कौन-सी धर्म नीति ठीक रहेगी, भगवन् ?'

'हम इन्ही मे अपने प्रवचन करना जारी रखेगे आनन्द ! इनमे कुछ तो समझदार होगे हीं, जो हमारी बाते समझेगे । अच्छी बातते विवेकशील मस्ष्किो मे जरूरी बैठेगी, दुर्जन और कुपात्र स्वयं एक दिन चुप होकर बैठ जायेगे। सज्जन और दुर्जन सब जगह समान-रूप से सुख और दु:ख की तरह मौजूद है '

'फिर दूसरी जगह चलना········ ।'

'हाँ, आनन्द ! स्थान छोडकर कायरता से भागना बेकार है । जो थोड़े से सज्जन हैं बिवेकशील है, धर्म के सच्चे जिज्ञासु हैं उन्ही के समझ लेने से सतुष्ट हो जाना चाहिए । गहरा बाते तो कम ही लोगो क मनमे उतरती है । वैसे ससार मे सब जगह लोग एक जैसे ही है । दूसरी जगह के लोग यहाँ वालो की अपेक्षा बेहतर होगे, उनमे अच्छाई ही अच्छाई होगी सकोणंता, अहकार, अज्ञान य अविद्या न होगी, ऐसा सोचना गलत है ।

'सब जगह के लोग एक से ही हैं ?

'हाँ, जब तक यह अज्ञानरूपी अन्धकार मनुष्य से नही छूटता, तब तक हर व्यक्ति पशु जैसे ही अविकसित है । हमे अच्छे-बुरे सब मे देवत्व का विकास करना है । । अज्ञानियों के ज्ञान-नेत्र खोलने हैं । अधर्म प्रिय बुरे आदमियो को भला बानता

है। वे तो विशेष रूप से पात्र हैं । उन्ही मे धर्म की चेतना जगानी है। बुरे आदमियो से डर कर भागने से काम न चलेगा।'

'तो इन्ही दुष्टो मे धार्मिक जागृति का कार्य करना होगा क्या ?

'हा आनन्द ! तुम जरा धैर्य रक्खो। अन्धकार मे ही प्रकाश फैलाना है। एकाग्र होकर प्रतिकूलता की परवा न कर उत्साह से धार्मिक जागृति का कार्य करो। अन्त मे सत्य ही विजयी होता है। एक दिन तुम्हे सफलता अवश्य मिलेगी।'

आनन्द निरुत्तर हो गये। गौतमबुद्ध के अमृत मय उपदेश धीरे-धीरे सर्वत्र फैलते गये। दुष्ट लोग हटते गये। सत्य, प्रेम और विवेक का दिव्य प्रकाश फैलता गया। जब यह तत्व वासवादत्त को विदित हुआ, तो उसने भी अपनी गलती अनुभव की और गौतमबुद्ध के पास आकर अपना मूढ़ता के लिए क्षमा-प्रार्थना की।

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाधतः।

(सामवेद ६)

'परमात्मा ज्ञानियो के हृदय मे प्रकाशरूप और मस्तिष्क में विचार रूप मे प्रकट होता है।'

सुखी दाम्पत्य जीवन के अमूल्य सूत्र

महात्मा कबीरदास के घर पर सत्सङ्ग करने वालों की भीड लगी हुई थी।

जिज्ञासु लोग जीवन तथा मर्म सम्बन्धी अनेक उलझने उनके पास ले-लेकर आते और अपनी शङ्काओ का समाधान प्राप्त करते। कबीरदास के उत्तर अटपटे और मन पर स्थायी प्रभाव डालने वाले होते थे। शरीर और आत्मा मे अधिक-से-अधिक जितने सौन्दर्य और जितनी सम्पूर्णता का विकास हो सकता है, उसे स्पष्ट करना ही कबीर का उद्देश्य रहता था। आस पास के अनेक व्यक्तियों के जीवन ढालने मे वे महत्वपूर्ण कार्य करते रहते और उनके ज्ञान के चक्षु खोलते रहते।

उस दिन बहुत से श्रद्धालु भक्त कबीर जी के घर पधारे। किसी ने भक्ति, किसी ज्ञान और किसी ने योग पर अपनी शङ्काओ का समाधान कराया। महात्मा कबीर ने सभी को सन्तुष्ट किया।

काफी समय व्यतीत हो गया। सारे दिन वे बुरी तरह भक्तो से घिरे रहे थे उन्होने बताया—इस ससार मे अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ भरी पड़ी है। एक-एक कण मे विराट् शक्तियों और आत्मिक सम्पदाओ के अम्बार भरे पड़े हैं। पर उन्हे विकसित करना सतत अभ्यास से ही सम्भव है।

लोग पूछते, 'महात्मा जी ! कृपया बताइये, उन्नति का उपाय क्या है ?'

वे उत्तर देते, 'मेरे भक्त ! कैसी भी विषम परिस्थिति में उन्नति करने का उपाय यह है कि अपने ज्ञान और अभ्यास की शक्ति बढाते रहो। धैर्य रखकर काम किये जाओ। तुम्हारी उन्नति का कोई-न-कोई उपाय निकल ही आयेगा।'

श्रद्धालु भक्त एक-एक सन्तुष्ट होकर घर जा रहे थे। धीरे-धीरे उनकी श्रोता-मण्डली कम होती जा रही थी।

लीजिए, सन्ध्या रात्रि में परिवर्तित होने लगी। अब, बस, अन्धकार ने अपना साम्राज्य जमाना प्रारम्भ कर दिया है, अज्ञान की कालिमा की तरह !

लेकिन यह क्या !

एक जिज्ञासु भक्त अभी तक सत्सङ्ग स्थल से नही गया है। अरे, यह तो अपने प्रश्नो की पिटारी मन मे ही दबाये बैठा है।

क्या हैं इसकी जिज्ञासाएँ और शङ्काएँ ?

'कहिये, आप चुपचाप बैठे हैं ! आपको क्या पूछना है ?' महात्मा कबीर ने उन व्यक्ति की ओर देखकर प्रश्न किया।

'जी, क्षमा करें। मेरी कुछ निजी समस्याएँ हैं। बिल्कुल निजी—गुप्त..........पोशीदा !' वह झिझकते हुए बोला।

'कोई हर्ज नही, शर्माइये मत ! कहिए, क्या पूछना है आपको ?'

कबीरदास मुस्करा रहे थे। जहाँ निष्कपट मुस्कराहट है, वहाँ, भला मन मे कोई दुर्भावना, स्वार्थ, ईर्ष्या आदि कैसे टिक सकते हैं ?

कबीर का आत्म-भाव देख कर वह व्यक्ति द्रवित हो उठा।

तब तक उन्होने उस भक्त के मुखमण्डल को ध्यानपूर्वक देखा। कहने लगे—'आपके चेहरे पर तो असन्तोष और व्यग्रता

की कालिमा पड़ी दीखती है। इससे लगता है, आपका दाम्पत्य जीवन अतृप्ति और कलह से भरा है।'

'तभी तो हिचक अनुभव कर रहा हूँ।'

'कहिए, कहिए, क्या उलझन है ?'

'मेरा दाम्पत्य-जीवन एक दिन भी शान्ति, सुख और संतोष के साथ नही बीता है। अनेक बार सम्बन्ध-विच्छेद की कल्पना किया करता हूँ गुरुदेव ! आश्चर्य है, आपने मेरे असन्तोष को कैसे पहचान लिया ?'

कोई हर्ज नहीं, तुम अपनी समस्या कहो ?'

'भगवान् ! क्षमा करे मैं अपनी धर्मपत्नी से संतुष्ट नही हूँ।'

'आखिर क्यों ? कोई कारण तो होगा ही उसका ?

'जी, उसके और मेरे स्वभाव, रुचि, आदतो और मानसिक विकास—सब मे भारी असमानता है। उसी को लेकर दाम्पत्य जीवन मे परस्पर अनबन बनी रहती है। उसे सही रूप में काम करना नही आता। मेरा अनुशासन नही मानती। बहुत परेशान करता रहती है वह। क्या करूँ कि मेरा दाम्पत्य-जीवन सुख शान्तिमय हो जाय ?' वह दुःख पूरित स्वर मे प्रार्थना करने लगा।

जिज्ञासु व्यक्ति उत्तर के लिए कबीरदास का चेहरा निहारने लगा।

'ठहरो, अभी समझाता हूँ। लेकिन कुछ देर ठहरना होगा।'

'कोई हर्ज नही।

कबीरदास फाटक खोल भीतर चले गये।

आगन्तुक कल्पना कर रहा था कि उसे कबीर के मुँह से

दाम्पत्य जीवन की सफलता पर कोई लम्बा भाषण सुनने को मिलेगा, जिससे पत्नी से उसकी कटुता और पारिवारिक कलह दूर हो ही जायेगी, काले मेघों मे से निकले सूर्य के समान तनाव का दूषित वातावरण समाप्त हो जायेगा। शायद वे उसे अपनी पत्नी की भर्त्सना करने की सलाह दगे।

थोडी देर बाद कबीर अन्दर से सूत लेकर लौटे। सूत कातकर जो कुछ मिलता था, उससे वे जीवन का निर्वाह करते थे।

वे उस व्यक्ति के सामने जैसे-के-तैसे निःसकोच भाव से बैठ गये। और सूत कातने की तैयारी मे लग गये।

दो तीन मिनट उपरान्त बोले—

'अजी, बडा अँधेरा हो रहा है। मुझे सूत कातना है। इधर सूत कातने मे कठिनाई अनुभव हो रही है। जरा तुम्हे तकलीफ तो होगी, दीपक जलाकर रख जाओ।'

अभी काफी अधेरा नही हुआ था। साधारण काम करने के लिए यथेष्ट उजाला था।

इस उजाले मे भी कबीर दीपक मँगवा रहे हैं? प्रकाश में भला, दीपक से क्या करेंगे? दिन मे दीपक के मद्धिम प्रकाश की क्या उपयोगिता है? जरूर ये सोचने मे कोई गलती कर रहे हैं। चाँदने मे दीपक! अजीब मूर्खता है।' यह सोचकर वे व्यक्ति मन-ही-मन कबीर की मूर्खता पर हँसने लगे।

थोडी देर मे उस व्यक्ति ने देखा एक सीधी-सादी भारतीय महिला अन्दर से दीपक जलाकर लायी और जहाँ कबीर सूत सुलझा रहे थे, वहाँ चुपचाप रख गयी।

शाम को ही दीपक! प्रकाश मे ही यह टिमटिमाती रोशनी! दिन के चाँदने मे हो—समय से पूर्व ही दीपक जला

लायी ! इस औरत ने प्रतिवाद नही किया कि दिन में ही, भला, मुझ से दीपक क्यो जलवाकर मँगवाया है ?' कबीर की धर्म-पत्नी भी उन्ही की तरह मूर्ख दीखती है। सूर्य के प्रकाश मे ही दीपक जलाकर ले आयी। यह नही कहा, 'अभी घण्टे भर दिन शेष है ? दीपक की अभी से क्यो जरूरत पड गयी !

थोड़ी देर बाद उनकी धर्मपत्नी ने पुनः प्रवेश किया। इस बार उसके हाथो मे दो गिलास थे, जिसमे दूध भरा हुआ था।

'लीजिये, दूध पीजिये। हमारा आतिथ्य ग्रहण कीजिए।' एक गिलास आगन्तुक के आगे बढ़ाती हुई वह स्त्री बोली।

वे दोनों दूध की चुस्कियां ले रहे थे। तब तक गृह पत्नी अन्दर चली गया थी।

थोड़ी देर बाद वह फिर लौटी। ओ, इतनी जल्दी फिर वापस ?

'जी, दूध में मीठा तो कम नही रह गया है ?' गृहपत्नी ने पूछा।

'नहो, पर्याप्त चोनी है हमारे लिये।' कबीर ने मधुर मिश्री सी वाणी में उत्तर दिया। वे दूध उसी भाव से पाते रहे।

संयोग की बात—

उनकी पत्नी की दृष्टि कमजोर थी सफेद रङ्ग की भूल में बेचारी पत्नी ने शक्कर के स्थान पर दूध मे नमक डाल दिया था।

उस व्यक्ति ने मन-ही-मन सोचा, कबोरदास जी भी अजीब मूर्ख आदमी हैं। कह रहे हैं, दूध में मीठा काफी है, ज़ब की दूध में कतई मिठास नहीं है। नमक तथा चीनी में ये अन्तर नही समझते ! बड़े विद्वान् बने फिरते है। इनसे, भला, सुखी दाम्पत्य-

जीवन का रहस्य क्या मालूम होना है ? मैं भी कहाँ भूल कर गृहस्थ जीवन की शिक्षा लेने चला आया !'

इधर वह आगन्तुक झल्ला रहा था, उधर कबीरदास नमकीन दूध पीकर मुँह पोछ रहे थे।

'महा ाज, मेरे प्रश्न का उत्तर मिल जाता तो मैं घर चला जाता !'

'अरे भाई, समझा तो दिया तुम्हे !'

'जी, अभी तक तो सुखी दाम्पत्य-जीवन के बारे मे आपने एक शब्द भी नही कहा ह।'

'क्या और कुछ कहना शेष है ?'

'महाराज, स्पष्ट कहिये। यो कुछ समझ मे नही आता। मेरी धमपत्नी से पटती नही। कैसे सुखी रहे ?'

'मेरा उदाहरण देखो। सुखी दाम्पत्य के लिये यह आवश्यक है कि सदस्यो को अपने अनुकूल बनाओ, पर स्वय भी परिवार के अनुकूल ढलो। दोनो बदलो। कुछ तुम पत्नी की सहन करो, कुछ आपकी पत्नी आपकी बात माने। यह पारस्परिक सद्भाव, अपने साथी के प्रति पूरा और सच्चे हृदय से प्यार समुन्नत गृहस्थ की आधार-शिला है।'

'प्यार का क्या तात्पर्य है ?'

'साथी के दोषो और गलतियो को सहानुभूतिपूर्वक क्षमा करते रहना। देखो, यदि आपस मे मतभेद या कोई गलत-फहमी हो भी जाय तो जल्दी-से-जल्दी उसे दूर करने का प्रयत्न कीजिए। अहभाव से बचिये। सरलता, मधुर भाषण और क्षमाशील स्वभाव से दाम्पत्य जीवन के सूखते हुए वृक्ष मे भी सरसता आ सकती है।'

'मैं तो कभी-कभी उस पर सन्देह कर उठता हूँ।'

'यही कमजोरी है । एक दूसरे पर अविचल विश्वास रखिए। सन्देह को पनपाकर ही अनेक दाम्पत्य परिवार आज कष्ट भोग रहे हैं। इसलिये अच्छे दाम्पत्य के लिये सन्देह के विष वृक्ष को तो पनपने ही मत दीजिये। सब परिस्थितियो मे एक दूसरे का पूरा साथ दीजिए। कष्टो को साथ सहकर और सुखो के दिन भी साथ रहकर काटिये। बीमारी, पीडा, दुखी मानसिक स्थिति में एक-दूसरे का पूरा-पूरा साथ दीजिये।'

'मैं तो उसकी टीका-टिप्पणी कर बैठता हूँ? क्या करूँ?'

'यथा सम्भव एक-दूसरे की आलोचना से बचिए। कमजोरी और दोष किस में नही हैं? सर्वगुण सम्पन्न कौन है? यदि आप परिवार में सुख और शान्ति चाहते हैं तो दूसरो में दोष ढूँढने की आदत आज ही त्याग दीजिए। दोष निकालते रहने से परस्पर कटुता की भावना पैदा होती।'

'समझ गया महात्मन्! बस, अब तो निष्कर्ष रूप मे पूरे का सार कह दीजिये।' वह व्यक्ति पूछने लगा।

'सुनो, शास्त्रों मे जो कहा गया है, वह सुखी दाम्पत्य का सार ही है :—

मा भेर्मा संविक्थाऽऊर्जं धत्स्वधिषणे विड्वीसती वीडपेया मूर्जं दधायाम्। पाप्माहतो न सोमः॥

—यजुर्वेद ६ ६५

'इसका क्या अर्थ है, महात्मन्?'

'इसका मतलब है कि पति-पत्नी परस्पर ऐसा व्यवहार करे जिससे उनका पारस्परिक भय और उद्वेग का कलुषित भाव नष्ट हो जाय। दोनो की आत्माओं की एकता बढे आपसी विश्वास, दृढता और उत्साह बने रहें। इससे गृहस्थाश्रम में ही

की तृष्णा से बचने के लिये वह निराश्रित माता पिता को छोड़ तप करने जङ्गल मे चला गया।

नरोत्तम सकल्प का पक्का था। जिस बात पर जम गया, उसी पर डटा रहता था। धुन के कारण उसने एकाग्र भाव से बहुत तप किया। बड़े-कष्ट सहे। अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित हुई, पर वह कष्टो से जूझता रहा। विपत्ति के सामने उसने घुटने न टेके! उनका तप खिचकर महीनो और वर्षों तक चला गया, पर उसने हिम्मत न हारी। खाने-पीने, सर्दी-गर्मी; कष्टो के सामने भी वह अपनी साधना मे जटा ही रहा।

उसे बहुत वर्ष-तप करते हो गये। अब उसे अपनी आत्म-शक्ति बढी हुई मालूम होने लगी। कठोर तप से उसमे ऐसी शक्ति आ गयी कि वह काँच मे एकाग्र हुई किरणो से उत्पन्न अग्नि की तरह किसी भी जीव को ध्यान मात्र से जलाने लगा। उसे गर्व था कि वह एक शक्तिशाली व्यक्ति बन गया था। अब ससार उसका सम्मान करेगा। उसके दर्प की पूर्ति होगी।

(२)

एक दिन—

वह एक वृक्ष के नीचे बैठा आराम कर रहा था। ठण्डी बयार चल रही थी। उसे कुछ निद्रा आ रही थी। यकायक उसके ऊपर कुछ गिरा। उसने वृक्ष की ओर ऊपर देखा।

"अरे यह तो किसी पक्षी ने मेरे ऊपर विष्ठा कर दी! दुष्ट ने सब वस्त्र अपवित्र कर डाले। कैसे बेमौके परेशान किया है मूर्ख ने!" यह सोचते-सोचते तपस्वी नरोत्तम को क्रोध आ गया।

"इसे इश शरारत का दण्ड देना चाहिये।" क्रोध से भरी

क्रूर लाल-लाल दृष्टि से उसने पक्षी को देखा। उसके नेत्रो से अग्नि निकाली।

आश्चर्य को बात उसके नेत्रो से निकली क्रोध की ज्वाला से पक्षी भस्म होकर पख फड़फड़ाता हुआ नीचे गिरकर तड़पने लगा! अद्भुत घटना थी!

"इस दुष्ट का यही हाल होना चाहिये। मुझ अस्त-व्यस्त और असतुलित करने की यही सजा है।"—अपनी इस आत्मशक्ति की सफलता और चमत्कारिक शक्ति पर उसे अभिमान हो आया। आज उसे अद्भुत सिद्ध प्राप्त हो गयी थी।

"अब मैं अपनी आत्मशक्ति से ससार को अपने कब्जे मे ले सकता हूँ। कौन मेरे सामने ठहर सकता है। अब मैं सबको दवा सकता हूँ सब मेरे सामने बच्चो की तरह दुवल है!"—ये अहङ्कार से सने विचार उसके मस्तिष्क मे चक्कर लगाते रहते थे। वह घमण्ड मे फूल उठा!

अहङ्कार मनुष्य को पिशाच के सामन शक्तिशाली बना देता है। यह मनोविकार बुद्धि और विवेक को पगु कर देता है। अनुशासन हीनता, धृष्टता, और अविनय का व्यवहार करने मे अहकारी को गौरव का अनुभव होता है। जिसका वास्तव में सम्मान होना चाहिए, उसका पर्याप्त आदर सत्कार न होना पूजनीय की पूजा न करना और गुरुता का महत्व स्वीकार न करना अहङ्कारी व्यक्ति के स्वभाव का एक प्रधान अङ्ग बन जाता है। कुछ ऐसी ही बुरी स्थिति तपस्वी नरोत्तम की थी। वह क्रोध मे अधपगला-सा रहता था।

(३)

एक दिन तपस्वी नरोत्तम भिक्षा माँगने के लिने नगर में गये। भिक्षुक को हर प्रकार के अच्छे-बुरे, पापी-पुण्यात्मा, स्वस्थ

अस्वस्थ आदमी मिलते हैं। उन्हे उनके हर प्रकार के शब्दो और कटु वचनो को सहन करना पडता है। उन्हे उन वचनो को कडवी दवाई की भाँति पीना पडता है।

"भिक्षा दीजिये !" तपस्वी ने पुकार लगाई, पर कोई उत्तर न मिला।

यह किसी गृहस्थ का द्वार था। ऐसा लगता था, जैसे गृह-स्वामिनी किसी आवश्यक कार्य मे व्यस्त हो !

उन्होने फिर आवाज लगाई, "आपके द्वार पर एक तपस्वी भिक्षा के लिये खडा है। उसकी आवश्यकता की पूर्ति कीजिए। कुछ भोजन दीजिए।"

भोतर से फिर भी जल्दी कोई उत्तर न मिला।

तपस्वी को यो खड़े-खड़े कुछ अपमान जनक स्थिति अनुभव हुई। वे मन मे बड़े लज्जित हुए। उनका सोया हुआ क्रोध यकायक सर्प की तरह फुङ्कार उठा। क्रोधी व्यक्ति जब अपने इस विकार के चगुल मे फँस जाता है, तब मनुष्य हैवान बन जाता है।

इतने मे किसी नारी स्वर की आवाज आयी—

"भिक्षुक ! अभी कुछ देर और खड़े रहिए। इस समय मैं एक बहुत आवश्यक कार्य मे सलग्न हूँ।"

"क्या आवश्यक कार्य है वह।" क्रोधपूण स्वर मे तपस्वी नरोत्तम ने पूछा।

"म पति-सेवा मे लगी हुई हूँ। पति-सेवा धर्म का महत्व पूर्ण अङ्ग है। दाम्पत्य जीवन मे पति-सेवा सर्वोपरि धर्म है।"

"क्या कहा, जरा और स्पष्ट करो।" क्रोध से वे पूछने लगे। नारी बोली, "तपस्वी, क्या तुमने नही सुना—

ई युष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुपसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्या भूदो ते यन्ति ये अपरीष पश्यान् ॥
—ऋग्वेद १।११३।११

अर्थात् जो मनुष्य ऊषाकाल मे शयन से उठकर परमात्मा का ध्यान करते हैं, ईश्वर उन्हे बुद्धिमान् और धार्मिक बनाता है। जो पति-पत्नी परमात्मा की साक्षी मे मधुर सम्बन्ध बनाये रहते है, उन्हे भगवान् सुखी रखते हैं।

यह सुनकर तपस्वी क्रोध मे और भी लाल हो उठा ! उधर गृह-स्वामिनी कहे जा रही थी—

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाला भद्राभद्र क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवदाव्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्यु ॥
—ऋग्वेद १।१२३।१३

तपस्वी, जिस प्रकार प्रातःकालीन वेला प्राणवर्द्धक होती है, उसी प्रकार पत्नी पति की यथावत् सेवा करके परिवार की सुख शान्ति एव सुव्यवस्था को बनाये रहती है। इस समय पतिसेवा भिक्षुक को भिक्षा देने से बड़ा धर्म है इस धर्म कार्य के बाद आपको भिक्षा देने आती हूँ। क्षमा करे, थोडा विलम्ब लगेगा आपको। कुछ देर ठहरे रहिए। गृहस्थ की यही योग-साधना है।

तपस्वी को यह तर्क सुनकर और भी क्रोध आ गया। क्रोध में उसकी विवेक बुद्धि पंगु हो गयी।

इतने मे फिर उस गृहपत्नी की आवाज आयी, "तपस्वी को चाहिये कि क्रोध को तप से अपने वश मे रखे"

तपस्वी नरोत्तम का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। अब गृह-पत्नी दहलीज मे खड़ी थी और तपस्वी के आवेश से उद्विग्न चेहरे को ध्यान से देख रही थी।

"आप जानती नही मैं कौन हूँ ?" अहङ्कार से उन्होने कहा—

"तपस्वी आपकी आध्यात्मिक शक्ति से मैं पहले से ही परिचित हूँ।" आश्चय से तपस्वी ने पूछा—"वह किस तरह !

"आप वही हैं न जिन्होने अपने क्रोध से पक्षो को जलाकर भस्म कर दिया था "

'ओह ! ता तुम मेरी आध्यात्मिक शक्ति को जानती हुई भी यो मेरा अपमान कर रही हो ?" अहङ्कार-भरी आवाज में वह चिल्ला उठा।

'क्रोधित मत होइए तपस्वी जी, मे पक्षो नही हूँ, जो आपके क्रोध से जल जाऊँगी।' शीतल स्वर मे गृहपत्नो ने उत्तर दिया—

स्त्रो के वचन थे या विष मे बुझे हुए तीक्ष्ण तीर !

तपस्वी को बडा आश्चर्य हुआ कि पक्षी के जलने की गुप्त घटना इसे किस प्रकार मालूम हो गई।

क्या इसके पास भी कोई सिद्धि है ?

यह मेरी विकसित आत्मशक्ति से भी नही घबड़ा रही है ? मेरी परवाह न कर यह पति की सेवा मे सलग्न है। उस सेवा के वाद ही कुछ करने को कहती है। इसके सामने मैं हार गया हूँ।

अवश्य हो गृहस्थ जोवन मे डूबी हुई यह कोई महान् आत्मशक्ति सम्पन्न देवो है ! इसने मुझसे भी बडो सिद्धि प्राप्त कर रखी है। तभी तो इसकी शक्ति के सामने मेरी शक्ति की एक भो नही चली है। मैं पराजित हुआ और यह मुझसे ऊँची उठ गयी। आज मुझे नोचा देखना पड रहा है, मुझे इसकी समुन्नत

शक्ति का रहस्य मालूम करना चाहिए—यह सोच विचार कर तपस्वी ने गृहपत्नी को हाथ जोड़कर मस्तक झुका कर प्रणाम किया।

"हे देवि ! मैं तुम्हारे सामने लज्जित हूँ। तनिक बताओ कि तूमने मुझसे भी अधिक शक्तिशाली सिद्धि-घर परिवार मे रहते हुए कैसे अर्जित करली है ! मैं तो इतनी घोर तपस्या करने के बाद केवल क्रोध से पक्षी जलाने मात्र की सामर्थ्य प्राप्त कर सका हूँ, पर तुम्हारी शक्ति मुझसे अधिक है। भूत और भविष्य की बाते जानने की सिद्धि मुझमे अभी तक नही है, बल्कि इस दृष्टि से तो तुम मेरी गुरु हो।"

वह नारी सुनती रही। बोली—"आप अपने कथन मे अतिशयोक्ति कर रहे है, तपस्वा जी।"

"नही नही, मैं सत्य ही कह रहा हूँ। तुम्हारी आत्मशक्ति मेरी अपेक्षा कही अधिक है। वे साधन ऊँचे है, जिन साधनो से तुमने यह अद्‌भुत शक्ति प्राप्त की है।"

"आप तो बहुत बढा-चढा कर बाते कर रहे है।"

"नही, मैं तो अब तुमसे कुछ सीखने का जिज्ञासु हो गया हूँ। कृपा कर मुझे बतलाओ, वे साधन कौन से है, जिन साधनो स तुम्हे यह अद्‌भुत सिद्धि प्राप्त हुई हे ?"

"क्या सचमुच आप मेरा दृष्टिकोण जानना ही चाहते है ?"

"हॉ, हाँ इसमे सन्देह क्या है ! तुम्हे गुरु मानकर मै कुछ नया अनुभव प्राप्त करना चाहता हूँ। चाहे तुम विद्या, ज्ञान, बुद्धि और आयु मे मुझसे छोटी ही हो, किन्तु योग-साधना मे मुझसे बढ-चढकर रही हो। देवि ! वे साधन कौन से हैं, जिनसे तुम्हे यह चमत्कारिक शक्ति मिली है ?"

"जब आप सच्ची जिज्ञासा ही व्यक्त कर रहे हैं, तो सुन लीजिए !"

"हाँ, अपना रहस्य स्पष्ट करो ।

"हे तपस्वी ! मैं सच्चे मन, कर्म, वचन से पति सेवा में लगी रहती हूँ। पति की सुख-समृद्धि और कल्याण-कामना, मधुर आचरण, घर की शान्ति और सुव्यवस्था, सक्षेप में अपने पत्नीरूप मे कर्त्तव्यो का पालन—यही मेरी साधना है। मैं तो यह जानती हूँ—

यो व शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह न ।
उशतीरिव मातर ॥

—यजुर्वेद ११।५१

अर्थात् माता-पिता जिस प्रीतिभाव से अपने बच्चो की सेवा करते है, वैसे ही प्रीतिपूर्वक सेवा स्त्रियाँ अपने पतियो की किया करे। शीतल जल से जैसे प्यासे व्यक्ति को तृप्ति मिलती है, वैसे ही प्रेमपूर्ण व्यवहार से दाम्पत्य-जीवन सन्तुष्ट बना रहता है।

इषे राय रमस्व सहसेद्युम्नऊर्जे अपत्याय ।
सम्राऽसि स्वराऽसि सारस्वतौ त्वात्सौ प्रावताम् ॥

—यजुर्वेद १३।३५

तपस्वी जी, गृहस्थ धर्म का तकाजा है कि विवाह के उपरान्त पति-पत्नी प्रीतिपूर्वक रहे। विद्यावान् तथा धनवान बनें। श्रेष्ठ गुणो को धारण कर एक दूसरे की मङ्गल कामना करें। धर्मानुसार सुसन्तति को जन्म दे। इस प्रकार वे सुखमय जीवन जीते रहे।।

बस, यही मेरी गृहस्थ मे योग साधना का रहस्य है। यह

मेरा व्यावहारिक आध्यात्मवाद है जिसे मैं कर्त्तव्य समझ कर पालन करती हूँ। इस दैनिक कर्त्तव्य पालन के कारण ही मुझे यह सिद्धि मिली है!"

"आज मुझे नया ज्ञान प्राप्त हुआ!" तपस्वी नरोत्तम लज्जा से पानी-पानी हो गया।

वे सोचते-विचारते ध्यान मे मग्न वापिस लौट आये। उन्हे अपने क्रोध और क्रूर स्वभाव पर बडी लज्जा आ रही थी और रह-रह कर इस कथन की सत्यता अनुभव हो रही थी :—

नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात्।
विद्या मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादत.॥
आनृशस्यं परो धर्म. क्षमा च परम बलम्।
आत्मज्ञान पर ज्ञान सत्य हि परम हितम्॥
(ना० पूर्व ६०।४८—४९)

मनुष्य को चाहिये कि तप को क्रोध से, सम्पत्ति को डाह से, विद्या को मान अपमान से और अपने को प्रसाद से बचावे। क्रूर स्वभाव का परित्याग सबसे बड़ा धर्म है। क्षमा सबसे महान् बल है। आत्मज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है और सत्य ही सबसे बढकर हित का साधन है।

तपस्वी नरोत्तम का अहङ्कार जाता रहा।

गृहस्थ में भगवद्-भक्ति और लोक सेवा दोनों सम्भव हैं।

'हाय ! पतिदेव अपनी आँखो से मैं आपको कैसे रूप में देख रही हूँ। भगवा वस्त्र धारण कर आप तो भिक्षुओ की भाँति रहने लगे हैं।' आर्त स्वर मे राजा जनक की महारानी कह उठी।

'हाँ प्रिये ! मुझे इस गृहस्थ से वैराग्य हो गया है। राज-धर्म से अलग हो रहा हूँ।' राजा जनक के स्वर मे नैराश्य था। वे सन्यास लेने जा रहे थे।

'उफ् पतिदेव ! आप तो अपने कुशल राज्य के सारे कर्त्तव्य कर्म ही छोड बैठे है। वैरागी साधु वृत्ति के व्यक्ति बन गये है। देखते-देखते इतना परिवर्तन ! मैं तो हतबुद्धि हो रही हूँ।'

'रानी, भला एक वैरागी को, जो ससार छोडने जा रहा हो, राजधर्म से क्या मतलब ? शासन करना एक प्रकार का क्रूर कर्म है। छल, छद्म, झूंठ, फरेब, हिंसा, सजाएँ लाखो तरह के निन्दित प्रपञ्च और असत्य व्यवहार का निकृष्ट जीवन जीना पडता है। रात-दिन राज्य को छोटी-छोटी बातो और स्वार्थमयी उलझनो के लिए लडते-झगडते रहना पडता है। दुष्ट लोग षड्-यन्त्र करते हैं, मारकाट और बर्बरता होती है, और अव्यवस्था का सारा दोष मुझ पर लगता है !' राजा ने तर्क प्रस्तुत किया।

'सो तो आप ठीक कह रहे हैं, राजन् !'

ऐसी दुष्टता, घृणित षडयन्त्र, दुरभिसन्धि और झूंठ फरेब के

पापी जीवन से तो यही बेहतर है जो मैं कर रहा हूँ अर्थात् राज्यशासन की जिम्मेदारियो से मुक्ति लेकर भिक्षुको की भाँति माँग कर मुट्ठी भर सेके हुए जो खाकर रहना ! बस, भगवद्-भक्ति मे शेष जीवन लगाना ! मुझे इस बड़े राज्य से क्या मतलब ?'

'हाय, एक राजा को यो भिक्षुको की भाँति नही देख पाती पतिदेव ! जिस अधिपति को राजसी महल मे छप्पन प्रकार का भोजन परोसता रही हूँ, उस उच्च स्तर के व्यक्ति को भिक्षुकों की भाँति माँग कर मुट्ठो भर सेके हुए जौ खाकर दिन काटना मेरे नेत्रो से देखा नही जाता । हाय, आज आपको वैरागी के रूप मे यो विपिन्न देखकर छाती फटती है । यह आपको क्या हो गया ? 'रानी के नेत्रो मे आंसू छलछला आये ।'

'रानी, तुम राज्य शासन मे मेरे हाथों होने वाले क्रूर हिंसक कर्मो को नही जानती । कितनी सजाएँ ! कितने दमन चक्र ! न जाने कितनो को कारावास मेरे हाथो हुआ है !' राजा जनक पश्चाताप भरे आर्त स्वर मे कह उठे ।

अपने पति को यो विक्षुब्ध मनःस्थिति में देखकर राजा जनक की रानी को बडी वेदना हुई । उन्हे अनायास ही यह उक्ति स्मरण हो आई—

नास्ति भार्या समतीर्थं नास्ति भार्या समसुखम् ।
नास्ति भार्या समपुण्य तारणाय हिताय च ॥

अर्थात् (सङ्कट के समय) पुरुष के हित व कल्याण के लिए उसकी धर्म पत्नी से बढकर न कोई तीर्थ है न पुण्य ! विदुषी पत्नी की सलाह के समान उपकारी सुख अन्यत्र मिलना असम्भव है ।

यह सोचकर रानी मन ही मन कहने लगी, 'राजा इस समय अपने राजकीय कर्त्तव्य कर्मो को छोडकर भिक्षुको की भाँति अनुचित रूप से वैराग्य पथ की ओर अग्रसर हो रहे हैं। यह वैराग्य कर्त्तव्य मे भागना ही तो है। यह इस समय अनुचित है, क्योकि इसके मूल मे कायरता और पलायन प्रवृत्ति छिपा हुई है।

शास्त्रो का कथन है कि—

> भार्यापत्युर्व्रत कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्।
> ससारोऽपि हि सार. स्याद दम्पत्योरेक क ॥

अर्थात् यदि पति पत्नी के हृदय एक हो, तो यह असार ससार भी सारवान् बन सकता है। (सकट कष्ट और मुसीबत की घडी दूर हो सकती है) यहाँ इसी धरती मे ही स्वर्ग के दर्शन करने हो, तो हर सद्गृहस्थ को अपने दाम्पत्य जीवन मे स्नेह, आत्मीयता और अभिन्नता की भावना पैदा करनी होगी।

'इस दृष्टि से इस सकटमय स्थिति मे मेरा यह धर्म हो जाता है कि राजा को पलायन प्रवृत्ति से बचाना चाहिए। उन्हे राजकर्म की ओर पुन. प्रवृत्त करना चाहिए।'

यह सोच विचार कर राजा जनक की रानी ने निश्चय कर लिया कि वे राजा को गृहस्थाश्रम की महत्ता समझायेगी। कम शिक्षिता होते हुए भी अपनी आत्मीयता से अभावपूर्ण जीवन मे कर्त्तव्य बोध करायेगी।

वे राजा जनक के पास गई। राजा वैराग्य के विचारो मे डूबे एकान्त भगवद् भक्ति की बातो मे उलझ रहे थे।

दिवा स्वप्न से यकायक जागकर वे पूछने लगे, 'देवि! आज इस समय यो व्यग्र और चिन्तित-सी क्यो आ खड़ी हो। क्या कोई अति आवश्यक बात कहनी है? मैं तो आज भगवद्भक्ति

के लिए गृहस्थ का जजाल त्यागने जा रहा हूँ। भजन-पूजन चिन्तन इन गृहस्थ के पचड़ा मे पड़े रहने से नही हो पाते।'

'राजन् ! इसी विषय में कुछ निवेदन करना चाहती हूँ।'

'कहिये, क्या कहना है ?'

'राजन्, गृहस्थ, भगवद्भक्ति या लोकोपकार में बाधक नही हैं।'

'क्या कहा ? क्या भगवद् भक्ति करने मे गृहस्थ रुकावट नही है रानी ?' राजा जनक उत्सुकता पूर्वक पूछने लगे, 'रानी, तुम तो बडी विदुषी हो। सुलक्षणा साध्वी स्त्री और श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष के सयोग से घर स्वर्ग में बदल जाते है—यह बात तुम्हारे संसर्ग में मैंने प्रत्यक्ष अनुभव की है। क्या कहना चाहती हो ?'

राजन् ! आपने मेरी मुद्रा से ठीक ही मेरे मनोभावो को परखा है। आपके वैराग्य को देखकर मैं क्लान्त हूँ।....रुष्ट भी हूँ....!'

'आश्चर्य है, आप मुझसे रुष्ट है ! ऐसा पहले तो कभी नही हुआ !'

'आपसे नही, मैं आपके असमय के वैराग्य से नाराज हूँ... आपकी कायरता से !'

'मुझे दोषी ठहराती हो, भद्रे !'

'राजन् ! कर्त्तव्य कर्मो को छोडकर आप भिक्षुको की भाँति रहने लगे हैं ! आप जैसा सुयोग्य राजा ...छि छिः ...एक वैरागी ....भिक्षुक !'

'मैं वैरागी होकर निश्चिन्त भगवद् भक्ति करूँगा, रानी ! वही तो मानव जीवन का उद्देश्य है।'

'लेकिन यह वैराग्य आज की परिस्थितियों में आप जैसे राजा के लिए उचित नही है।'

'क्यो, 'दु खमय जगत्' क्ष णभगुर जगत् इस बात को तुम नही मानती हो क्या '

'राजन्! आपका यह असामयिक वैराग्य ···यह पलायन ··· वन भिक्षा वृत्ति ···हाय, यह सब आपके राजधर्म के विरुद्ध है। आपके ऐसे व्यवहार से अतिथि देवता, ऋषि और स्वग मे देखते हुए आपके पितृगण बहुत नाराज हैं। वे चाहते हैं कि आप राजधर्म का पालन करें। यह कर्त्तव्य छोडने से उन्होने आपको छोड दिया है।

'लेकिन समझ नही पा रहा इससे उनकी क्या हानि हुई? भगवद् भक्ति के लिए तो दुनिया और गृहस्थी छोडनी ही पडती है।'

तानक उनकी भावनाओ की तो कल्पना कीजिए राजन्! जो आप पर आशा लगाये बैठे हैं। हाय, आपके जोवनकाल मे ही आपकी माता मानो पुत्र विहीन हो गई है।'

अरे तुम तो भावावेश मे रोने लगी!'

'मुझमे अधिक आपकी माता रो रही है। उनके आँसू रोके नही रुक पा रहे हैं!'

'ऐपा मोह क्यों भला?' राजा जनक ने पूछा।

थोडी रानी कुछ याद करती रहो। फिर जैसे काले आकाश मे बिजली चमकती हे, वे कहने लगी—

न यस्य सातुर्ज नितोखारि।
न मातरा पितरा नू चिदिष्टौ॥
अधा मित्रो न सुधित पात्र को।
अग्निर्दीदाय मानुसीपु विक्षु॥
(ऋगवेद ४।६।७)

राजन्, तात्पर्य यह है कि जिस पुत्र के विद्यमान रहते हुए भी माता और पिता को दु ख मिलता है। और पर्याप्त सत्कार

नही होता है, वे अभागे सदैव दु ख और पीड़ एँ ही पाते है। माता पिता के आशीर्वाद से पुत्र-पुत्री सुखी व चिरंजीव होते हैं। अतः माता-पिता की सेवा करना, उनके हर प्रकार के दु खो को दूर करना ही आपका धर्म है।

'लेकिन तुम रोये क्यो जा रही हो, रानी ?' राजा जनक ने अपनी पत्नी के आँसू पोछते हुए पूछा।

'नाथ, मैं तो आपके यों वैरागी बनने से ही पतिविहीन हो गई हूँ …हाय, पतिविहीना की समाज मे कैसी दुर्गति होती है ?'

'मेरे वैराग्य धारण से तुम्हे इतनी ठेस लगेगी, यह मुझे मालूम न था।'

'पतिदव, वेदो का यह कथन क्या आप भूल गये—

'अनुव्रत' पितु पुत्रो माता भवतु समना।
जाया पत्ये मधुमती वाच वदतु शान्तिवाम् ॥

(अथर्ववेद ३।३ २)

आदर्श गृहस्थी वह है जिसमें पुत्र-माता-पिता के आज्ञाकारी हो, दूसरी आर माता-पिता भी बच्चो के हितकारी हो। पति और पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध मधुर और सुखदाई हों—ऐसे ही परिवार सदैव फलते फूलते और सुखी रहते है। खेद के साथ कहती हूँ राजन्, ऐसे फलते-फूलते और समृद्ध परिवार को त्याग कर आप अनुचित समय कर्त्तव्य कर्मों का छोडकर भिक्षुक की भाँति व्यर्थ हो वैरागी बन रहे है।

जब राजा जनक को कोई उत्तर देते न बना।

वे एक नई तरह सोचने लगे कि शायद उनकी धम पत्नी जो कह रहा है, उसमें सत्यता है। क्या गृहस्थाश्रम मे रहकर भगवद्-भक्ति नही हो सकती ? क्या गृहस्थ आध्यात्मिक उन्नति मे बाधक है ? क्या वे अपनी मौजूदा राजकीय स्थिति में रहकर

समाज, उपेक्षित, पीडित, निराश्रित की कुछ सेवा नही कर सकते ? वे विचारो मे डूबे हुए थे ।

'राजन्, क्या सोच रहे हैं आप ?' रानी ने पूछा ।

'मैं सोच रहा हूँ कि क्या मैंने सर्वत्याग कर लिया है ? मैं सर्वत्याग का उद्देश्य ही तो पूर्ण कर रहा हूँ ।'

राजन्, फिर सोचिये, आप अभी तक सुविधाजनक ऊँची स्थिति मे थे । जिसमे रहकर दीन दुखियो को अधिक सेवा कर सकते । अभावग्रस्त, पाड़ित, शोषित, भूखें अब तक आर्त होकर आपके पास क्षुधा निवारण के लिए आया करते थे । आज सब कुछ छाडकर भिक्षुक बनकर आप स्वय ही दूसरो के आगे मुट्ठी भर सेंके हुए जौ के लिए हाथ फैला रहे हैं ।'

'लेकिन मुझ तो सर्वत्याग का उदाहरण प्रस्तुत करना है···· ।'

'राजन्, जिद मत कीजिए । आपने सर्वस्व त्याग किया है, पर मुट्ठा भर जौ के लिए आपको दूसरे की कृपा पर जीना पडता है । जब मुट्ठी भर भोजन की आवश्यकता आपको बनी हुई है, तो पूर्ण स्वार्थ त्याग कहाँ हुआ ?'

हाँ, तुम्हारे इस तर्क से ता सचमुच स्वार्थ-त्याग नही हुआ है ।'

'यही तो बात है । स्वार्थ त्याग केवल कल्पना की बात है । एक भावना मात्र है । कोई आदमी समाज और ससार मे रहकर पूरा त्याग कर ही नही सकता और जब पूरा त्याग नही हो सकता, तो ऐसे अधूरे त्याग मे और राज्य के त्याग मे भेद कहाँ है ? केवल थोडे बहुत मात्र का अन्तर है । सच जानिये, गृहस्थ में रहकर ही आप अधिक लोकोपकारी, उपयोगी और स्थायी जन-हित के कार्य कर सकते हैं ।

"ऐसा क्यों है ?' जनक पूछने लगे ।

'राजन् ! एक राजा की हैसियत से आपके पास लोक-कल्याण और जन सेवा के विपुल साधन है। रुपये पैसे की कोई कमी नही है । जो अभाव-ग्रस्त वास्तव मे जिस रूप में आपकी सेवा और सहायता का इच्छुक है वह उसी प्रकार की सहायता आसानी से पा सकता है । हर कोटि के कर्मचारी,तैयार अनुचर, चिकित्सक इत्यादि जनता और गरीबो की सहायता के लिए पल भर मे उपस्थित हो सकते हैं । मानवीय आदर्शों की रक्षा यहाँ रहकर आप सरलता से और दृढता पूर्वक कर सकते है । दूसरी ओर सत्य, न्याय, प्रेम द्वारा आसुरी प्रवृत्तियो को दबा सकते है । उच्च आदर्शो, तथा नैतिक मूल्यो की स्थापना के लिए एक भिक्षुक धर्म युद्ध कसे लड़ेगा ?'

इन विचारो का गहरा प्रभाव राजा जनक पर पड़ा । वे सोचे जा रहे थे । रानी को लगा कि राजा का गुप्त मन उनके तर्को को ग्रहण कर रहा है । राजधर्म में खेंच लाने मे वे सफल हो रही हैं ।

रानी ने फिर कहा, 'राजन्, एक प्रश्न पूछूँ ?

जैसे जाग्रत स्वप्न से राजा जग पडे हो । कहने लगे,'कहिए, क्या पूछना चाहती हैं ?'

भला बताइये तो, एक मनुष्य दान करता है और दूसरा सदा दान लेता रहता है—इन दानो मे दान देने वाला श्रेष्ठ है, या न दान लेने वाला ?'

'दान देने वाला ही श्रेष्ठ है ।'

'आपने ठीक कहा । फिर दान देने की स्थिति मे रहना, न दान दे सकने की विपन्नावस्था और अभाव मे रहने से ज्यादा अच्छा है न ?'

'हाँ, सो तो है ही। दान देने वाला ही ज्यादा अच्छा है।,

'राजन्, अन्न से ही प्राणो की रक्षा होती है। अतएव अन्न-दाता ही प्राण दाता है। समाज और धर्म-शास्त्रो में दान देने वाले का सबसे अधिक महत्व है। सोचिये, यदि समाज मे कुछ श्रमी सम्पन्न दान देने वाले न हो, तो असख्य दीन हीन भूखे ही मर जाँय, न जाने कितनो के आश्रय छिन जांय, वे सहारो के आश्रय ही टूट जाँय। आपके गृहस्थाश्रम त्याग कर भिक्षुक बन जाने से यह सब सहारे नष्ट भ्रष्ट हो जायेंगे।'

'यह तो तुमने बड़े काम की बात कही कि त्यागी, तपस्वी, भिक्षुक, साधु, सन्यासी लोकसेवी गृहस्थो के ही सहारे पर जी रहे हैं।'

'हाँ, राजन्! यह समाज छद्मवेशीधारी दुष्टो से भरा हुआ है। कुछ आलसी लोग तो दान लेने और उदर पोषण करने के लिए अपने आपको असमर्थ और दरिद्र बताते हैं। झूठे बहाने कर साधु-समाज को बदनाम करते हैं। वे भगवद् भक्ति के लिए नही, भिक्षाजीवी बनकर जी रहे हैं। लाखो व्यक्ति साधु और ब्राह्मणो जैसे गेरुआ वस्त्र पहिन कर गृहस्थो की कृपा पर जीवित रह रहे है। होना तो यह चाहिये कि ये साब सधु सन्यासी अपना बहुमूल्य समय जनता की सेवा मे लगाते और ऐसे नि.स्वार्थ लोक-सेवियो को भिक्षा देने मे आत्म-सतोष भी होता, पर लाखा साधुवेश धारी दुष्ट आलसी भोगो की खोज म लगे हुये हैं। दूसरी ओर कठोर साधन वाले असली तपस्वी मर रहे हैं। महात्माओ का भरण पोषण सकट मे पड गया है।'

'क्यो सकट में पड़ गया?'

'गृहस्थ की कमाई से ही तो भिक्षुक पल सकते हैं। यदि

गृहस्थ उपार्जन न करे। बचा कर न रक्खे तो भिक्षुकों को कौन पाले ?'

'तब तो गृहस्थाश्रम का बडा महत्व है ?

'हाँ, राजन् भगवद्भक्ति, लोक सेवा, समाज के उत्थान आदि शुभ कार्यों के लिए गृहस्थ आश्रम बडा महत्वपूर्ण है। मनुष्य अपनी मनोवृत्तियो से साधु बनता है भोगो से निवृत्ति हो सच्चे साधु की पहिचान है। जो संयमी मनुष्य आसक्ति रहित है, रागद्वेश से दूर है, शत्रु और मित्र मे सदा समभाव रखता है और ममता, लोभ, मोह, वासना के सारे बन्धनो से मुक्त है, वह गृहस्थाश्रम मे रहने पर भी वास्तव मे साधु हो है… पतिदेव,साधुवृत्ति विकसित करने के लिये गृहस्थ छोड़ने की जरूरत नहीं है बल्कि नियम, सयम, सद्चिन्तन और सद्कार्यों मे अधिक समय देने की है।'

'ओह ! रानी तुमने मुझे जगा दिया ! मै अनुचित ही राज-धर्म के विरुद्ध वैराग्य धारण कर रहा था। कर्त्तव्य कर्मों से डर कर कायरो की भाँति जीवन युद्ध से भाग रहा था।'

'हाँ, पतिदेव ! गृहस्थ मे मैं सहयागी के रूप मे आपके साथ रात-दिन हूँ। यहाँ मेरे तथा अन्यो के सहयोग से, सेवा,जनहित, सदाचार, भगवद्भक्ति का ढेरो कार्य हो सकता है। फिर आप जैसे राग-द्वेष से दूर आसक्ति रहित राजा को तो और भी अनेको सुविधाएँ प्राप्त हैं। भगवान की भक्ति का सर्वोत्तम रूप गिरे हुए समाज का बौद्धिक, नैतिक और मानसिक रूप मे विकास करना है।'

अब राजा जनक अपने में एक हलकापन और नई प्रेरणा का अनुभव कर रहे थे।

पत्नी के लिए पति जीवन की अमूल्य धरोहर है।

आज राजधानी मे प्रभात से ही सर्वत्र बडी हलचल है···हताश भरे उच्च स्वर···भयभीत हिन्दू प्रजा···स्त्रिया ही स्त्रिया··· और सभी हिन्दू स्त्रियो के सिर पर छोटी बडी नाना आकार-प्रकार की तरह-तरह के वस्त्रो मे बँधी गठरियाँ नजर आ रही है। कई स्त्रियाँ गठरियो के भारी बोझ से दबी जा रही है। कई अशक्त वृद्धायें बोझ से काँप रही हैं, पर फिर भी अपने जर्जर शरीर पर बोझा उठाये हुए है। ओफ! इतनी भीड!

बडी अजीब सी भीड है यह! इतनी भारी संख्या मे हिन्दू स्त्रियाँ और उनके सिर पर इतनी गठरियाँ—ऐसा अनोखा दृश्य तो कही देखा न सुना।

लेकिन इन भगोडी हिन्दू स्त्रियो के जल्दी-जल्दी भागने का क्या कारण हो सकता है? क्या इन्हे इस नगर से निकाला जा रहा है? अथवा इन पर कोई भारी मुसीबत आ पडी है कि स्वय ही प्राण बचाने को बदहवास यो भागी जा रही हैं।

चमत्कार से परिपूर्ण है यह जुलूस! इतनी बडी सख्या मे असख्य औरते! भय से आतुर, चिन्तित और म्लान! अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए परेशान! यह क्या रहस्य है?

× × ×

एक बार मुसलमान बादशाह ने एक हिन्दू नगर पर चढाई कर दी। धन सम्पपत्ति और इस्लाम धर्म को फैलाने के लालच मे

बहुत बडी सेना लेकर आँधी-तूफान की तरह मुसलमान सेनाओं ने उस छोटे-से हिन्दुओ के शान्ति प्रिय नगर को चारो ओर से घेर लिया।

एकाएक आक्रमण! और इतनी विपुल संख्या! हिन्दू उसके लिए तैयार न थे! विनाश की काली छाया आ पड़ी। मुस्लिम अत्याचारी दुष्टता से जल्दी-जल्दी उस नगर को लूट-खसोट लेना चाहते थे। उसमे धन-सम्पत्ति कुछ भी न छोड़ना चाहते थे। हर एक मुस्लिम सिपाही चाहता था कि अधिकतम धन सम्पत्ति हथिया ले, मालामाल हो जाय और सम्भव हो तो कुछ पैसा सग्रह भी कर लें। हिंसा एक राक्षसी वृत्ति है। उसी का ताण्डव यहाँ नजर आया!

मुस्लिम सेनाएँ तरह-तरह के नवीनतम अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थी। आकाश मे घुमड़ते काले डरावने बादलो की तरह इन क्रूर और हिंसक सेनाओ ने मुट्ठीभर हिन्दू नागरिको को अपने खूनी पजो मे कस लिया! भयानक विपत्ति आ पड़ी उन पर!

हिंदू नगर निवासी इस अप्रत्याशित विपत्ति से विक्षुब्ध हो उठे! एकाएक इतनी बडी सेना से युद्ध करने का साहस न हुआ। उन्होने सोचा, 'शायद यह हमारी असहाय अवस्था पर तरस खाकर हमे जीवित छोड़ देंगे!' उधर दुष्ट यवन हर प्रकार के अत्याचार करने पर तुला हुआ था। वह एक भी हिन्दू को जीवित न छोडना चाहता था।

पर ईश्वर की लीला विचित्र है! कभी-कभी नास्तिक और अत्याचारियों के मन मे भी दया और सहानुभूति जाग्रत् हो उठती है। उसके हृदय के छिपे कोने से ईश्वरीय विभूति चमकती है। सृष्टि का सारा सौन्दर्य, पृथ्वी की सम्पन्नता, सागर

का भण्डार, वनस्पतियो का स्वाद, ग्रह-नक्षत्रो की शक्ति, ऋतुओ का आनन्द और मनुष्य की दया—उस परम पिता परमेश्वर के ही चमत्कार हैं।

इस निर्दयी यवन के मन में भी भगवान् जगे। उस क्रूर मुसल्मान शासक के मन मे दया की एक दिव्य किरण उदित हुई। उसने सोचा, 'हिन्दू पुरुषो से मैं जरूर नाराज हूँ, पर उनकी औरतो ने भला मेरा क्या बिगाडा है जो उन्हे दण्ड दूँ? उन पर रहम करना मेरा कर्त्तव्य है। पर दया का तरीका क्या हो? कैसे उनमे हमदर्दी दिखाई जाय? वे बच जाये और हिंदू पुरुष ही सजा पायें, ऐसा क्या रूप हो सकता है? नारियो को तो क्षमा करना ही ठीक रहेगा।'

बहुत देर तक वह विचारो में खोया रहा।

सोचते-सोचते उसके हृदय में जगे भगवान ने उस हिंसक को एक दिव्य प्रेरणा दी, जैसे राक्षसी वृत्तियो के अन्धकार मे एक शुभ्र ज्योति विकीर्ण हुई।

बादशाह ने एक फरमान जारी किया—

"प्रातःकाल सब हिन्दू स्त्रियाँ अपनी सबसे बहुमूल्य वस्तु गठरियो मे बाँधकर शहर के बाहर निकल जाये। एक गठरी के अतिरिक्त और कुछ ले जाने नही दिया जायगा। रात मे अच्छी तरह सोच लेना चाहिये कि कौन-कौन कीमती वस्तुएँ बचाना चाहती हैं। सुबह वे अपने कीमती वस्त्र आभूषण या और बहुमूल्य चीजे बखूबी ले जा सकती है, पर पुरुष एक भी नही निकलना चाहिये।"

यह शाही फरमान सुनकर नगर मे हलचल मच गयी। कुछ राजा की दयालुता की प्रशसा कर रहे थे, कुछ कीमती वस्त्रा-

भूषण इकट्ठे कर रहे थे, तो कुछ स्त्रियाँ पुरुषो की खैर मना रही थी। बडी खलबली मची थी परिवारो मे !

सब की मन·स्थिति बडा ही विक्षुब्ध थी। क्य'-क्या चीजे बचायी जायें ? कौन सी चीज सबसे कीमती है ? मुसलमानो से पहले किसकी रक्षा करना ठीक रहेगा ? तुलनात्मक दृष्टि से कौन वस्तु बेहद जरूरी है ?

रात भर नगर मे बडो हलचल रही। भाग-दौड़ !! वस्तुओ को बाधने मे व्यस्तता ! बच निकलने की आतुरता।

दूसरे दिन प्रभात की सुनहरी रश्मियाँ क्षितिज पर चमकने लगी। सुबह से ही शहर के बाहर स्त्रियो को बडी भीड थी। सभी बडो व्यग्र थी। कुछ की गठरियां छोटी, तो कुछ की गठरियाँ बडी थी। कोई उन्हे उठा नही पा रही थी। किसी ने कठिनता से बोझ को उठा रक्खा था और पाव काँप रह थे। वे उन गठरियो मे अपना कीमती सामान छिपाये भागने को चिन्तित थी। सभी को अपनी सम्पदा की रक्षा का मोह होता है।

'अहह ! ये स्त्रियाँ अपनी-अपनी बहुमूल्य चीजो को गठरियों ले आयी हैं, ठीक हैं। मैंने स्त्रियो को सजा से मुक्त किया है।' मुसलमान राजा ने कहा।

पर फिर उसके मन में एक शङ्का उठी—

'लेकिन ये गठरियाँ इतनी बड़ी-बडो क्यो है ? और ये भारी-भारी भी दीखती है, क्योकि ये स्त्रिया इन्हे उठा नही पा रही हैं। जरूर इनमें कुछ भारी चीजें हैं—सोना, चाँदी, आभूषण, कोई और भारी कीमती वस्तुएं ! आखिर ऐसी क्या कीमती चीजे भर लायी है इनमे देखना चाहिये।'

'बादशाह सलामत ! इनमें देखना चहिये क्या छिपा है ?'

डरते-डरते एक नौकर ने सुझाया। बादशाह पहले से ही छिपी चीजो को देखने को उत्सुक था। शायद कीमती हीरे-जवाहरात, माणिक, मोती, सोना, चाँदी या आभूषण लूटने का मौका मिले।

फिर क्या था, बादशाह ने हुक्म दिया।—इन गट्ठरो को जमीन पर रख दो। बिना जँचवाये इन्हे कोई न ले जा सकेगा। मुझे कुछ शरारत नजर आती है। देखना है तुमने क्या कीमती चीजे छिपा रक्खी हैं। यो तो सारा धन ही बाहर निकल जायगा।'

भयभीत हिरणियो की तरह बेचारी हिन्दू स्त्रियो ने गट्ठर एक-एक कर जमीन पर रख दिये और बादशाह की ओर उत्सुकतापूर्वक निहारने लगी कि क्या होता है।

'अच्छा, एक-एक कर इन गट्ठरो को खोलो। देखे इनमे कौन-कौन से कीमती गहने और वस्तुये है ? यह तो मालूम हो कि आप किन-किन चीजो को बहुमूल्य समझती हैं।' राजा ने हुक्म दिया।

हुक्म की देर थी। मुसलमान सैनिक गठरियो को जल्दी-जल्दी खोलने लगे। शायद कुछ कीमती गहने और कपड़े उठा सकें। कुछ माल हाथ लगे।

गट्ठर खोलने पर कोई भी कीमती चीजें सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात या बहुमूल्य वस्त्र न निकले। उसमे ऐसी कोई चीज न निकली, जिसे छीना-झपटा जा सके।

फिर उनमे क्या बँधा था ? वे कीमती चीजे क्या थी ?

बड़े आश्चर्य की एक घटना घटित हुई। बादशाह ने देखा, उनमे आदमी निकले। हाड-मांस के मनुष्य। कुछ जवान, कुछ प्रौढ और कुछ वृद्ध भी। आश्चर्यमय दृश्य था।

बादशाह की त्योरियां चढ गयी। उन हिन्दू पुरुषों की ओर सकेत कर कड़ककर वह बोला—'ओरतो ! क्या यही तुम्हारे आभूषण है ?'

स्त्रियाँ डर रही थी कि क्या उत्तर दे ? वे अपने-अपने पतियों को गटठर मे बाँधकर रक्षा की दृष्टि से ले आयीं थी। कोई जवाब न दे पा रही थी। बादशाह नाराज हो रहे थे।

'क्या वही तुम्हारे आभूषण हैं ? बोलती क्यो नही ?' फिर वही कड़क थी। 'इन्हे क्यो छिपाकर भाग रही थी ?' डरी हुई युवतियो मे से किसी की बोलने की हिम्मत न हुई। क्या उत्तर दे ?

चारों तरफ मृत्यु-जैसी चुप्पी छायी रही। सब एक दूसरे की ओर देख रही थी।

अन्त में एक साहसी हिन्दू वृद्धा बोली—'बादशाह सलामत ! हम हिन्दू स्त्रियों के लिए पति और पुत्रों से बढकर और कोई कीमती चीज नहीं है। हम पति के बिना सुख नही चाहती। बिना पति के स्वर्ग की कामना नही करती। बिना पति के धन का कोई मूल्य नही है—

सर्वतीर्थसमो भर्ता सर्वधर्ममस्य. पतिः ।
मखाना यजनात् पुण्य यद् वैभवति दीक्षिते ॥
तत् पुण्यं समावाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम् ॥

(पद्म०, भूमि० ४१।१४-१५)

'हमारे लिये पति में ही सब तीर्थ समाये हुए हैं। पति ही सर्व-धर्ममय है। यज्ञ और दीक्षा का जो पुण्य है, वह स्त्री को पति की पूजा से तत्काल प्राप्त होता है।'

यह सुनकर बादशाह सोच-विचार मे पड गये। उन्हे उसमे बडा सार तत्त्व दिखाई दिया। जितना सोचा, उतना ही चिंतन मे डूबते गये। ओह! कितनी ऊँची बात है यह।

कहाँ तो वे स्त्रियो का मजाक उड़ाने चले थे, कहाँ वृद्धा के वचनो ने उन्हे हैरत मे डाल दिया।

वृद्धा ने फिर आगे कहा—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रो भार्या तथैव च
यस्मिन्नेव कुले नित्य कल्याण तत्र वै ध्रुवम्।

स्त्रिया तु रोचमानाया सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानाया सर्वमेव न रोचते॥

(मनुस्मृति ३।६०।६२)

'बादशाह सलामत! हम हिन्दू यह मानते आये है कि जिस कुल मे पत्नी से पति और पति से पत्नी अच्छी तरह प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते है, एक दूसरे के लिये बलिदान और बड़े से-बड़े त्याग के लिए तैयार रहते हैं, उसी कुल मे सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहाँ उनमे कलह होती है, वहाँ दुर्भाग्य और दारिद्रय बना रहता है। स्त्री की प्रसन्नता से ही सब कुल प्रसन्न रहता है और उसकी अप्रसन्नता से सब अप्रसन्न और दु खदायक हो जाता है।' हमारे लिए पति मे सब तीर्थ समाये हुए हैं। वही सबसे बडी कीमती चीज है। इसीलिए सबने पहले अपने पतिरूपी सम्पदा की रक्षा की है। बिना पति के हिंदू नारी अपने को निर्जीव मानती है।

बादशाह ने विचार किया—'जहाँ महिलाये इतनी कर्त्तव्य-परायण, नि.स्वार्थ और पति के लिये सब कुछ बलिदान करने वाली हो, उस देश पर अधिकार नही जमाया जा सकता। वे

—

एक दिन जमे-जमाये राज्य को उलट देगी। पति-पत्नी जब एक दूसरे के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग और बलिदान करने लगते हैं, दु:ख मे साथ रहते है, बड़े-से बड़े सङ्कट का भी मिल-जुल कर सामना करते हैं तो विपत्ति कैसे टिक सकती है ? दुनियाँ के किसी मुल्क में पति-पत्नी में इतना निःस्वार्थ प्रेम, त्याग और बलिदान नही पाया जाता, जितना इन हिन्दुओ मे आज देखने को मिला है। कमाल है ! इनकी एकता भङ्ग नही की जा सकती और इसलिये इनको पूरी तरह काबू मे भी नहीं किया जा सकता।'

वह चुपचाप अपनी सेना लेकर वापस लौट गया। पत्नियाँ अपने पति के साथ हर्ष विभोर हो वापस आ गयी। यवन शाह उनके बलिदान, प्रेम, धैर्य और साहस को देख कर चकित रह गया था। सच कहा है—

मा भेर्मा सम्विक्थाऊर्जं धत्स्वधिषणे विड्वी सती वीडयेथा मूर्जं दधाथाम्। राप्मा हृतो न सोमः॥

(यजुर्वेद ६। ५)

अर्थात् पति-पत्नी आपस में ऐसा व्यवहार करे, जिससे इनका पारस्परिक भय और उद्वेग का भाव नष्ट हो जाय, दोनों की आत्मा की एकता बढे, विश्वास और उत्साह बना रहे। इससे गृहस्थाश्रम में ही स्वर्गीय सुख की अनुभूति होती है। दोष दर्शन की भावना दाम्पत्य जीवन का विष है। दोनो का एकता दुनियाँ की तमाम प्रतिकूलताओं को दूर कर सकती है।

जब रवीन्द्रनाथ के मानसिक संतुलन ने हत्यारे से भाव बदले

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपने पुस्तकालय मे निजी पत्रो का उत्तर दे रहे थे। वे अपनी व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओ के निदान में ऐसे ही उलझे हुए थे, जैसे रेशम की तहो मे लिपटा हुआ रेशम बनाने वाला कोडा। पूरी तरह अपने लक्ष्य में तन्मय! विचारो की पहेली मे उलझे हुए! कई और गुत्थियाँ उनके सामने थी। वे लेखन मे तन मन से सलग्न थे। आसपास वातावरण मे क्या हो रहा है, यह सब भूले हुए थे!

खट्! खट्!! यकायक उनका दरवाजा खुला। देखते हैं कि उनकी मेज के सामने एक अपरिचित क्रूर हत्यारे जैसी डरावनी शक्ल का एक आदमी क्रोध और आवेश की मुद्रा मे खड़ा हुआ है।

जो मक्खन-सी कोमल भावनाओ वाला कवि अपनी भाव-नाओ से उलझा हो और लिखने मे आसपास के वातावरण को भूला हुआ हो, उसे दूसरे ही क्षण मौत के कगार पर धक्का खाने के लिये खड़ा कर दिया जाये, तो कैसा अटपटा लगेगा!

जिसे मारने का नोटिस दिया जा रहा हो, और फिर बचने का कोई रास्ता ही न हो, आसपास कोई सहायक न हो, तो उस व्यक्ति की मनस्थिति कैसी होगी? साधारण हिम्मत वाला आदमी तो आत्म-समर्पण कर प्राण बचाने को ही समस्या का सबसे सुगम हल समझेगा।

आहट पाकर रवीन्द्रनाथ ठाकु ने अपना द ढी मू छो वाला गम्भीर और शान्त मुख मण्डल ऊपर उठाया। एक उडती नजर से उस दुष्ट आक्रान्ता को भेद दृष्टि से देखा। देखते ही भांप गये कि यह अपराधी वृत्ति का कोई आवारा हत्यारा है—चेहरे पर क्रूरता, भौहें चढी हुई, नाक के नथुने गुस्से से फूले हुए लाल-लाल डरावने नेत्र और अङ्ग प्रत्यङ्ग मे तनाव और क्रोध ! हर क्षण हत्या के लिए आतुर !

वे जिन्दगी और मौत के झूले मे झूल रहे थे !

दुष्ट गुण्डा विश्वकवि को डराता हुआ कुछ देर उसी प्रकार मौका देखते र । जैसे बिल्ली दबोचने के लिये निरीह चूहे पर झपटती है। दोनो की नजरें मिली, पर शब्द न निकले जैसे जिह्वा बन्द हो गई हो !

कवि था फूल सा कोमल, उसकी कविता की भाषा-भाव थे मधु की तरह मीठे ! स्नेह मिश्रित स्वर मे पूछा, 'कहो, क्या चाहते हो ? कैसे बे मौके यहाँ आने की तकलीफ की ? क्या कोई जरूरी काम है ?'

एक कर्कश रूखा-सा उत्तर आया—

"तुम्हारी हत्या करने आया हूँ ! लिखना छोडो ! मरने के लिये तैयार हो जाओ !........अरे, तुम सुनते नही.......देर मत करो। कलम हाथ से नीचे रख दो ! मुझे तुम्हारा काम तमाम करना है। यह चमकता हुआ छुरा देखो !"

यह कहकर उस हत्यारें ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर को छुरा दिखाया।

अब स्थिति स्पष्ट हुई। स्पष्ट था कि हत्यारा किसी के द्वारा लालच पाकर विश्व कवि को कत्ल करने के इरादे से सबकी

निगाह बचा छुरा लेकर अकेले मे घुस आया था। उन्हे बचाने वाला उस समय पुस्तकालय मे कोई दूसरा उपस्थित न था।

यदि उस समय कोई कायर या डारपोक आदमी होता, तो मौत को मुँह बाया देख भय के कारण मूर्छित हो जाता। गिड-गिड़ाकर उस हत्यारे के पाँव पकड लेता और विनीत भाषा मे प्राणो की भीख मागता। जीवित छोड देने के लिये अनुनय और विनय करता।

लेकिन रवि बाबू साहसी आदमो थे। डरने वाले को और भी अधिक डराया और परेशान किया जाता है, बहादुर और हिम्मत वाले से सब स्वतः ही दब जाते है।

स्वर कोमल, भाव मधुर, मुद्रा प्रफुल्लित कमल की पखुडियो जैसी देह हिमालय सी सयत वाणी मे विश्वकवि बोले—

'इस समय तो मैं एक जरूरी काम मे व्यस्त हूँ। मुझे बहुत-सा लिखना है। तुम मुझ से मिलने कल फिर आ जाना। तब तुम्हे तैयार मिलू गा।"

यह कह कर लापरवाही से विश्व कवि पूर्ववत अपना अधूरा पत्र पूरा करने मे जुट गये, जैसे वहाँ कोई हो ही नही! उस दुष्ट से अप्रभावित! शात और सतुलित!

हत्यारे को यह शान्ति सहन नही हुई। उसने फिर कड-कड़ात स्वर मे धमकी दी—'नही मुझे तुम्हारा काम-तमाम करना है…… अभी करना है……तुम तैयार हो जाओ कलम रख दो।'

'जाओ! मुझे अपना काम करने दो!' कहकर कवि फिर मौन, तल्लीन और निश्चिन्त भाव से पूर्ववत् काम मे लग गये!

'अरे! इस व्यक्ति को मेरे छुरे का जरा भी डर नही! मरने का भय नही! मैं एक क्षण मे इसे मौत के घाट उतारने जा रहा हूँ और यह निश्चिन्त भाव से लिखे जा रहा है। मेरे नुकीले छुरे से नहीं डर रहा है! अपने कार्य मे मग्न है। इसे मौत की परवाह नही! गजब का साहस है।' यह सोचते सोचते हत्यारा विस्मय विमुग्ध था।

रवीन्द्र ठाकुर की हिम्मत, मानसिक संतुलन और शान्त प्रकृति के सामने वह परास्त हो गया! उसकी हिंसक प्रवृत्ति आत्मग्लानि में बदल गई। उसे अपनी करनी पर लज्जा आ रही थी। उसका विवेक जगा और उसे शर्म आ गई।

अब उसके मन में नया भाव आया, 'हाय! मैं किस देव पुरुष को दूसरे के लालच मे आकर कत्ल करने चला था।'

वह श्रद्धान्वित हो उठा!

'क्षमा करे! क्षमा करे!! बड़ी भारी गलती से बच गया! यदि आप पर हाथ उठ जाता, तो गजब हो जाता!'

नम्र हो लज्जित-सा पिछले पावों जिधर से घुसा था, वापिस चुपके से उधर से निकल गया!

जिस देश में साहस और पुरुषार्थ वाले नागरिक है, उसका ही पृथ्वी पर वर्चस्व रहेगा! दुनियाँ शक्ति शाली के पाँव चूमती है।

गुरु नानक के विचित्र आशीर्वादों का रहस्य

सन्त गुरु नानक जी ज्ञान और धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए यत्र तत्र घूमते रहते थे। जनता मे धार्मिक जागृति करना और लोगो को सन्मार्ग की तरफ उन्मुख करना उन्हे प्रिय था।

एक बार सन्त नानक जी घूमते फिरते धर्म प्रचार करते-करते एक गाँव पहुँचे। उनके यश और धर्म के प्रति प्रगाढ अनुराग की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। धर्म पिपासु उनके दर्शनो के लिए अति व्याकुल रहते थे। उनका नाम सुनकर बडी संख्या में लोग उनके इर्द गिर्द एकत्रित होते थे।

'सन्त नानक जी ने हमारे ग्राम मे पदार्पण किया है। हमारा अहोभाग्य कि ऐसे विख्यात महात्मा का सत्सग हमें मिलने जा रहा है। बड़े पुण्यो के फलस्वरूप किसी गाँव मे रहन वालो को ऐसा सुअवसर प्राप्त होता है। अहह आनन्द आ गया!'

ग्राम के निवासियो के चेहरो पर असीम आनन्द फूट रहा था। गाव मे नानक जी के साथ रहने वाले सभी शिष्यो और भक्तो का बडा स्वागत सत्कार किया गया। पुष्प मालाएँ अर्पित की गई। स्वादिष्ट भोजन कराया गया और आराम से ठहरा दिया गया। गाँव वालो ने एकत्रित होकर सामूहिक रूप में उनके सम्मान मे एक जलसा आयोजित किया। सार्वजनिक आनन्द मनाया गया।

'गांव के मुखिया ने स्वागत मे बोलते हुए कहा'—जो पददलितो को सासारिक माया मोह विषय वासना और विकार से

ऊपर उठाते है, अपने अमृतमय उपदेश और उपकारी वाणी से अपराधियो को पापों से विमुक्त बनाते है, ऐसे गुरु नानक जी महान् पुरुष है। ऐसे सत के समीप रहकर हम अपने दोष दुर्गुण त्याग कर जीवन-शोधन करे।'

गुरु नानक जा ने गाँव वालों की अतिथ्य-भावना, उत्तम विचार, सद्-व्यवहार और भक्ति प्रेम देखा। गाँव वालो ने बड़े ध्यान से गुरवाणी सुनी।

गुरुजी ने गाँव वालों को सम्बोधित करते हुए कहा—'भक्तो! ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारा, समदर्शी और निगम व्यवस्था को कड़ाई के साथ स्थिर रखने वाली सत्ता मानना चाहिए। याद रखिये, कि उन्होने हमें इस विश्व को अधिक सुन्दर, सुविकसित एव सुव्यवस्थित बनाने के लिए भेजा है।'

'हम यह वचन याद रखेंगे, गुरुदेव! कुछ और कहिए।'

'और भी सुनो' गुरु नानक ने हम मे अधिक विशेषताएँ और विभूतियाँ भर दी हैं। यह जीवन वासना और तृष्णा बढ़ाने के लिए नही, वरन् इसलिए है कि हम जीवन को एक दैवी धरोहर समझें और जीवन निर्वाह के लिए कम से कम से लेकर अधि-भाग अपने से पिछड़े हुओ को ऊँचा उठाने मे खर्च करते रहे।'

गुरु नानक जी ने गाँव मे सर्वत्र सुविचार, सुव्यवस्था और आस्तिक वृत्ति देखी। धर्म भावना का यत्र-तत्र स्पष्टीकरण पाकर वे बहुत संतुष्ट हुए। व्यापक सहयोग, सामान्य शान्त, मस्तिष्क, स्वच्छता शिक्षा, ज्ञान और कला प्रेम से प्रभावित हुए। हर जगह उन्हें लोग ईमानदारी और परिश्रम पूर्वक जीविका अर्जन करते हुए मिले। सत्परम्पराओ का अनुकरण और सद्व्यवहार देखकर यकायक उनके मुँह से निकला—

'उजड जाओ ! उजड़ जाओ !'

'अरे ! क्या आशीर्वाद है गुरुजी का !'-सभी आश्चर्य में थे, वे गाँव वाले उस आशीर्वाद 'उजड़ जाओ' का कुछ मतलब न समझ पाये।

वहाँ से गुरु नानक अगले गाँव मे गये। आश्चर्य की बात थी, यह गाँव पहले से ठीक विपरीत था। वे लोग मानवता के मूलभूत प्रयोजन तक को न समझते थे। उसमे पशुता की दुष्प्रवृत्तियाँ अधिक थी। वे आपस मे लड़ते झगड़ते और हर किसी से उलझने को तैयार रहते थे। उनमें अनीति, अज्ञान और अधर्म था। कोई अनुशासन न था। कुसस्कार सर्वत्र दिखाई दे रहे थे।

वहाँ के लोगो ने गुरुजी तथा उनके शिष्यो का तिरस्कार किया, उनसे कटु वचन बोले। यही नही, वे दुष्ट दुर्जन सन्त जी से लडने झगड़ने पर उतारू हो गये।

नानक जी बडी कठिनता से वहाँ कुछ दिन ठहर पाये। वहाँ लोगो ने उनका भाषण भी नही सुना। वे भी खिन्न रहे।

चलते समय गुरुजी ने आशीर्वाद दिया—

'आबाद रहो ! आबाद रहो !!'

'अच्छा आशीर्वाद है गुरु नानक का खूब कहा हमारे लिये, आबाद रहो।' वहाँ के नागरिक इस आशीर्वाद से बडे प्रसन्न हुए। आखिर उन्हें आबाद रहने का आशीर्वाद दिया जा रहा था।

जब वे उस गाव से बाहर निकल आए तो साथ चल रहे शिष्यों ने गुरु नानक जी से पूछा—

'भगवन् ! आपने अपने आदर करने वालो को उजड जाओ !' और अपना तथा हमारा तिरस्कार करने वालो को

'आबाद रहो' का उलटा आशीर्वाद क्यों दिया ? यह तो सरासर अन्याय नजर आता है। इसका गुप्त रहस्य हमे स्पष्ट कर दीजिए।'

गुरु नानक जी ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा, 'शिष्यो ! सज्जन लोग उजड़ेगे, तो इधर-उधर स्थान स्थान पर बिखर कर जहाँ कही नई जगह जायेगे, अपने चरित्र, वाणी और आचरण की सज्जनता ही फैलावेगे। अच्छे बीजो तथा सद्विचारों की तरह सज्जनो का नई-नई जगहो पर जाना और अपने सदाचार द्वारा सदाचार फैलाना बडा जरूरी है। सत्पुरुष नई जगह जाकर धर्म, कर्मनिष्ठा, कर्त्तव्य-परायणता, मानसिक सन्तुलन, पिछड़ा हुआ समाज तरक्की करेगा सज्जनता फैलाने के लिए सज्जनो का उजड़ना (अर्थात् इधर-उधर बिखरना और फैलना ही ठीक है।'

'भगवान्, दुष्टो के आबाद रहने का क्या मतलब है ?'

'भक्तो, दुष्टजन अपनी आदत से मजबूर होते हैं। वे निन्दा, झगडा, वैर, विरोध, छिद्रान्वेषण मे ही लगे रहते हैं। शुभ कर्मो मे बाधक होते है। बाघ, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक विषैले स्वभाव के दुष्ट आदमी सर्वत्र अशान्ति उत्पन्न न करे इसलिए उनके एक ही जगह रहने मे भलाई है। 'आबाद रहो' से मेरा मतलब है कि वे इसी गाँव मे रहें। दुष्टता यही तक सीमित रहे। समाज मे फैलने न पाये।'

अब समझ मे आ गया भगवन् ! आपने ठीक ही कहा सज्जनो अनेक स्थानो पर फैल-फैल कर अपनी सज्जनता फैलाओ दुर्जनों, एक ही जगह बसे रह कर दुष्टता को आगे पनपने न दो।'

जेल में नेहरूजी का वजन क्यों बढ़ा ?

फूल-सी कोमल भोली भावुक बालिका ने प्रधान मन्त्री नेहरूजी से प्रश्न किया, "क्या आपने कभी अपना वजन भी लिया है चाचा ?"

लडकी ने सहज स्नेह से नेहरूजी से अजीब सा सवाल पूछा था. नेहरूजी की समझ में न आया कि क्या उत्तर द ? वे सोच रहे थे, 'भला मेरे वजन से इस कन्या को क्या और क्यो दिलचस्पी हुई ? आखिर वह क्या जानना चाहती है ?"

बालिका को टालने के इरादे से वे बोले, "अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने के कारण मैंने अनेक बार अपना वजन लिया है ।"

यह सक्षिप्त-सा उत्तर साधारण जिज्ञासा की लडकी को चुप करने के लिये काफी था। उनका अनुमान था कि कन्या शान्त हो जायगी ।

किन्तु ऐसा नही हुआ । बालिका और पूछने लगी ।

जिज्ञासु बालिका ने मधुर मुस्कराहट बिखेरते हुए उनसे आगे नया सवाल पूछ डाला—

अच्छा चाचा नेहरू एक और सवाल का जबाब देंगे आप ?"

"पूछो क्या पूछना चाहती हो ?"

"वायदा कीजिए, जो पूछूंगी, वही बतायेंगे !"

"अरी नन्ही मुन्नी, पूछो न ! बीच ही मे पूछते-पूछते क्यो रुक गई '" नेहरूजी ने आग्रह किया ।

नेहरूजी को बच्चों से विशेष स्नेह था। वे उनके बीच अपने गहन गम्भीर हिमालय-जैसे ऊँचे व्यक्तित्व को भूल जाते थे। उनका वात्सल्य उभर उठता था। बच्चे उनसे तरह-तरह के सवाल पूछते थे और वे राजनीति की गम्भीर स्थितियाँ भूल कर अपनी मौज में बड़े प्यारे जवाब दिया करते थे।

सहमी-सी बालिका को डर था कि जल्दी ही नाराज होने वाले नेहरू उसके अटपटे सवाल से नाराज न हो जायें। हमारी सभ्यता का मूल मन्त्र है शिष्टता...... मर्यादा...शालीनता।

इस मर्यादा से बँधी नन्ही बालिका ने पूछा—

"आपका सबसे ज्यादा वजन कब हुआ ?

नेहरूजी मुस्करा उठे। लड़की ने आगे फिर सवाल किया—

"और चाचा, आपका सबसे कम ,वजन कब था ? कितना था ?

अजीब सवाल ! कौतूहलपूर्ण परिस्थिति !

"क्या पूछ रही है यह नन्ही शैतान लड़की ? मेरा सबसे ज्यादा और सबसे कम वजन कितना था ? कब था ? अब इसे क्या जवाब दे भला ?"—सोचते-सोचते नेहरू जी जरा उलझन मे पड गये।

एक सात्विक आह्लाद से परिपूर्ण, विगत स्मृतियों को सजोते संवारते फूल-सी वाणी विखेरते हुए वे बोले—

'मेरी मुन्नी. मेरा सबसे अधिक वजन एक-सौ बासठ पौण्ड था !"

कब था, चचा ?"

"यह वजन उस समय था जब मै अहमदनगर जेल में था....।"

"ओह ! जेल....!" बीच में रोकते हुए आश्चर्य से लडकी बोली फिर जरा रुक कर आगे पूछने लगी, "और सबसे कम वजन कब था ?"

"सबसे कम साढे सात पौंड वजन था ?"

"सिर्फ साढ़े सात पौंड वजन ! ओफ ! इतना कम वजन ! लडकी यकायक अट्टहास मे हँस पडी ! किलकारी मारकर कहने लगी, "सिर्फ साढे-सात पौण्ड वजन ! खूब रही यह बात !"

"यह कब था, चाचा ?

"सबसे कम साढे सात पौण्ड वजन उस समय था जब मैं जन्मा था ! अस्पताल मे नर्स ने जब मुझे तोला था।"

"ओह ! तो यह बात है ! ह ह ह....पर....पर एक बात समझ मे नही आई है चचा ?"

"ताज्जुब क्यों कर रही हो, मुन्नी ?"

"चचा, एक नई उलझन मे फँसी हूँ फिर !"

सचमुच लडकी फिर कुछ शङ्कायें मन मे सजोये बैठी थी। "उलझन ! कैसी उलझन ? कुछ और पूछना हो तो फिर पूछ डालो !"

"जेल की परेशानियाँ और असुविधाओं में रहकर हर किसी का वजन कम होते सूना और बात ठीक भी है। सारे दिन काम-ही-काम, भद्दा मोटा भोजन और कम से-कम विश्राम.... करावास में तो आप जैसे नाजुक शरीर वाले आदमी का वजन कम हो जाना चाहिये था ! वह बढ कैसे गया ?"

"ओफ ! सचमुच यह नई उलझन है ?"

पण्डित जी वात्सल्यपूर्वक बालिका के सिर पर हाथ फेरने लगे। जेल मे रह कर भी उनका वजन क्यो कर बढ गया ? लड़की ने बात खूब पकडी है। लड़की समझदार है। थोड़ी देर

सोचकर वे बडी प्यार-दुलार भरी मधुर वाणी मे कहने लगे—

"उस समय····जेल के कठोर जीवन से मेरा वजन इस खुशी से बढ गया था कि मै अपने देश को मुक्त करने के लिये········ अपने देश के नागरिकों की सेवा मे····आजादी के संघर्ष मे जेल में कष्ट सहन कर रहा हूँ।"

बालिका सोच-विचार मे पड गई। वह नही समझ पा रही थी कि देश की आजादी के युद्ध मे कष्ट सहने पर रूखसूखी रोटी खाकर परेशानियों से घिरे रहकर भी किसी का वजन बढ़ सकता है!

जब निराशा बुद्ध के मन में आशा की ज्योति जली

निराशा किसके पास नही आती। मनुष्य और देवता सभी इस दुर्गुण से परेशान हुए है, किन्तु उन्होने अपने आत्मबल से इसे पछाड़ा है और निरन्तर आगे बढ हैं।

भगवान् बुद्ध जीवन के रहस्यो को मालूम करने के लिये बहुत दिनो तक तपस्या और कठोर साधना मे लगे रहे। उन्होने शरीर को भी पर्याप्त कष्ट दिया, खूब चिन्तन किया, पर आत्मज्ञान की प्राप्ति नही हुई।

उन्हे कठिनाइयों और परेशानियो ने विक्षुब्ध कर दिया। क्या करें? वे साधना करते-करते जैसे थक गये थे। पर्वत जैसे ऊँचे आकार वाली परेशानियो से त्रस्त होकर वे हताश हो गये। या यो कहिये कि वे कर्तव्य छोड़कर धड़ाम से गिरे····

"अब मैं और अधिक कठिनाइयाँ सहन नही कर सकूँगा। मैं मानवता के सुख और समृद्धि के अपने उच्च लक्ष्य को छोडता हूँ।'—ये कायरता के शब्द उनके मन मे लगातार घूम रह थे।

उन्होने अपनी तपस्या मध्य मे ही छोडकर घर लौटने का निश्चय कर लिया।

वे मन ही-मन कह रहे थे, मैं व्यर्थ ही इतनी परेशानियो में पडा रहा। मैंने जीवन के रहस्यो को मालूम करने में बहुत सा समय नष्ट कर दिया, पर हाय, कुछ हाथ नहीं आया। इतना समय, परेशानी, शारीरिक और मानसिक कष्ट सब व्यर्थ ही गया। अब सब मुसीबतें छोडता हूँ।'

निराशा, अविश्वास और पराजय की कायर भावनाओ ने उन्हे विक्षुब्ध कर दिया। वे लौट पडें वापस घर के लिये।

लडखडाते कदमों से वे वापस आ रहे थे। मार्ग मे उन्हे प्यास लगी। जल पीने के लिये झील के किनारे गये। जल पिया, विश्राम किया, मन कुछ ठण्डा हुआ। सामने एक अजीब दृश्य देखा—

एक नन्ही-सी गिलहरी झील के जल मे अपनी पूंछ भिगो-भिगोकर पानी बाहर छिडक रही है। एक बार, दो बार दस बार, बीस बार, सैकडो बार,—यही काम कर रही है। वह जल मे पूंछ भिगोती है, सूखी धरती पर जाती है और पानी बाहर झाड़ आती है। उन्हे उससे बातें करने की बड़ी उत्सुकता हुई।

'प्यारी गिलहरी ! तुम यह क्या कर रही हो ?'

वह दृढता भरे स्वर मे बोली—'इस झील के पानी ने मेरे बच्चो को बहाकर मार डाला है। उससे बदला ले रही हूँ। झील को इस प्रकार सुखा कर ही छोडूँगी।

उसने फिर अपना काम पूर्ववत् शुरू कर दिया। बुद्ध बोले, 'झील को सुखा रही हो? बिना किसी बरतन पानी बाहर फक रही हो। तुम्हारी छोटी-सी पूँछ मे भला कितनी बूँद सूख पाती होगी। तुम्हारे इतने छोटे शरीर, थोड़े-से बल और सीमित साधनो से भला कैसे यह विशाल झील सूख सकेगी? इसमें न जाने कितने युग का समय लग जायेगा, तुम्हारी आयु ही कितनी है? इतना बड़ा काम और इतने सीमित साधन? यह सब व्यर्थ होगा। व्यर्थ क्यों अपनी शक्ति का अपव्यय कर रही हो? तुम इस झील को कभी खाली नहीं कर सकोगी।'

गिलहरी ने निर्भयता और दृढता से भगवान् बुद्ध की ओर देखा, फिर वह दृढ़ शब्दों में बोली—

'यह झील कब खाली होगी, यह नही होगी—यह मैं नहीं जानती, न इसकी कोई परवा ही करती हूँ। मै दृढतापूर्वक अपने काम म निरन्तर लगी रहूँगी। श्रम करना, लगातार अपनी लक्ष्यपूर्ति म लगे रहना, कठिनाइयो का सामना करना और अन्त मे विजय प्राप्त करना मेरी योजना है।'

भगवान् बुद्ध के मन मे फिर उथल-पुथल हुई। वे सोचने लगे, 'जब यह नन्ही-सी गिलहरी अपने छोटे-से साधनो से इतना बड़ा कार्य करने के स्वप्न देख रही है, तब भला मैं उच्च मस्तिष्क और सुदृढ़ शरीर वाला विकसित मनुष्य अपने लक्ष्य की पूर्ति क्या न कर सकूँगा।'

वे फिर वापस अपनी साधना के लिए लौट गये। उन्होंने फिर जङ्गलो का कठिन जीवन बिताने और घोरतम तपस्या करने का निश्चय किया।

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'सात्यिकी ! राजनीति मे नेता। कुर्सी पर बैठने और शासन करने का इच्छुक !'

'जी हाँ,' सात्यिकी कहने लगा, 'उसी क्षेत्र मे धोखा लगा है आपको ?' 'मेरी पार्टी वाले जीत गये, पर मिनिस्ट्री मे मुझे छोड दूसरे को ले लिया। उन सब की गद्दारी पर मुझ बडा क्रोध आ रहा है।

'सात्यिकी ! तुम्हे क्रोध आना स्वाभाविक है पर अपने को वश मे करना ही पौरुष है। तुम जल्दबाज हो। अधीर हो। अधीर मनुष्य इतनी तीव्र गति से आगे बढता है कि वह मार्ग के गडढो और खतरो को नही देख पाता। वासुदेव की सलाह मानो धीर और समझदार बनो।'

'वासुदेव, अधीरता पथिक को अन्धा बना देती है जिससे वह आलोक की बजाय अन्धेरे मे छटपटाता रहता है। मैं ऐसे ही अन्धेरे मे भटकता हुआ यहाँ जीवन का अन्त करने आया था। यहाँ आप दोनो से मुलाकात हो गई। यह दूसरे मित्र कौन है ?'

'ये बलदेव हैं। तुम्हारी तरह ही क्रोधी थे। बड़ी मुश्किल से शान्त और शीतल किया है।'

'मुझे आपसे मिल कर खुशी हुई।'

'हम तीनो ही महावन मे पहुँच गये हैं। रास्ता दिखाई नही देता'—वासुदेव कहने लगा 'सूर्यास्त हो चुका है। अनजान वन मे आगे बढ़ना कठिन है।'

'हाँ, अब तो रात काफी हो चुकी है।' बलदेव बोला।

'चारो ओर निविड़ अन्धकार है।' सात्यिकी ने कहा।'

सचमुच वे वन के खतरे मे फँसे थे। चारो तरफ अँधेरा

था। हिंस्र जन्तुओ का खतरा था। कोई डाकू या हत्यारा भी वहाँ आ सकता था।

वासुदेव सबसे अधिक शान्त, विवेकशील और बुद्धिमान थे। वे बोले, 'मित्रो, इस अनजान बन और निविड अन्धकार मे हमें एक दूसरे की रक्षा का प्रबन्ध करना होगा।'

'फिर क्या करें ?' बलदेव ने पूछा।

'हाँ आप ही कोई समयानुकूल सुझाव दें।' सात्यकी बोले।

'हम शेष रात्रिकाल मे बारी-बारी से पहरा दे और दो सो ले।'

'पहले कौन ?'

'यह भी कोई झगड़े की बात है पहले मैं पहरा दूंगा।' सात्यिकी बोला।

'फिर मैं जागूंगा !' बलदेव ने अपने को प्रस्तुत किया।

'अन्त मे मैं पहरा दूंगा।' वासुदेव ने स्पष्ट किया।

बस निश्चय हो गया। बारी-बारी से हर एक का अपना पहरा देना था।

पहले सात्यकी पहरा दे रहा था। शेष दोनो सोकर थकावट दूर कर रहे थे।

सात्यिकी के मन मे उद्वेग का तूफान उठा, मैं फिर रहा हूँ और ये दोनो मजे की नींद ले रहे हैं।' वह नाराज होने लगा।

उसी समय अचानक एक पिशाच प्रकट हुआ, भयानक था उसका स्वरूप ! लाल-लाल नेत्र नथुने क्रोध से फूले हुए ! बड़ा डरावना !

'मुझे इन दोनो सोये हुए व्यक्तियो को खा लेने दो। मैं तुम्हे छोड़ दूंगा। पिशाच ने दहाड़ कर कहा।

'बडा दुष्ट है तू पिशाच ! मैं तेरे धृष्ट प्रस्ताव को ठुकराता हूँ ।' गुस्से से लाल हो सात्यिकी हुंकारा ।

क्रोध से आवेश बढता है । वातावरण अशांत हो उठा ।

सात्यिकी के आक्रोश भरे शब्दो से वह पिशाच और भी जलभुन गया । वह और भी नाराज हो उठा । गाली-गलौज बढ । आवेश की स्थिति पैदा हो गई । दोनो ओर से गर्मा गर्मी हुई ।

सात्यिकी ने गुस्से मे उसे भाग जाने का आदेश दिया ।' 'पिशाच भाग जा अन्यथा कमचूर निकाल दूंगा !'

दोनो मे हाथापाई शुरू हो गई ।

सात्यकी क्रोध से अभिभूत खूब लड़ रहा था । उधर वह पिशाच भी उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता जा रहा था . दोनो अपने अपने दाव पेच लगा रहे थे । सात्यिकी का गुस्सा ज्यो ज्यो बढता जाता था, उस पिशाच की शक्ति और आकार त्यो-त्यो बढते जाते थे ।

'यो तुझ नहीं छोडूगा । इस बार तुझे पूरी तरह समाप्त ही कर देना है ।' कुश्ती मे सात्यिकी घायल हो गये थे, पर वे गुस्से में उद्विग्न थे । उन्होने उस पिशाच को छोडा नही । देर तक उसमे कुछ भी ताकत रही वे मल्लयुद्ध करते ही रहे । देर तक यह कुश्ती चलती रही ।

जब सात्यिकी के पहरे मे समय थोडा-सा शेष रह गया तो वह पिशाच, यकायक जैसे प्रकट हुआ था, वैसे ही गायब हो गया ।

समय समाप्त होने पर सात्यिकी ने बलदेव को जगाया । अब वह पहरे पर खडा हो गया । थका-हारा होने के कारण लेटते हो सात्यिकी गहरी निद्रा मे सो गया ।

बलदेव भी गुस्सैल प्रकृति का था। वह अभी तक अपनी पुरानी स्मृतियो मे डूबा हुआ था। अपने पारिवारिक जीवन की कलह और तले हुये वातावरण की याद ने उसे फिर उद्विग्न कर दिया। वह अपने मुसीबतो और विपत्तियो पर खीज रहा था। उसे फिर क्रोध का दौरा सा उठा तुरन्त ही पहले वाली पिशाच फिर प्रकट हुआ।

मैं तुम्हारे दोनो मित्रो को खा डालूंगा। दात पीस कर वह बोला

'यह कैसे सम्भव है। देखता हूँ तुझे। दो क्षण में पछाड़ डालूंगा।'

आवेश मे बलदेव ने उसे चुनौती दी।

फिर वही गर्मा गर्मी हुई। दोनों ओर से क्रोध पूर्ण शब्दो का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। मल्लयुद्ध की नौबत आई।

क्रोध से भरे वातावरण में गाली के शब्दो ने बड़ा अनर्थ किया। अग्नि मे घृत का काम किया। उतावली के कारण फिर संकटमय परिस्थिति उत्पन्न हो गई।

देर तक दोनो मल्लयुद्ध करते रहे। बलदेव भी कुश्ती में लड़ते-लड़ते थक कर चकनाचूर हो गया, पर उसने अपनी हठ को न छोड़ा। क्रोध मे लड़ता ही गया।

यकायक उसका पहरा समाप्त होने आया। उसे बड़ा आश्चर्य यह देखकर हुआ कि वह पिशाच पलक मारते ही फिर गायब हो गया। बलदेव उसके क्रीड़ा-कौतुक को कुछ न समझ सका।

फिर वासुदेव को बारी आई। वह बड़े आत्म विश्वास पूर्वक पहरा देने लगा। वह शान्त और सन्तुलित दिखाई दे रहा था। पूर्ण निर्भय और धीर गभीर।

वही पिशाच फिर प्रकट हुआ। इस बार वह भी आश्चर्य मे डूबा हुआ था।

लेकिन इस बार उसकी मुद्रा बदली हुई थी। वह मुस्करा रहा था। वासुदेव ने उसकी उपेक्षा की। शान्ति से अपना कर्तव्य पालन करता रहा। पिशाच ने उसे उद्विग्न करने के लिए कठोर शब्द भी कहे, पर वह क्रुद्ध न हुआ। शीतल बना रहा।

पिशाच बोला, 'तुम अच्छे आये। मुझे कुछ काम नहीं है। तुमसे कुश्ती लड़ने मे मेरा एक पहर कट जायगा। आओ, हम मल्ल-युद्ध करें।'

पर वासुदेव ने वही पूर्ववत् उपेक्षा दिखाई। शान्त और सन्तुलित रहा। अपने काम से काम रखा।

'अरे यह तो क्रुद्ध ही नहीं होता।' पिशाच ने फिर वासुदेव को उद्विग्न करने का प्रयत्न किया, पर वह शीतल ही रहा। उसने उधर ध्यान न दिया।

पिशाच को वासुदेव की उपेक्षा पर बड़ा क्रोध आया। क्रोध आने से उस दुष्ट पिशाच का बल कम हो गया।

पिशाच ने फिर बलदेव को छेड़ा। गालियाँ दीं। उत्तेजित किया। जब वह फिर भी शान्त रहा, तो घूँसे लगाये।

जब-जब वह उसे छेड़ता या घूँसे लगाता, तो वह शान्त सतुलित मन से कहता, 'पिशाच तुम वीर हो। मुझसे खुश हो। मेरी उदासी को दूर कर रहे।'

वासुदेव के सद्-व्यवहार पर दुष्ट पिशाच का क्रोध बढ़ता गया। लेकिन शक्ति क्षीण होती गई। जितना अधिक क्रोध उतनी ही कम शक्ति।

पिशाच क्रोध के मारे लाल-लाल होकर दांत पीस रहा था। उसका क्रोध इतना बढ़ा कि शक्ति बिलकुल ही नष्ट हो गई। वासुदेव के शान्त और शीतल रहने से वह अनेक गुना ताकत-

वर हो गया। कमजोर पिशाच को उसने अपने छोर की गाठ में बांध लिया।

वह भयानक रात्रि समाप्त हो गई ।

प्रातःकाल हो गया। अब तीनों मित्र रात की बाते सुनाने लगे। सात्यिकी के सारे अग अब भी सूजे हु? थे। 'तुम्हारे अग क्यो सूजे हुए है ?'—सात्यिकी ने पूरी कथा कह सुनाया।

'आपका अनुभव क्या है, बलदेव ?'

'सचमुच वह बडा भयकर पिशाच था। उसने मुझे भी बडा ही परेशान किया। बहुत देर मल्ल युद्ध करना पड़ा। अन्त में पहरा समाप्त होने पर ही वह गायब हुआ।' बलदेव ने कहा।

'और आपका अनुभव भाई वासुदेव ?'

वसुदेव अपने छोर की गांठ खोलते हुए कहा 'कौन-सा पिशाच ! कही यही तो नही ? इसकी शक्ल देखो।'

'हाँ हाँ यही दुष्ट हमे तग करता रहा है। हमें इससे रात भर लडना पड़ा है। यही वह पिशाच है। आपने कैसे दबोचा इसे ?'

'हरे ! यह तो क्रोध है !' वासुदेव ने स्पष्टीकरण किया।

क्रोध है ? हमारे मन का पिशाच प्रकट हो गया। ओफ !'

'हाँ देखो ! शान्त शीतल और सतुलित रह कर मैंने इसे अपने छोर की गांठ मे बांध लिया है।'

बलदेव और सात्यिकी आश्चर्य कर रहे थे।

●●

क्रोध पर विजय प्राप्त किए बिना आत्म विकास सम्भव नहीं

एक तपस्वी अपने शिष्यो को विद्या अध्ययन करा रहे थे। शिष्य कुछ दम्भी और दुष्ट स्वभाव का था बात-बात में कुतर्क करता था और बेमतलब की बात पूछ कर गुरु को अध्यापन करने न देता था।

'तू बडा मूर्ख है रे! साथ बडा अडियल और दुष्ट भी!' कहते-कहते सहसा तपस्वी को क्रोध हो आया।

क्रोध एक प्रकार का पागलपन ही है। जब उसकी उत्तेजना होती है, तो मनुष्य को इसका फल दृष्टिगोचर नही होता।

तपस्वी क्रुद्ध हो शिष्य को मारने दौडे। संयोग से झपटने मे वे मार्ग मे आये हुए एक खभे से टकरा गये। उनका क्रोध, आवेश और मन मे बैठी हुई इतनी उद्विग्नता थी कि टक्कर में मर गये।

जब अपनी तपस्या के पुण्य के कारण वे स्वर्ग मे पहुँचे, तो भगवान् ने निर्णय किया—

'तू ने बहुत पुण्य किये। तपश्चर्या की और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया। दैवो प्रयोजन पूरा किया लेकिन तुझ मे क्रोध रूपी असुरता की कमजोरी विद्यमान है। जब तक तेरा क्रोध दूर नही होता तब तक तेरे आध्यात्मिक जीवन का प्रयोजन सिद्ध नही होता। क्रोध की वजह से तेरा सदाचार, सयम, उदारता और कर्त्तव्य परायणता नष्ट हो गये हैं।'

तपस्वी ने कातर होकर प्रार्थना की, 'भगवन्, मुझे क्रोध जैसी निर्बलता को जीतने के लिए एक जन्म और मिलना

चाहिए । अपनी असुरता को पराजित कर सकूंगा ऐसा विश्वास है ।'

'अच्छा, तुम्हे एक और जन्म दिया जाता है ।'

× × ×

दूसरे जन्म मे वे फिर उसी प्रकार तपस्वी बने इस बार उन्होने और भी अधिक ध्यान पूवक तपश्चर्या को और अपनी शक्तियो एव सिद्धिया को खूब बढाया । सबसे सज्जनता और मधुर व्यवहार रखा । कभी भी कडुवे वचन न बोले ।

उन्हे पता था कि पूवजन्म मे वे अपने उद्धत-स्वभाव के कारण सजा पा चुके थे । सकारण अपने क्रोध के कारण शत्रु बढाते चलना कुछ बुद्धिमानी की बात नही है । क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति अन्तत: घाटे में ही रहता है । जिसके साथ दुर्व्यवहार किया गया, अप्रसन्न वे भी होते हैं, जो उसे ऐसी हालत मे लाछित होते देखते हैं ।

एक दिन उनके आश्रम में कुछ बालक आये और आश्रम के सुन्दर बाग से फल फूल तोडने लगे ।

'बालको ! इन फल फूलो को मत तोडो । जाओ, अपना काम करो । मेरी तपश्चर्या में विघ्न मत होने दो !' तपस्वी ने झिडककर डाटा ।

लेकिन बालक तो उद्धत्त स्वभाव के होते हैं । शरारत के कारण उन्होंने तपस्वी की चेतावनी पर कोई ध्यान न दिया ।

'ये दुष्ट मुझ जैसे तपस्वी की बातों पर ध्यान ही नही देते हैं । मेरे सामने ही सारे बगीचे को बन्दर और लंगूरो की तरह तोड़े डालते है ।' कहते कहते उनकी पूर्वजन्म वाला क्रोध की आदत ने फिर जोर मारा । वे फिर उत्तेजित हो उठे । आग बबूला हो इधर उधर डण्डा तलाश करने लगे । झोपड़ी में

कुल्हाडी मिली। आव देखा न ताव, क्रोध मे उसी से फल तोड़ने वाले बच्चो को मारने दौड़े।

आवेश में भागे, पर मार्ग मे पडने वाला कुआँ न दीखा। उस कुएँ में मेढ़ न थी। बस उसी मे गिर गये और मृत्यु को प्राप्त हुए।

वे फिर भगवान् के सामने थे—

'तपस्वी, तूने अपने क्रोधी स्वभाव को नही, छोडा है। दूसरे जन्म मे फिर क्रोध के कारण ही तेरी मृत्यु हुई है। बोल, तेरे उस वायदे का क्या हुआ।'

'भगवन्, मैं भूल गया। क्रोध करने की मेरी ओछी आदत ने मुझे फिर नीचा दिखाया है। अगर कही मुझे एक जन्म और मिल जाये, तो मैं क्रोध को पूरा जीत सकता हूँ। बस, एक मौका और मिलना चाहिए मुझें।'

तपस्वी ने बडी मिन्नते की। भगवान् दया के सागर हैं। उन्हे तपस्वी पर दया आ गई।

'अच्छा, तीसरी बार फिर तुझे भेजता हूँ। लेकिन इस बार मनुष्य की योनि न दे तुझे सप की योनि मिलेगी। इसमे अपने क्रोध को जीतना।'

खैर, सर्प की योनि ही सही। मैं अपने को सुधारूगा।' तीसरी बार वे फिर पृथ्वी पर थे।

इस बार वे भयंकर विषधर सर्प बने। पृथ्वी पर आकर अपना वायदा फिर भूल गये। सर्प और क्रोधी स्वभाव का हो, तो कैसा खतरनाक हो सकता है! वे इतने क्रोधी थे कि उनके भय से कोई उस जगल मे नही जाता था।

एक बार परम प्रभु महावीर उस जंगल मे जा निकले। महावीर सिद्ध पुरुष थे। साढे बारह वर्षों की कठोरतम तपस्या

के साथ निरन्तर मौन रहकर उन्हे सर्वोच्च ज्ञान, प्राप्त हुआ था। उन्होने जीवन, मृत्यु, लोक परलोक, आत्मा, परमात्मा, कर्म व मोक्ष के रहस्यो को समझ लिया था। उनके मन वचन और जीवन मे बड़ी शान्ति थी। वे अपने अमृतमय उपदेशो स ससार को कल्याण का मार्ग दिखाते हुए घूम रह थे। महावीर ने अहिंसा और क्षमा को बहुत ही अधिक महत्व दिया। उन्हे बहुत सताया गया, फिर भी उन्होने अपने आततायियो पर क्रोध नही किया।

नागराज ने तीर्थंकर महावीर पर क्रोधित होकर उनके चरणो मे फन मारा।

महावीर जैसे पवित्र आत्मा महापुरुष को काटना कितना अन्याय पूर्ण कार्य था। जो महावीर सब प्राणियो के प्रति मैत्री भाव रखते थे, सब जीवो से क्षमा माँगते थे, जिनका किसी मे कभी वैर न था, उन पर इतना क्रोधपूर्ण आक्रमण।

विधि का विधान ! एक अद्‌भुत् चमत्कार।

महावीर के चरणो से रक्त के स्थान पर दूध बहने लगा। तब यकायक नागराज को ज्ञान हुआ, 'हाय, 'हाय, क्रोध मे मैंने फिर भूलकर डाली !'

नागराज को पश्चात्ताप होने लगा।

भगवान महावीर ने कहा, "नागराज, अपने पूर्व जन्म के वचन को याद करो। तुमने वायदा दिया था कि कभी क्रोध न करोगे। खैर है कि तुम अपने वचन को भूल गये और उत्तेजना नही छोड़ी।'

'क्षमा ! भगवान् क्षमा, कीजिए फिर गलती हुई !'

'वत्स, अपनी भूलो के लिए प्रायश्चित करना, विनय,

नम्रता सेवा, त्याग और तप ही अपनी आदतों के परिष्कार के माग हैं।"

"अब ऐसा ही होगा। इस बार फिर क्षमा करें भगवन्।"

"याद रख, क्रोधी की हमेशा हार होती है, क्षमावान सदैव जीतता है।"

●●

कामुक जीवन का भयंकर अन्त

"फडफड ! फड़फड !! फडफड़ !!!"

अजीब-सी आवाज थी !

वह उसे सुन डर कर सोते-सोते जाग उठा ! अरे ! आज यह अद्भुत शोर कैसा है ?

उस समय लार्ड टामस लिटेलिटन प्रतिदिन अपने यहाँ कामुक युवक-युवतियो के साथ चलने वाली केलि-क्रीडा का मनोरञ्जन कर मधुर निद्रा मे सो रहे थे। अचानक किसी भयानक ध्वनि से उनकी नीद उचट गयी। वे इतने भयभीत हुए कि पसीने से लथपथ थे।

अर्द्ध-निद्रित स्वप्नावस्था मे भी मानव का गुप्त मन जागरूक रहता है। वह अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होकर नाना क्रियायें करता है। लार्ड टामस लिटेलिटन को ऐसा लगा जैसे उनके पास वाली कांच की खिडकी के पास बिल्ली के मुह मे दबे मुर्गे की तरह कोई पक्षी फडफड़ा रहा है !

फड़फड़ ! फड़फड़ !! फड़फड़ !!!

भयभीत हो नेत्र मलते-मलते वे हडबडाये-से उठ बैठे कि देखे आखिर क्या माजरा है ! यह फड़फड़ाहट का आवाज कैसी है ? ऐसी विचित्र डरावनी ध्वनि तो उन्होने पहले कभी भी न सुनी थी । उन्हे अपनी आँखो पर विश्वास नही हो रहा था।

अरे ! कहा उनके नेत्रो ने धोखा तो नही दिया ? बार-बार घूर कर देखा, देखते ही रहे अटूट अपलक ! फिर सहसा कांप उटे ।

यह पक्षी तो नही है ! शायद कुछ और है ! अब उन्होने उसे पहचाना। ओफ ! यह तो सफेद कपड़ पहिने एक वृद्धा स्त्री-सी नजर आयी। वृद्धा खडी हुई उन्हे क्रुद्ध मुद्रा से देख रही थी। नर-कङ्काल मात्र, हाथ पाव हिलाती हुई। लाल-लाल आखो वाली वृद्धा !

वे भयातुर हो उठे ।

सोचने लगे यह सफेद बालो वाली क्रुद्ध बुढिया कौन है ? प्रेतिनी, पिशाचिनी, छाया या स्वप्न ? या भयग्रस्त मस्तिष्क का विकार ?

अभी तक वे अपने नेत्रो पर विश्वास न कर पाये थे। वे घूर-घूर कर उस श्वेत वस्त्रो वाली नारी को पहचानने का प्रयत्न करने लगे।

कौन है यह प्रेतात्मा ? क्यो आयी है आज रात उन्हे आतङ्कित करने ? यह क्यों उनके पीछे पड़ी हुई है ? उन्होने अपनी स्मृति को टटोला ।

× × ×

उन्हे ऐसा लगा जैसे उन्होंने इस औरत को कही देखा है। इसी बीच उन्होने ध्यान से उस प्रेतात्मा के मुख मण्डल का परीक्षण किया, देखा। कुछ याद कर वे डर कर काँपने लगे !

वह प्रेतात्मा लाल-लाल नेत्र निकाल कर बडे क्रोध से उन्हे घूर रही थी। जैसे नेत्रो के माध्यम से ही उन्हे भक्षण कर जाना चाहती हो। दहकते हुए रक्त वर्ण अङ्गारे की भाँति उसका क्रुद्ध चेहरा तेज से तमतमा रहा था। वह मानो साक्षात् मृत्यु जबडे खोले उन्हे निगल जाने को तैयार थी। वह क्यो इसके पीछे पडी थी ?

लार्ड महोदय अधिक देर उस डरावनी प्रेतात्मा को न देख सके। सहमा किसी गुप्त भय से विक्षुब्ध हो उठे। उनका कलेजा थर थर कापने लगा। उनकी नसो मे खून जमने लगा। चिन्ता की भाँति भय की वृत्ति आदमी के स्वयं के मन में हुए गुप्त भावो पर निर्भर करती है। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार मनुष्य अपने भावो की दुनिया स्वय ही बना लेता है। भयाकुल होकर लार्ड को अपना पुराना जीवन चलचित्र की भाँति दिखायी देने लगा।

× × ×

लन्दन से कोई आठ कोस दक्षिण की ओर से एप्सम नामक एक छोटी-सी बस्ती है। उसमे पिट पैलेस नामक महल में लार्ड टामस लिटेलिटन बड़ी शान-शौकत, ऐश्वर्य और भोग विलास का जीवन व्यतीत करते थे।

लार्ड लिटन के पास आयर लैण्ड और इङ्गलैण्ड मे बडी जमीदारी था और धन धान्य, भोगविलास की नाना वस्तुओ के खजाने भरे हुए थे। राजदरबार मे उन्हे पर्याप्त मान-सम्मान प्राप्त था। धन वैभव, यौवन और वासना का मद मिल कर एक ऐसा नशा आता है, जो मनुष्य को पागल-सा कर देता है। पापवृत्तिया और देवत्व दोनो ही मनुष्य के अन्त. करण में

निवास करते है। आसुरी शक्तियो मे आकर्षण और तात्कालिक प्रलोभन का भाव अधिक होता है। इनसे मनुष्य बलात् बुराइयों को ओर खिच जाता है। बुराइयां जब स्वभाव मे गहराई तक प्रवेश कर जाती है, तो वे घृणित सस्कार बन जाते हैं। ये कुस-स्कार ही पापियो और दुष्टो को जन्म-जन्मातरो तक कष्टो मे आवृत्त किय रहते है।

लार्ड लिटेलिटन को ईश्वर ने सुन्दर शरीर, अच्छा स्वास्थ्य दिया था। उन्हे जीवन की हर सुख सुविधा मिली थी जिससे वे चाहते तो दीन हीन पिछडे हुए व्यक्तियों की बडी सेवा-सहायता कर सकते थे। रुपये की उपयोगिता पिछड़े हुए व्यक्तियों को आगे बढाने में हो तो है।

लेकिन यौवन, धन और वैभव से मदान्ध होकर लार्ड लिटे-लिटन वे इन्द्रिय लिप्सा को अपना ध्येय बना लिया था जवानी के नशे में सुरा और सुन्दरी—ये दो ही उनकी उपास्य देवियाँ थी। पानी जैसे जमीन पर बहता है, उसका गुण वैसा ही बदल जाता है। मनुष्य का स्वभाव, आदतें, आचरण भी अच्छे बुरे लोगो की सङ्गति के अनुसार बदल जाते हैं। बुरे व्यक्ति मूर्ख, दुष्ट और कुत्सित आदमियों के साथ घुल-मिल जाते है और धीरे-धीरे उनके कुविचारो और घृणित आदतो को विकसित कर लेते है। मनुष्य की बुद्धि तो मस्तिष्क में रहती है, किन्तु कीर्ति उस स्थान पर निर्भर रहती है, जहाँ वह उठता-बैठता है। आदमी का घर चाहे कही भी हो, पर वास्तव मे उसका निवास स्थान वह है, जहाँ वह प्रायः उठता-बैठता है और जिन व्यक्तियो की सङ्गति पसन्द करता है। आत्मा की पवित्रता मनुष्य के कार्यो पर निर्भर रहती है और उसका आचरण उसकी सङ्गति के ऊपर टिका है। गिरे हुए दुष्ट व्यक्तियों के साथ रहने

वाले अच्छा काम करें, यह कठिन है। अतः कुसग मे बढ कर कोई हानि नही है। लार्ड को शीघ्र ही ऐसे दुराचारी मित्रो की प्राप्ति हो गयी जो सुरा और सुन्दरी जैसे व्यसनो के प्रेमी थे। लार्ड महोदय पैसे को पानी की तरह बहाते हुए विलासिता मे शराबोर रहने लगे।

उन्होने अगणित वेश्याओ, कुलटाओ का सम्पर्क किया, किन्तु उसकी वासना तृप्त न हुई। वासना को उन्होने जितना ही बुझाने की कोशिश की, वह उत्तरोत्तर बढती ही गयी। उन्होने अगणित कुमारियो को भ्रष्ट किया। रुपये से उनका सतीत्व और चरित्र खरीदे। रूप-सुधा का पान किया। यहाँ तक गिरे कि कई सच्चरित्र महिलाये भी उनके रुपये के लोभ मे फस कर बरबाद हो गयी।

उनके धन, यौवन और प्रतिष्ठा पर असंख्य युवतियो का सतीत्व निछावर हो चुका था।

फिर भी समाज मे बाहरी रूप से वे अभी तक कुँवारे ही बने हुए थे।

भला जिसने मधु चूस कर फूल को पाव तले कुचल देने की नीति अपनाली हो, वह एक पत्नीव्रत जैसे धर्म का क्यो पालन करने लगा!

और जो भँवरे की भाँति कलियो पर मँडराता ही रहता है, किसी रमणी को जीवन-सङ्गिनी नही बनाता, उसकी दुर्गति निश्चित ही है।

आयरलैण्ड में, जहा लार्ड लिटेन्गिटन की बडी जमीदारी थी, वहाँ एक गरीब वृद्धा स्त्री, अपनी तीन पुत्रियो के साथ टूटी-फूटी झोंपडी मे रहती थी।

उस निर्धन और असहाय वृद्धा ने अपने पति के मर जाने के बाद इन कन्याओ को बडी कठिनाइयो से हृदय के प्यार से सींच सींच कर पाला था।

गरीब के पास चाहे रुपया न हो, ईश्वरीय वरदान के रूप मे दिया हुआ स्नेह तो वह दे ही सकता है। सन्तान को प्रेम देने से उसका उत्तर विकास होता है। प्रेम जीवन का प्रसून है। प्यार जीवन मे ऊँचा उठने की प्रेरणा देता है। प्रेम नवजीवन और जाग्रति का सन्देश देता है। विधवा वृद्धा गरीब थी, फिर भी वह अपनी बच्चियो को राजकुमारियों से अधिक प्यार से पालती और उनका विकास करती थी। बड़ी आर्थिक कठिनाइयो से उन्हे पढा लिखा कर सुशिक्षित बनाया।

जब वे कन्याएँ सयानी हुईं, तो विधवा की इच्छा ऐसी जगह उनका वैवाहिक सम्बन्ध करने की थी, जहाँ वे धर्म, मर्यादा और सज्जनता का दाम्पत्य जीवन व्यतीत करें।

किन्तु एक विचित्र षड् यन्त्र ने विधवा वृद्धा के भावी स्वप्न चूर-चूर कर दिये।

सयोग से लार्ड लिटेलिटन अपनी जमीदारी के सम्बन्ध मे इस गांव में गये। विधवा की सर्वगुण सम्पन्न सुशिक्षित साध्वी पुत्रियो के अद्वितीय रूप, यौवन को देखकर उनका काम लोलुप मन वश में न रहा। वासना उनकी कमजोरी थी। उनकी काम भावना ने उन्हें धर दबाया। अत्यधिक काम-वासना, क्रोध, प्रतिशोध, झूठ, मक्कारी, चोरी, विश्वासघात, प्रवञ्चना शोषण जैसी पैशाचिक दुष्प्रवृत्तियो के अनियन्त्रित होने पर मनुष्य राक्षस जैसा बन जाता है। लार्ड ऐसा ही अभागा मानव-पिशाच था। उसे अपनी निम्न वृत्तियों पर कोई संयम न था। सुन्दर युवतियो को पहुँच के भीतर देख कर वह लुभा गया।

फिर क्या था, उसके दलालो ने अनेक प्रकार के प्रलोभन दे देकर उन भोली-भाली कन्याओ को अपने कुत्सित वासना-जाल मे फंसा लिया।

रुपये की शक्ति के दुरुपयोग से इन कन्याओ को नारकीय वासना की तृप्ति का शिकार बनना पडा। जाल मे फँसी मछलियो की तरह वे षड्यन्त्र मे फंस गयी।

लार्ड से विवाह करने के लालच में वे निर्दोष इङ्गलैण्ड आ गयी · हाय! इस दुष्ट लम्पट के जञ्जाल मे वे ऐसी फँसी कि जीर्ण-शीर्ण वृद्धा मा को दर्शन देने तक न जा सकी। वृद्धा को आश्वासन दिया गया था कि लार्ड एक लडकी से स्वय पाणि-ग्रहण कर लेंगे और उनके ऊँचे रिश्ते के कारण वे शेष कन्याओ को किसी भली जगह विवाह देगे।

पर उस वृद्धा का स्वर्णिम स्वप्न काँच की तरह चकनाचूर हो गया।

उस लम्पट अमीर के सारे वायदे झूठे निकले।

उसने उन तीनो को भ्रष्ट कर पतिताओ को न जाने कहाँ खपा दिया। जब वृद्धा को यह मालूम हुआ कि उसकी प्यारी पुत्रियो को जूठी पत्तलो की भाँति फेक कर मरवाया जा चुका है, तो उस माँ हृदय हाहाकार कर उठा।

कितना बडा धोखा! कैसी पैशाचिकता! यह अकारण अत्याचार, स्वार्थ पूर्ति, अनावश्यक रूप से दूसरो को सताना उसके आन्तरिक दुख का कारण बन गया। वह मानसिक आघात से बीमार पड गयी। अपनी लड़कियो का नाम रटती-रटती चारपाई पर पड़ी रहती। लार्ड से प्रतिशोध लेने की भावना उसके अङ्ग-अङ्ग मे व्याप्त हो गयी। उसकी मानसिक अस्वस्थता क्रोध की विकृतियो मे फूटने लगी। "जैसे तूने मेरा

सर्वनाश किया है, तेरा भी वैसा ही सत्यानाश हो। ईश्वर तुझ जैसे नर-राक्षस को सजा दे। तुझे पाप की दैवी सजा मिले।" यह कह-कह कर आँसुओ की अविरल धारा बहाती हुई वह दुखियारी स्वर्गवासी हुई।

इस ससार मे गुप्त रूप से परमात्मा का अदृश्य शासन चलता रहता है। पुण्य सदा फलता है, पाप तथा पापी ना आश होती है। राक्षसों को मार कर न्याय तथा धर्म का सुख शान्ति मय राज्य स्थिर हो जाता है। ईश्वर हमारे पापो को देखता है उनसे बचने की चेतावनी देता है, हमे सावधान करता है, किन्तु जब हम नहीं सम्हलते तो उनको सजाये देता है। कोई पर्वत पर छिप कर ही पाप कर्म क्यों न करे, वह ईश्वर सब कुछ देखता है। कोई चुपचाप चोरी, डकैती, व्यभिचार, धूर्तता, ठगी हिंसा, अत्याचार क्यो न करता हो, उस दैवो शासक से कोई छिपा नही है। जहाँ दो व्यक्ति गुप्त बैठ कर भी बाते करते हैं, वहाँ भा प्रभु तीसरा बन कर सम्मिलित रहता। प्रत्येक पाप-कर्म की सजा निश्चित है। कामुकता की उच्छृखलता क्रोध, अहकार, लोभ, मोह आदि सदैव दण्डित हुए हैं और होते रहेगे।

> एवं जीवो हि सकल्प वासना रज्जु वेष्टितः।
> दु खजाल परीतात्मा क्रमादायाति नोचताम्॥
> इति शक्तिमय चेतो घनाहकारता गतम्।
> कोशकाक्रमिरिवे स्वेच्छया याति बन्धनम्॥

—महोपनिषत् मे महर्षि ऋभु

"हे वत्स, इस प्रकार सङ्कल्प और वासना रूपी रस्सी से बँधा हुआ प्राणी नरक का दुःख पाता रहता है और अन्त मे

अधोगति को प्राप्त हो जाता है। जैसे रेशम का कीडा अपनी इच्छा से बन्धन में बँधा रहता है, इसी प्रकार काम, क्रोध, वासना आदि वृत्तियाँ जीव को बन्धन मे जकडे हुए हैं।

× × ×

जिस समय आयरलैण्ड मे उस वृद्धा का स्वर्गवास हुआ था, उस समय भोग-विलासी लार्ड रात्रि की केलिक्रीडा की मौज-बहार लूटकर सुख-निद्रा मे सो रहा था। अचानक किसी अजीब सी डरावनी आवाज को सुनकर उनकी नीद उचट गयी

उन्होने समझा कि शायद उनके सिरहाने वाली कांच लगी खिडकी के बाहर कोई पक्षो फडफडा रहा है जैसे किसा हिंस्र बिल्ली ने कोई मुर्गी दबोच ली हो। फिर उन्होने ध्यान से देखा तो स्पष्ट दीखा कि वह कोई पक्षी नही प्रत्युत सफेद कपड़े पहिने एक वृद्धा स्त्री खडी हुई हैं। वे आतङ्कित, चकित से शय्या पर उठ बैठे और घूर-घूर कर उसे पहिचानने का प्रयास करने लगे।

लीजिए, वह सूरत तो उन्हे जानी-पहिचानी लगने लगी है। वे पहिचान गये हैं। अरे! यह तो वही बुढिया है जिसकी तीनो कुमारियो को सतीत्व लूटकर उन्होने मरवा दिया था। वह कम्बख्त यहाँ कैसे! वे भयभीत हो उठे।

वह डरावनी वृद्धा क्रोध से लार्ड को घूर रही थी। अङ्गारो को तरह अंधेरे मे उसके नेत्र चमक रहे थे। बुढिया का चेहरा तमतमा रहा था।

ओफ! कैसा खौफनाक था उसका रौद्र रूप। लार्ड की घिग्घी बँध गयी। डर के मारे उसे देखकर उनकी नसो का रक्त जमने लगा।

वृद्धा की क्रुद्ध मूर्ति धीरे-धीरे उनकी ओर बढने लगी। अरे! यह तो बहुत समीप आ गई। इसके सफेद ओठ हिल रहे हैं। यह कुछ कह रही है?

उन्होंने ये शब्द सुने—

"पापी! धोखेबाज! वासना के कीडे! तेरी मौत आ पहुँची। अब तू मरने के लिए तैयार हो जा। तेरे पाप का घड़ा भर चुका है।"

"क्या मृत्यु!"

"हाँ, हाँ, नराधम, तेरी मौत आ गयी।"

"मेरी मृत्यु? मैं तो अभी जवान हूँ। तन्दुरुस्त हूँ। मुझे देखिये, क्या सचमुच आप मेरे लिए कह रही हैं?" लिटेलिटन ने आवेश में विह्वल होकर पूछा।

"पापी! नराधम! दूसरो के जीवन से खिलौने की तरह खेलने वाले कामी! तू जल्दी ही मरने वाला है?

क्या मृत्यु? मेरी मृत्यु? क्या मैं एक दो महीने मे ही मर जाऊँगा? उसके नेत्र आँसुओ से भीग गये।

वृद्धा क्रोध से जल रही थी। वह लार्ड को देख देख कर प्रतिशोध से दाँत पीस रही थी।

"हत्यारे! पाप का दण्ड सदैव मिलता है। जालिम और दुष्ट, पापी और हत्यारो क्रोधी और पर-पीडक, कामलोलुप द्वेषियों को ईश्वर सदैव सजा देता है। तुम्हें भी तुम्हारी दुष्टता के लिये यम की ओर से मौत आ रही है। जल्दी ही तुम मौत के मुँह मे जा रहे हो।"

"तो क्या मैं एक दो महीने के अन्दर ही मर जाऊँगा?" वह रो रहा था।

वृद्धा की सफेद मूर्ति ने दाँत पीसते हुए कहा—गलतफहमी

में मत रह पापी। एक दो महीने मे नही, सिर्फ तीन दिन के अन्दर।"

"ओह! सिर्फ तीन दिन!"

"देख सामने वाली घडी मे अभी क्या बजा है?

"बारह बज रहे हैं।"

"तो कान खोल कर सुन ले। परसो ठीक इसी समय आकर मै तुझे अपने साथ ले जाऊँगा।"

और यह कह कर श्वेत आत्मा अदृश्य हो गयी।

यह सब चलचित्र की भाँति हुआ। भयभीत होकर लाड चिन्तित भयग्रस्त सन्न पडा रहा। रह रह कर वह उस मूर्ति के शब्दो पर विचार करता रहा।

"क्या उसने जो कहा है, सच होगा? नही, नही, वह तो मेरे दिमाग का फितूर मात्र है? स्वप्न मात्र है! उसमें कोई सत्यता नही हो सकती।" इस प्रकार अपने मन को समझाते हुए लार्ड सो गये।

'उठिए श्रीमान्! सवेरा हो गया।" कह कर जब प्रातः काल लाड साहब को नौकरो ने उठाया, तो देखा कि वे पसीने से लथपथ है।

"आपको इतना पसीना कभी आते हुए नही देखा। आप वेहद डरे हुए प्रतीत हो रहे?" नौकर ने पूछा।

वे रात्रि की घटना भूले न थे।

सब कुछ उन्हे सत्य-सा लग रहा था। उन्होंने अपने मित्रो तक को रात वाली घटना सुनायी।

'अरे साहब, यह सब आपका वहम मात्र है। उस सफेद वालो वाली भूत-प्रेतिनी की सारी घटना आपकी चिन्ता है।

आप व्यर्थ ही यह वह कर डर रहे है।" मित्रो ने यह कह कर बात को टाल दिया।

दूसरे दिन भी लार्ड साहब के मन मे सशय बना रहा। वे पार्लियामेण्ट की बैठक मे गये। अपने मन में बैठे हुए, गुप्त भय को भूलने के लिये अमीरो के आमोद-प्रमोदो में सम्मिलित हुए, पर अन्दर ही अन्दर मन गहरी चिन्ता से अस्थिर था। मृत्यु की कल्पना ने उन्हें परेशान कर रखा था। तीसरे दिन उनके मित्रो ने उनके भय को दूर करने का एक उपाय किया।

उन्होने घडी को तेज कर दिया।

अब माजरा यह था कि जब रात्रि के असली रूप में दस बज रहे थे, तो लार्ड साहब की घडी ने बारह बजा दिये।

लार्ड साहब की दृष्टि घड़ी पर लगी हुई थी।

जैसे ही बारह बज चुके और कुछ भी अनहोनी बात न घटी, वे प्रसन्नता से उछल पड़े। वे पूर्ण स्वस्थ थे।

"अरे, मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। फजूल ही डर रहा था। यह सब मेरे मन मे बैठा हुआ भ्रम मात्र ही था। बारह बज चुके है और मुझे तो कुछ भी नही हुआ है। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। वह स्वप्न की वृद्धा मेरा वहम ही था।"

इस प्रकार प्रसन्न होते हुए, वे शान्त हो शयन गृह मे सोने चले गये।

पर उनके मित्र बेखबर न थे। जैसे ही घडी ने दो बजाये और वास्तविक रूप से बारह बजे, तो उनके दोस्त उनकी कुशलता देखने के लिए के कमर मे घुसे।

'लार्ड साहब ! लार्ड साहब ! कैसे है ? उठिए, उठिए—' उठिए।

उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होने पाया कि लार्ड का मृत शरीर पलङ्ग पर पडा हुआ है ।"

× × ×

ईश्वर के शासन मे सत्य, न्याय और पुण्य ही फलते हैं। देर सबेर पापी पकडा जाता है और उसे दैवी शासक दण्ड भी देता है। हम चाहे मनुष्य की दृष्टि से किसी प्रकार बच जायें और अपने पाप-कर्मो को ढकने का असफल प्रयत्न करते रहे, किन्तु यह निश्चय है कि हमारा पाप एक न एक दिन दण्डित अवश्य होगा। यह विराट ब्रह्माण्ड एक दैवी व्यवस्था और सुनिश्चित अनुशासन मे चल रहा है। उसमे प्रत्येक पाप-कर्म के लिये सजा का विधान है।

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्य नेच्छन्ति मानवाः ।
न पापफलमिच्छन्ति पाप कुर्वन्ति यत्नत' ॥

अर्थात् मनुष्य सुखो को, पुण्य-फल की इच्छा तो करता है, किन्तु स्वय पुण्य अर्जित नही करता है। पाप के दुष्परिणामो से डरता है, किन्तु कैसे दु ख का बात है कि जानबूझ कर भी अन्त तक दुष्कर्मो मे ही फँसा रहता है। [मनुष्य सकुचित दृष्टिकोण के कारण ही पाप-कर्म करता है और अन्त मे उसके दुष्परिणामो भोगता है।]

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीतिन. ।
तास्तु देवा प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपुरुष '।

अर्थात् पाप करने वालो! यह न समझो कि तुम्हारे दुष्य-कर्मों को को२ देख नही रहा है। तुम्हारे हृदय मे बैठी हुई तुम्हारी आत्मा (ईश्वर सब कुछ दुष्टतायें देख रहा है। तुम्हे अपने बुरे कर्मों की सजा अन्तत. भगतनी पड़ेगी।

मना पाप सकल्प सोडूनि द्यावा ।
मना सत्य संकल्प जीवी धरावा ॥

अर्थात् हे मन ! तू अपने पाप सङ्कल्पो को त्याग कर सत्य-स ल्प धारण कर । यह निर्विवाद सत्या है कि हमारा जीवन-लक्ष्य बाहरी सुखोपभोग तक ही सीमित नही है ।

आपका एक सात्विक लक्ष्य भी है । वह है, आत्मज्ञान और आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति ।

कामुकता से आत्मबल का नाश होता है

देवताओ और दैत्यो मे युद्ध चलते हुए काफी समय हो चुका था। दैत्यो की शारीरिक शक्ति बहुत बढी–चढी थी। उनकी पाशविक शक्ति के सामने देवताओं की ताकत काम न दे रही थी। देवताओं ने दैत्यो को परास्त करने की बड़ी कोशिश की, परन्तु दैत्यो की शारीरिक ताकत के सामने उनका वश न चला। एक के बाद दूसरे स्थान पर वे हारते ही रह गये। दैत्यों की मार से और निरन्तर हारते रहते रहने के कारण वे आतङ्कित थे।

जम्भ नामक दैत्य उनका नेतृत्व कर रहा था। देवताओ ने कई सप्ताहों तक अपनी पूरी सैन-शक्ति और युद्ध निपुणता से दैत्यराज जम्भ का सामना किया था, किन्तु विशाल शारीरिक शक्ति–सम्पन्न दैत्यों के सामने देवतायो की एक न चली और देवता हारते ही गये ।

इसका कारण यह था कि दैत्यों ने पूर्व-जन्म मे अपने पुण्य-कर्मों द्वारा गुप्त आत्मशक्ति एकत्र करली थी। पुण्य-कार्य संचित होकर मनुष्य को शारीरिक शक्ति से परिपूर्ण कर देते है। शुभ कार्यो की शक्ति सदैव बहुत दिनो तक सहायक होती है। प्रत्येक शुभ कर्म चाहे किसी के द्वारा किया जाये, सुरक्षित रहता है तथा सकट और विपत्ति मे कवच की तरह सहायक होता है। पहले दैत्य यज्ञ, हवन, कीतन स्वाध्याय, पूजा, अचन, सदाचार, इन्द्रिय सयम, धैर्य, क्षमा, चित्तवृत्तियो का दमन, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करत के कारण पुण्य की शक्ति एकत्र करने मे सफल हुए थे। वे बहुत दिनो तक धर्म के मार्ग पर चलते रहे। किन्तु बाद मे धर्म के मार्ग से हट कर पर-पीड़न और इन्द्रिय-लोलुपता मे फँस गये। पापो ने उनकी मति भ्रष्ट कर दी। वे हिंसक बन गये। फलस्वरूप उनका क्रमशः पतन होने लगा था।

देवताओ ने दैत्यो को हराने की अनेक युक्तियाँ की थी, पर जीत न सके थे। दैत्यराज जम्भ उन्हे निरन्तर दबाये जा रहा था। समस्या यह थी कि दुष्ट जम्भ को कैसे पराजित किया जाये ?

सोचते-विचारते उन्हे स्मरण हो आया कि गुरु बृहस्पति देवताओ मे अपनी विद्या-बुद्धि और दूरदर्शिता के लिए विख्यात है। जटिल स्थिति मे उनके द्वारा मार्ग-दर्शन होता है। उनसे सलाह लेनी चाहिए।

खेद ! वहां भी उनकी इच्छा पूर्ण न हुई।

'देवताओ, दैत्यो से युद्ध के विषय मे आपका मार्ग-दर्शन करने मे मैं असमर्थ हूँ।' गुरु बृहस्पति दु:ख भरे स्वर मे कहने

लगे, 'युद्ध-सम्बन्धी परामर्श आप बालखिल्य ऋषि से लीजिए। वे आपको दैत्य जम्भ के आनक से मुक्त करा सकेंगे।'

देवता भागे-भागे बालखिल्य ऋषि के पास एकत्र हो गये। वे बोले, 'क्षमा करें। दुर्भाग्य से आप फिर गलत व्यक्ति के पास आ गये है।'

'फिर किससे परामर्श करें ?' देवताओं ने पूछा।

'आप सब रुद्ध-विद्या में निपुण महर्षि दत्तात्रेय के पास परामर्श के लिए जाइए। वे युद्ध-सम्बन्धी ज्ञान का भण्डार है। उन्हे मानव-मनोविज्ञान की भी अच्छी जानकारी है। मुझें विश्वास है, दत्तात्रेय जी की सलाह से दैत्यों की परेशानी से मुक्ति पा सकेंगे।' बालखिल्य ऋषि ने सलाह दी।

फिर क्या था ! देवता ढूँढते-ढूँढते महर्षि दत्तात्रेय के आश्रम मे पहुँचे। उनसे विनम्र निवेदन किया—

'भगवन् ! आजकल जम्भ नामक दुष्ट दैत्य ने हम सब देवताओ की शान्ति भग कर रखी है। वह हिंसक हमें शान्तिपूर्वक धर्म-कार्य नही करने देता। सभी उससे परेशान हैं। गुरु बृहस्पति और महर्षि बालखिल्य ने इस विषय में पारगत होने के कारण आपसे तुरन्त युद्ध-सम्बन्धी परामर्श लेने के लिए हम सबको आपके पास भेजा है। अब हमारा आत्म सम्मान, लज्जा और प्राणरक्षा सब कुछ आपके हाथो में है। हम बिना सलाह यहाँ से न हिलेंगे !'

सयोग का बात !

उस समय किसी निजी परामर्श के हेतु दत्तात्रेय के पास श्री महालक्ष्मी जी भी आयी हुई थी। दयार्द्र हो वे बोली, 'कृपया देवताओं को दैत्यों के स,ट से बचाइए। मेरा भी आग्रह है।'

"सचमुच आप बड़े सङ्कट मे हैं'—दत्तात्रेय ने सहानुभूति और करुणा-भरे स्वर मे कहा—'दैत्यो से आपकी सुरक्षा और विजय का उपाय मुझे सूझ गया है'। बस एक व्यक्ति की सहायता की जरूरत और पड़ेगी।' यह कहते-कहते वे आशा और उत्सुकता की मुद्रा मे लक्ष्मी जी की ओर इस प्रकार निहारने लगे जैसे कुछ पूछना चाहते हो!

'क्या मुझसे भी कुछ कहना है आपको?' लक्ष्मी जी ने दत्तात्रेय से प्रश्न किया।

'जी हाँ, आपमे बड़ी शक्ति छिपी है। जहाँ और किसी की ताकत काम नही करती, वहाँ आपकी शक्ति से विजय मिलती है। आप यदि सहायता दे, तो निश्चय ही दैत्य जम्भ तथा उसकी सेनाओ को परास्त किया जा सकता है।'

'मैं तो धनधान्य की दात्री हूँ। इस युद्ध के लिए आपको जितनी अर्थशक्ति की जरूरत हो वह धन आप मुझसे सहष माँग लीजिए।'

'अर्थ नही, आपसे कुछ और सहायता चाहिए देवताओ को!'

'स्पष्ट कीजिए, फिर और क्या उन्हे दे सकती हूँ?'

'आप पहले देने का वचन दीजिए, तो कुछ निवेदन करूँ देवि!'

'हाँ, हाँ, किसी महत्त्वपूर्ण ऊँचे आदर्श की पूर्ति के लिए मुझे कुछ कष्ट भी सहन करना पड़े ता पाप को मिटाने और सत्य न्याय की रक्षा के लिए मैं सहायता के लिए प्रस्तुत हूँ। दैत्यो का भय दूर होना चाहिए। आप वह युक्ति बतायें कि मैं आप सबके किस काम आ सकती हुँ?' लक्ष्मीजी ने पूछा।

'आप अपना रूप अत्यन्त आकर्षक बनायें।'

'फिर क्या होगा ?' लक्ष्मी जी ने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

'बस, आगे का मार्ग तो और भी सरल हो जायेगा। एक महान् आदर्श के लिए कष्ट करना है।'

'कैसा कष्ट ! आगे की योजना क्या है ? समझ में नही आयी।'

'दैत्यो मे बुद्धि कम है। वे विवेकशू य हो आपके रूप-माधुर्य पर मुग्ध हो जायगे। जम्भ तो आपको अपनाने के लिए-आतुर हो उठेगा और फिर काम बन गया।'

'वह मूर्ख वासना मै। उन्मत्त हो आपको पालकी मे बैठा कर हर ले जायेगा।'

'ओफ ! तो मुझे दैत्यों के संरक्षण मे रहना होगा ? दुष्टो के पास ! ओफ !'

'देवि ! महान् लक्ष्यपूर्ति के हेतू कुछ और भी कष्ट करना होगा। आप अच्छे कार्यों में सदा ही सहायक रही है। आप और केवल आप ही यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकती हैं।'

'महर्षि, वह भी कहिए ?'

'आप जानती है, पर-स्त्री स्पर्श से मनुष्य का सारा पूर्व-सञ्चित पुण्य नष्ट हो जाने का विधान शास्त्रो मे वर्णित है ?'

'हाँ, यह तत्त्व तो भारतीय धर्मशास्त्रो में पुनः पुनः दोहराया गया है कि विषय-वासना मे लिप्त साक्षात् नरक का द्वार है। जो जीव काम-वासना के चगुल में फँस जाते है, वे अन्दर ही अदर खोखले और विषय-विकारो तथा विकृतियो के कारण निर्बल और निस्तेज ही नही हो जाते युद्ध में हार भी जाते है। कामरूपी अग्नि सूखे हुए खोखले वृक्ष की तरह उन्हे अन्दर ही

अन्दर जला कर खाक कर देती है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और काम वासना पुण्य वाले शक्तिशाली व्यक्ति को भी निवीर्य और निर्बल कर देती है।'

'महर्षि ! यह बताइए, इन मनोविकारो में सर्वनाश सबसे अधिक किससे होता हैं ?

'देवि, काम वासना से प्रत्यक्ष सर्वनाश होता है। यौन-आकर्षण की स्वाभाविक क्रिया जब कामाग्नि के रूप मे भड़क उठती है, तो वह अग्नि शरीर को राख कर देती है।'

'लेकिन महर्षि, कमा-शक्ति को तो जीवनी-शक्ति का चिह्न कहा गया है ?' लक्ष्मी जी ने जिज्ञासा प्रकट की।

'हाँ देवि, सो तो ठीक ही कहा है, किन्तु काम शक्ति का उगित अवसर पर ही प्रयोग करना चाहिए। काम-तृप्ति की एक मर्यादा है। उसका उल्लघन साक्षात् मृत्यु स्वरूप है। देखती नही आप, आज के मानव दुरवस्था....?' कहते-कहते दत्तात्रेय करुणार्सिक्त हो उठे।

'आज मानव की कैसी अवस्था है ? किस ओर आपका सकेत है !'

'देवि, मानव काम शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। सभ्यता की डीग मारने वाले सुशिक्षित मानव का भी कामेन्द्रियो की कुत्सित कामलिप्सा को तृप्त करना मनुष्य का जीवनोद्देश्य बन गया है। अमर्यादित कामोत्तेजना एक प्रकार की प्रत्यक्ष अग्नि है। काम-वासना के विकार आते ही वीर्य पिघल-पिघल कर नष्ट होता है और देह खोखली हो जाती है। त्वचा, स्नायु, तन्तु पेशियाँ और अस्थिपिंजर उस अग्नि मे जलने लगते हैं। लकवा गठिया, काँपना, वात-सम्बन्धी समस्त रोग और निर्बलता अति

मैथुन के ही तो दुष्परिणाम हैं। शरीर निर्जीव और निर्वीर्य हो जाता है। मन भी नहीं बचता।'

'महर्षि, क्या काम-वासना का मन पर भी कुछ कुप्रभाव पड़ता है ?' लक्ष्मी जी पूछने लगी।

'देवि, शरीर की तरह काम-वासना का मन पर भी घातक प्रभाव पड़ता है। कामोत्तेजना के हीन विचार मनुष्य को उद्विग्न कर देते हैं। पागलपन, आत्म-हत्या, विरक्ति, उदासीनता, निराशा, सुस्ती, अधिक नींद, आलस्य, आत्मविश्वास की कमी, पराजय के विचार—ये सब अनियन्त्रित काम-वासना के ही कुप्रभाव हैं। इनके फलस्वरूप कोई भी व्यक्ति जीवन-युद्ध में पराजित हो सकता है, चाहे वह देवता हो या दानव ! कामुकता के विचार करना प्रत्यक्ष मैथुन जैसा ही खतरनाक है। 'अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर (अथर्ववेद २०।९६।२४) मन में जमी हुई वासना ही तो दुष्कर्म कराती है।'

'तो काम-वासना का प्रारम्भ मन से ही होता है ?' लक्ष्मीजी ने उत्सुक होकर पूछा।

'हे देवि ! कामदेव का एक नाम मनसिज भी है। इस शब्द से ही यह स्पष्ट है कि मनुष्य के मन में वासना के पाशविक विकार आते ही शरीर में समस्त दुर्गुण उत्पन्न होने लगते हैं। गुप्त इन्द्रियों में उत्तेजना प्रारम्भ हो जाती है। वासना भड़ककर विवेकशून्य कर देती है। कामुकता के विचार एक प्रकार से अदृश्य मैथुन ही तो हैं। पाप-पंक में फँस कर जीव निर्बल और अन्ततःपराजित हो जाता है।'

'तो यह है आपका दैत्यों को पराजित करने का उपाय ! लेकिन इस युक्ति को आप कार्यान्वित कैसे करेंगे ?' लक्ष्मी जी ने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

'देवि, बस इसी सम्बन्ध मे तो आपको कष्ट देना है। आपकी सहायता और सहयोग के बिना दैत्यो को पराजित नही किया जा सकेगा ,'

'महर्षि, सत्य, न्याय और उच्च लक्ष्य की स्थापना के लिए मैं आपकी सहायता करने को सहर्ष प्रस्तुत हूँ।' लक्ष्मी जी ने अपनी सहमति देदो।

तब तो देवता जीत गये ही समझिए !' आश्चर्य मिश्रित स्वर मे दत्तात्रेय बोले।

उधर देवता बड़े पसोपेश में थे। उन्हे दैत्यो से मुक्ति के लिए कोई उपाय चाहिए था। वे बराबर कभी लक्ष्मी जी और कभी दत्तात्रेय की ओर निहार रहे थे।

'फिर हमारी मुक्ति के लिए क्या सोचा है आपने ?' देवताओ ने उत्सुक स्वर मे दत्तात्रेय से पूछा। वे कहने लगे, 'जम्भ के आतंक से हम सब काप रहे हैं। वह दुष्ट स्वर्ग को जीत कर रहेगा। देवताओ के आत्म-सम्मान और प्राणो की रक्षा कीजिए।'

बस, आप चिन्ता छोडिए। आपका काम बन गया !' दत्तात्रेय हर्ष से चिल्ला उठे—'आप जाकर किसी उपाय से दैत्यो को मेरे पास भेज दीजिए। यहाँ आने पर हम स्वय ही स्थिति को सम्हाल लेगे।'

यह सुनकर देवता उत्साहित होकर वापस हो गये। उन्हे दत्तात्रेय की युक्ति पर भरोसा था।

× × ×

देवताओ मे बुद्धि चातुर्य था। बात को टेढा-तिरछा मोडना उन्हे खूब आता था। उन्होने दैत्यो को बहकाया कि उन पर आक्रमण करने से पूर्व वे एक बार गुरु दत्तात्रेय से अवश्य मिल ले। यदि वे कहेगे, तो देवता युद्ध किये बिना ही हार मान

लेंगे। दैत्यों को यह मार्ग आसान दीखा। वे दत्तात्रेय के पास जाने को राजी हो गये।

इस चालाकी के फलस्वरूप दैत्यों का समूह और जम्भ गुरु दत्तात्रेय के पास आ पहुँचे। तब तक वहाँ लक्ष्मी जी ने अपना स्वरूप अत्यन्त मुग्धकारी बना लिया था। सत्य, न्याय और आत्मबल का तेज चुम्बक जैसा उनमें से निकल रहा था। रङ्ग-बिरगे सौन्दर्य रूपी सूर्य की किरणें उनके मुखमण्डल से विकीर्ण हो रही थी। इन्द्रधनुष की सतरङ्गी छवि जैसी उनकी मुखमुद्रा अत्यन्त आकर्षक लग रही थी। हर दृष्टि उन्ही की ओर लगी थी और हटाये न हटती थी।

दैत्य जम्भ इतनी मनोरम सुन्दरी को देखकर मुग्ध हो उठा। आसक्ति में सब कुछ भूलकर वह कामुकता की कीचड में डूब गया। स्त्री-चिन्तन करते-करते उसे स्त्री स्पर्श की कुत्सित वासना ने आ दबाया।

वह देवताओं को पराजित करने के अपने सङ्कल्प को भूल गया। मानसिक मैथुन की निन्द्य क्रियाएँ, कामेन्द्रिय में उत्तेजित हुई और फलस्वरूप उसका विनाश शुरू हो गया।

अब वह पराजय की ओर सरपट दौड़ा जा रहा था।

'जल्दी करूँ, कहीं यह सुन्दरी हाथ से न निकल जाये'— यह सोचकर जम्भ कामुकता में पागल-सा हो लक्ष्मी जी को जबरदस्ती पालकी में बैठाकर हरण कर ले गया।

यह पतन की चरम सीमा थी।

दत्तात्रेय ने हँसकर देवताओं से कहा, 'हमारा कुटिल चक्र चल गया। हमने दैत्यों का नैतिक बल नष्ट कर दिया। अब पराजय निश्चित है।'

'सो कैसे ? आश्चर्य से देवताओं ने पूछा।

'अब परस्त्री-स्पर्श से इनका पुराना युगो का सचित पुण्य नष्ट हो चुका है। अनैतिकता, कामुकता और व्यभिचार बुद्धि जाग्रत होने से इनका आत्मबल क्षीण हो गया है। इन्द्रियो की विषय लोलुपता से इनकी हार निश्चित है। अब ये स्वय ही अपना विनाश करने चले हैं। पहले ये जितेन्द्रिय थे तो जीतते रहे, अब ये भोग वासना मे लिप्त हो गये है, अत. पराजित हो जायेगे। आप आक्रमण करे।'

देवताओ ने इस परिस्थिति से लाभ उठाया।

उन्होंने तुरन्त पूरी तैयारी से दैत्यो पर आक्रमण कर दिया। जम्भ भोग-विलास मे डूबा रहा और उस आक्रमण को न सम्हाल सका।

सचमुच उन्हे जय लाभ हुआ।

वि मे कर्णा पतयतो विचक्षुर्वीदं ज्योतिहृदय आहित यत्।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विदवक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये॥
—ऋग्वेद ६।६।६

अर्थात् याद रखिए मनुष्य की ये चचल इन्द्रियाँ कभी एक ही दिशा में स्थिर नहीं रहती। अवसर मिलते ही वे अपने भोग्य विषयो की ओर दौड़ती हैं। ये ही हमारे पतन का कारण बनती हैं। इसलिए समझदार मनुष्य को विषय-लोलुपता से सावधान रहना चाहिए।

हीरों से चक्की का मूल्य अधिक है

'राजन् ! एक साधु अतिथि द्वार पर खड़े हैं। श्रीमान् के दर्शन करने के इच्छुक है। बहुत देर से आग्रह कर रहे है कि उन्हें आपके पास आने दिया जाय।'

अतिथि कौन है ? कैसे हैं ? पता नही क्यो यहाँ आये हैं ?'

'साधु वेश, भगवाँ वस्त्र, हाथो में कमण्डलु और चिमटा, लम्बे केश, उत्सुक मुखमुद्रा और जिज्ञासु मन वाले एक साधु आप से मिलने को आतुर हैं। जरूरत के समय ही कोई किसी के पास आता है, अन्नदाता !

तुम्हारा मतलब है कि वे यहाँ भिक्षा के इरादे से आये दीखते हैं।'

'जो, पर वे कोई मामूली भिखारी नही मालूम होते। पहुँचे हुए महात्मा हैं। शायद दर्शन के अभिलाषी।'

सभा मे बैठे हुए सभाजनों ने प्रार्थना की कि अतिथि को एक बार मिलने का अवसर दिया जाय। सब का मन रखने के लिए उदार राजा ने साधु को अन्दर आने की स्वीकृति दे दी।

सब लोग उनके आगमन की बाट देखने लगे। कैसे हैं महात्मा ? क्या-क्या कहते है क्या चाहते हैं राजा से ? सबका मन जिज्ञासाओं से भरा था। ये साधु राज दरबार में कसे भूल पड़े है ?........और विरक्त पुरुष की मांग भी क्या हो सकती है ?

इतने मे सौम्य मुद्रा तथा भव्य गेरुवाँ वस्त्रो मे एक विचार शील साधु ने राज दरबार मे प्रवेश किया ।

अतिथि का व्यक्तित्व दिव्य उद्देश्यो के वैभव से उदीप्त था । चेहरे से तेज टपक रहा था । राजा एकाएक प्रभावित हो उठा । उसने उनका विनीत स्वागत करते हुए मधुर स्वर मे कहा, 'आपके दर्शन से धन्य हुआ.........महात्मन् ! आज मुझ पर अनायास ही कैसे यह कृपा की ?'

राजा के स्वर मे आकर्षण भरा सौहार्द था । महात्मा के प्रति असीम आदर का भाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था !

साधु ने उत्तर दिया—

'मैंने आपकी विद्वत्ता, योग्यता, विवेक का विमल यश सुना था । अब आपका शिष्टाचार देख कर मन मे सन्तोष का अनुभव कर रहा हूँ । आपके मधुर वचनो, स्वागतमयी मुद्रा तथा प्रेम श्रद्धा मिश्रित आदर सत्कार से आत्मा प्रसन्न हो गयी है ! क्या कहूँ ?'

सुन कर राजा प्रसन्न होकर बोला—

महात्मा जी ! मैं मानता हूँ कि राजा हो या साधारण आदमी, अधिकारी हो या अधीनस्थ कर्मचारी, आदमी को सभी से सभी जगह-शिष्टाचार का पालन करना चाहिये । सबसे मधुर शिष्ट व्यवहार मेरी आदत बन गयी है ।

राजन् ! आपका विचार ठीक ही है । सद् व्यवहार, सदाचार आदि हमारे धर्म के अङ्ग हैं । शिष्टाचारी मन, वचन और कर्म किसी से किसी को हानि नही पहुँचाता । वह दुर्वचन कभी नही बोलता, न मन से किसी का बुरा चाहता है । आपको अपनी उच्च स्थिति का घमण्ड नही, यह बात मुझे बहुत पसन्द

आयी है, अन्यथा राजा लोग तो पद और ऊँची स्थिति के अभिमान के कारण मुँह तक से नही बोलते।'

राजा बोला, 'किसी भी तरह के अभिमान के लिये शिष्टाचार में गुन्जाइश नही रहती।'

इतना ही नही, महात्मा ने बातो में रस लेते हुए कहा— शिष्टाचारी पुरुष की सम्पदा, समृद्धि बढाने के साथ ही उसकी निरभिमानता, नम्रता और विनयशीलता बढती ही जाती है।····आप मे भी·········।'

राजा बीच मे ही बोल उठा, 'जी मैं इस प्रशसा के योग्य कहाँ हूँ भला। आप केवल आत्म भाव के कारण मेरी यो प्रशसा कर रहे है!

नही, नहीं, सो बात नही है।'

'तो फिर, क्या बात है महात्माजी?'

'प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता! जिस तरह फलों के बोझ स पेड़ नीचे झुक जाते है, उसी तरह आप-जैसे भले आदमियों की लौकिक सम्पदाये ऐश्वर्य के बढने पर भी नम्रता और विनयशीलता से बढ जाती है।'

यह बात सुनकर राजा प्रसन्न हो गया।

अब क्या था, खुशी में राजा ने विवेकी अतिथि की बड़ी खातिर की। उन्हें इधर-उधर की अनेक दर्शनीय वस्तुएँ दिखलायी। और तो और, राजा साधु की योग्यता और व्यवहार से इतना प्रसन्न हुआ कि उसे अपना रत्न-भण्डार ही दिखाने लगा। भावुकता मनुष्य को कही-से-कही पहुँचा देती है।

रत्न भण्डार की छवि अनोखी थी।

अहह! चारो ओर धन सम्पदा, स्वर्ण मुद्रायें, चाँदी सोने की बड़ी बड़ी ईंटे रक्खी हुई थी। तरह-तरह के कीमती रत्न

इतने में सौम्य मुद्रा तथा भव्य गेरुवाँ वस्त्रो मे एक विचार शील साधु ने राज दरबार मे प्रवेश किया ।

अतिथि का व्यक्तित्व दिव्य उद्देश्यो के वैभव से उदीप्त था । चेहरे से तेज टपक रहा था । राजा एकाएक प्रभावित हो उठा । उसने उनका विनीत स्वागत करते हुए मधुर स्वर मे कहा, 'आपके दर्शन से धन्य हुआ……महात्मन् ! आज मुझ पर अनायास ही कैसे यह कृपा की ?'

राजा के स्वर मे आकर्षण भरा सौहार्द था । महात्मा के प्रति असीम आदर का भाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था !

साधु ने उत्तर दिया—

'मैंने आपकी विद्वत्ता, योग्यता, विवेक का विमल यश सना था । अब आपका शिष्टाचार देख कर मन मे सन्तोष का अनु-भव कर रहा हूँ । आपके मधुर वचनो, स्वागतमयी मुद्रा तथा प्रेम श्रद्धा मिश्रित आदर सत्कार से आत्मा प्रसन्न हो गयी है ! क्या कहूँ ?'

सुन कर राजा प्रसन्न होकर बोला—

महात्मा जी ! मैं मानता हूँ कि राजा हो या साधारण आदमी, अधिकारी हो या अधीनस्थ कर्मचारी, आदमी को सभी से सभी जगह-शिष्टाचार का पालन करना चाहिये । सबसे मधुर शिष्ट व्यवहार मेरी आदत बन गयी है ।

राजन् ! आपका विचार ठीक ही है । सद् व्यवहार, सदा-चार आदि हमारे धर्म के अङ्ग हैं । शिष्टाचारी मन, वचन और कर्म किसी से किसी को हानि नही पहुँचाता । वह दुर्वचन कभी नही बोलता, न मन से किसी का बुरा चाहता है । आपको अपनी उच्च स्थिति का घमण्ड नही, यह बात मुझे बहुत पसन्द

आयी है, अन्यथा राजा लोग तो पद और ऊँची स्थिति के अभिमान के कारण मुँह तक से नही बोलते।'

राजा बोला, 'किसी भी तरह के अभिमान के लिये शिष्टाचार में गुन्जाइश नही रहती।'

इतना ही नही, महात्मा ने बातो मे रस लेते हुए कहा— शिष्टाचारी पुरुष की सम्पदा, समृद्धि बढ़ाने के साथ ही उसकी निरभिमानता, नम्रता और विनयशीलता बढती ही जाती है।....आप मे भी.........।'

राजा बीच मे ही बोल उठा, 'जी मैं इस प्रशसा के योग्य कहाँ हूँ भला। आप केवल आत्म भाव के कारण मेरी यो प्रशसा कर रहे है!

नही, नही, सो बात नही है।'

'तो फिर, क्या बात है महात्माजी?'

'प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता! जिस तरह फलों के बोझ से पेड नीचे झुक जाते है, उसी तरह आप-जैसे भले आदमियों की लौकिक सम्पदाये ऐश्वर्य के बढने पर भी नम्रता और विनयशीलता से बढ़ जाती है।'

यह बात सुनकर राजा प्रसन्न हो गया।

अब क्या था, खुशी में राजा ने विवेकी अतिथि की बड़ी खातिर की। उन्हें इधर-उधर की अनेक दर्शनीय वस्तुएँ दिखलायी। और तो और, राजा साधु की योग्यता और व्यवहार से इतना प्रसन्न हुआ कि उसे अपना रत्न-भण्डार ही दिखाने लगा। भावुकता मनुष्य को कही-से-कही पहुँचा देती है।

रत्न भण्डार की छवि अनोखी थी।

अहह! चारो ओर धन सम्पदा, स्वर्ण मुद्रायें, चाँदी सोने की बड़ी बड़ी ईटे रक्खी हुई थी। तरह-तरह के कीमती रत्न

करीने से इधर-उधर जमे हुए थे । ऐसे मूल्यवान् हीरे, मोती, नीलम, माणिक, पन्ने आदि कीमती रत्न किसी को कब देखने को मिलते हैं ? एक-एक पत्थर की कीमत लाखो रुपये होगी । उस खजाने में जाने से पहले न जाने कितने सतर्क पहरेदारो और जागरूक सैनिको को पार करना पडना था । उनकी सुव्यवस्था-सुरक्षा के लिये राज्यकोश का बहुत सा धन खर्च किया जाता था । राजा को अपने इस विपुल समृद्ध रत्न भण्डार पर विशेष गर्व था ।

रत्न भण्डार दिखाकर राजा ने प्रतिक्रिया जानने के लिए साधु की मुखाकृति की ओर देखा । उस पर प्रसन्नता को रेखाए आकाश मे चमकते नक्षत्रो को भाँति स्पष्ट थी । राजा की आत्मा मत्त मयूर की भाति नाच उठो ।

जरूर साधु को मेरा समृद्ध रत्न भण्डार पसन्द आया है । मेरे द्वारा सहेजकर रक्खे हुए इन हीरो, मोतियो, नीलमों, पन्नो आदि मूल्यवान् रत्नो से वह प्रभावित हो रहा है ।'

यह सोचकर राजा को तृप्ति का शीतल अनुभव हुआ । वह साधु के मुँह से अपनी प्रशसा सुनने को आतुर हो उठा ।

कहिए, साधु प्रवर ! आपको रत्न भण्डार कैसा लगा ?' उसने उत्सुकता से पूछा । साधु अभी तक चुप था । शायद किसी गहन चिन्तन मे डूबा था ।

'क्यो महात्मा जी ! क्या बात है ? शब्द आपकी जिह्वा पर क्यो अटके हुए हैं ? कहिये आपकी प्रतिक्रिया क्या है ?…… ……'

'मेरी एक शङ्का है……एक छोटी सी जिज्ञासा—अनुमति दें, तो एक बात पूछ लूँ ?'

'हाँ, हाँ, शौक से पूछिये न ?

'महाराज ! इन कीमती पत्थरो से आपको साल भर मे

कितनी आय हो जाती होगी ?' प्रश्न विचित्र था . साधु को आय से भला क्या सम्बन्ध ?

राजा को एकाएक हँसी आ गयी · अतिथि एक वैरागी है। दुनियाँ छोड़ चुका है....इसे दुनियां की धन सम्पदा, रत्न, मूल्यवान् हीरों का क्या पता ? यह उनकी कीमत भला क्या जाने ? दखन मे ये हीरे, मोती, नीलम आदि बहुमूल्य रत्न कितने छोटे-छोटे हैं, पर इनका मूल्य करोड़ो रुपयों मे आँका जाता है। एक हीरे का मूल्य बडी जमीन-जायदाद खरीद सकता है। एक मोती से आदमी का पूरा जीवन मजे में कट सकता है। एक इन पत्थरो से प्राप्त होने वाली आय पूछता है ? साँसारिक ज्ञान मे यह कसा शून्य है ! छि ! छिः !

राजा यह सब सोचकर बोला—

'महात्मा जी ! इन रत्नों से तो कुछ भी आय नही होती, उलटे इन बहुमूल्य रत्नों की रक्षा के लिये बहुत से पहरेदार और सैनिक तैनात करने पड़ते है। इनकी चोरी का बड़ा डर रहता है। डकैत, बदमाश, लुटेरे यहाँ डकैती करने के नये-नये तरीके सोचते रहते है। इन्हे लूटने-खसोटने मे एक-दो हत्या भी हो जा, तो वे शौक से कर बैठते है। इन रत्नो की सुरक्षा के लिये राज्य का बहुत सा धन खर्च करना पड़ता है। इनमे से कई मूल्यवान् रत्न तो मुझे मेरे पूर्वजों से धरोहर के रूप मे मिले हैं। मैं उनकी बड़ी हिफाजत रखता हूँ। वे बहुमूल्य रत्न कई पीढियो से शाही खजाने में सुरक्षित है। किसी काम में नही आते, पर मैं उन्हें सहेजने सभालने मे ही गर्व का अनुभव करता हूँ। राज्य की अमूल्य निधि मानता हूँ।'

राजा सोच रहा था कि उन शाही रत्नो की कीमत और प्रशसा सुन कर वह साधु भी प्रशसा अवश्य करेगा ।

किन्तु यहाँ कुछ और ही बात थी ।

क्या बात थी वह ?

एकाएक साधु ने एक सुझाव उपस्थित किया—

'राजन् ! मैने आपके रत्न भण्डार के कीमती पत्थरो को देखा····किन्तु··· क्षमा कीजिये—मैं आपको इन सबसे अधिक कीमती और बड़ा·······इनसे बहुमूल्य पत्थर दिखलाना चाहता हूँ·····।'

'इन पत्थरो से बड़ा····इन सबसे कीमती रत्न ? क्या कह रहे हैं साधु ?' यह प्रस्ताव सुन कर राजा को तो जैसे बिजली का करेन्ट ही मार गया। सौ-सौ बिजलियाँ उनके मानस मे कौंध उठी ।

कहाँ ले जायगा ? मुझसे अधिक धनी इस राज्य मे दूसरा कौन हो सकता है, जो इन सब रत्नो से बहुमूल्य पत्थर अपने पास रक्खे ? राजा को जिज्ञासा हुई । उसने सोचा—'अवश्य इन सबसे बड़ा और अधिक मूल्य वाला पत्थर देखना चाहिए ।'

वह साधु के साथ जाने को राजी हो गया ।

जब साधु आगे-आगे और भावुक किन्तु अभिमानी राजा उसके पीछे पीछे जा रहा था। अमीरो की इमारते धीरे-धीरे समाप्त हो गयी। फिर मध्य वर्ग के मुहल्ले शुरू हुए। चलते-चलते मध्य वर्ग के घर भी खतम····और लीजिए गरीबो की विवशतापूर्ण बस्ती चालू हो गयी। दीन-हीन गरीबो के कच्चे टूटे फूटे मकान··· सब की गिरी हुई अवस्था····सर्वत्र आर्थिक विवशता के मूर्तिमान स्वरूप····।

यह सब देख कर राजा के मन मे आया—'यहाँ इस निर्धन बस्ती मे साधु मुझे कहाँ ले जा रहे है ? शायद इधर जमीन मे गड़ा हुआ कोई गुप्त खजाना है, जिसमे मुझसे अधिक कीमती रत्न एकत्रित हैं '

दुर्गन्ध और आस पास की गन्दगी के कारण वह नाक-भौ सिकोड़े चला जा रहा था ।

अकस्मात् साधु एक जगह रुके । अरे, यह किसका मकान है ?

'राजन् ! क्षमा करें—साधु ने जीर्ण-शीर्ण झोपडी की ओर सकेत कर कहा—वह कीमती बड़ा पत्थर इसी झोपड़ी में है ।'

'ठीक, शायद इसी झोपड़ी मे गड़ा हुआ होगा । मेरा अनुमान सत्य है ।' राजा ने मन ही-मन सोचा ।

झोपड़ी किसी गरीब वृद्धा की थी ।

'आइये राजन् ! झोपड़ी मे चले !' साधु ने आवाज लगायी—'माजी, आपके घर राजा पधारे हैं ।'

वृद्ध लकड़ी टेकती-टेकती झोपड़ी से बाहर निकली ।

'आइये, आइये ! मेरे धन्य भाग्य, जो राजा मुझ निर्धन की टूटी सी झोपडी मे पधारे हैं । मैं नही जानती किस प्रकार आपका स्वागत-सत्कार करूँ ?' वृद्धा यह कह कर भौचक्की सी रह गयी ।

हम दोनों आपकी झोपड़ी में आना चाहते हैं ?

'शौक से आइये, अन्दर पधारिये । मेरी झोपड़ी को पवित्र कीजिये ।

दोनो अतिथि अन्दर गये ।

अन्दर क्या था ? गरीबी का क्रूर तांडव। मजबूरी का विकराल स्वरूप। एक टूटो-सी खाट····कुछ फटे····चिथड़····आलो मे मिट्टी के काले कुरूप बर्तन··· टाट का बिछौना··· एक कोने मे मिट्टी का टूटा-सा चूल्हा··· कुछ अधजली लकडियाँ···· और वृद्धा की आटा पीसने की चक्की ! बस····इतना संक्षिप्त स्वरूप।

वृद्धा अपनी गरीबी पर लज्जित-सी एक ओर खडी थी।

'महाराज ! मैं आपकी प्रजा मे एक गरीब निःसहाय वृद्धा हूँ। कोई सहारा नही। बडी आर्थिक विवशता के दिन काट रही हूँ। जो कुछ अनाज दया कर गांव वाले दे देते हैं कूट-पीस कर पेट का गड्ढा भर लेती हूँ।'

साधु उस चक्की की ओर सकेत करते हुए बोले—

'राजन् ! ये पत्थर आपके उन रत्न भण्डारो मे सहेज कर रक्खे हुए पत्थरो से अधिक बड़े और कीमती है। इन्ही को दिख लाने मैं आपको इतनी दूर लाया था।'

राजा आश्चय मे डूबा हुआ था !

'महात्मा जी ! यह किस तरह ? मेरे हीरे जवाहिरातो का मूल्य तो इनसे कही अधिक है। किसी भी। जौहरी से मूल्याङ्कन करा लीजिये।'

साधु ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—'इन पत्थरो के द्वारा यह निराश्रित विधवा अपना जीवन-निर्वाह कर लेती है। वस्तु का महत्व उसके बाहरी रङ्ग और रूप में नही, वरन् उसकी जीवन मे उपयोगिता से समझना चाहिये।'

तर्क सुन कर राजा सोच-विचार मे पड़ गया।

उसका दृष्टिकोण बदल गया। चिन्तन को एक नयी दिशा दिखायी देने लगी।

अब वह सोच रहा था, वास्तव में ये असंख्य बहुमूल्य हीरे और मोती मेरे लिए बेकार बोझ ही तो हैं। ये मेरे कोई काम नहीं आते हैं। बस, एक तिजोरी से दूसरी तिजोरी में सदा बन्द हो तो पड़े रहते हैं। मेरे पूर्वज भी इन्हें यों ही इकट्ठा करके मेरे लिए छोड़ गये हैं। ये उनके लिए भी बेकार ही पड़े रहे थे··· किन्तु वृद्धा की चक्की में लगे हुए पत्थर प्रतिदिन आटा पीसकर वृद्धा के काम आते हैं। वस्तु का महत्व उसके काम आने पर ही तो है, अन्यथा सब व्यर्थ ही है। दरअसल साधु ठीक ही कहते हैं कि 'वस्तु का महत्त्व उसके बाहरी रङ्ग और रूप से नहीं, बल्कि उसकी उपयोगिता से समझा जाना चाहिये।"

श्रम और संघर्ष से ही जीवन का निखार होता है

महर्षि धन्वन्तरि की पीठ में एक बड़ा घाव हो गया। ऐसा घाव, जिसे वे अपनी समस्त प्रतिभा और बुद्धि से मिटा न सके।

वे स्वयं बड़े प्रख्यात चिकित्सक और आयुर्वेद के अनुभवी विद्वान् थे। जीवनपर्यन्त चिकित्सा-शास्त्र की सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक शिक्षा देते और नयी-नयी खोजें करते रहने से विभु नाम, यह घाव अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर भी वे ठीक न कर पाये। घाव में लगातार मवाद और रक्त आता रहा, जिसे

आधुनिक भाषा में कैंसर कहते हैं। इसी प्रकार के जीर्ण घाव से वे परेशान और उद्विग्न रहने लगे।

पींठ मे असह्य पीडा थी। कभी-कभी तो वे मृत्यु के दु खद स्वप्न देखने लगते। यह कैसा विकट फोडा है। कैसे ठीक होगा, कहीं कोई घातक दुर्घटना न हो जाय।

वे सोच रहे थे, 'मुझ में चिकित्सा-विज्ञान की इतनी मौलिक प्रतिभा है। लोक मुझे अपने युग का सर्वोत्कृष्ट चिकित्सक कह-कर सम्मान करते हैं। महान् पुरुषो की इस जन्मभूमि भारत मे सर्वत्र मेरी इतनी प्रतिष्ठा है। दूसरो को स्वस्थ करने का दम भरता हूँ और मैने अनेक असाध्य रोगियो का स्वस्थ किया भी है। फिर क्या कारण है कि मै चिकित्सक होकर स्वय अपने ही शरीर को स्वस्थ नही कर पा रहा हूँ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन मनुष्य का शरीर है। मुझे शरीर रक्षा के लिए कुछ करना चाहिए। रोग रहित शरीर ही तो सर्व सुखो का मूल है। यदि जीवन है तो जहान है। बिना स्वास्थ्य के संसार मे आनन्द कहाँ ?'

'फिर क्या किया जाय ?'

उनकी अन्तरात्मा ने झकझोर कर उन्हे जगाया, 'धन्व-न्तरि! तुझ मे नयी नयी चिकित्सा करने की अद्भुत प्रतिभा है। तूने असाध्य रोगों को ठीक करने मे अपना जीवन लगाया है। नयी जड़ी बूटियो को खोजने मे तथा उनके गुण परखने में जीवन की श्रेष्ठता और सफलता मानी है, फिर क्यो निराश होता है ? अपने पीठ के घाव को ठीक करने के लिए किसी नयी चमत्कारी जड़ी-बूटी की खोज कर!'

यह सोच कर महर्षि उठ बैठे। अपना सामान एक थैले मे रक्खा। डण्डा हाथ मे ले वन-वन नयी जड़ी-बूटियो का अन्वेषण

और परीक्षण करने लगे वे उन्हें कूट-पीसकर घाव पर लगाते और घाव पर उनका प्रभाव देखते।

उन्होंने अनेक नयी-नयी जड़ी-बूटियों की परख की। अजीब प्रकार के पेड़-पौधों, जड़ों और फलों की परीक्षा की।

उपकारी औषधि की खोज में उन्होंने दूर-दूर तक भ्रमण किया। वन-वन मारे फिरे। पाँवों में काँटे चुभे, हिंस्र पशुओं के खतरों को सहा। मरते-मरते बचे। पर्वतों पर चढ़ते-चढ़ते उनके पाँवों की माँस पेशियाँ थक गयीं। सरिताओं के तट पर लगे हरे भरे प्रदेशों की सैर की और नये वृक्षों के पत्तों और छालों का घाव पर प्रयोग किया।

वे थक कर बैठ जाते, पर उनकी अन्तरात्मा कहती, 'धन्वन्तरि! बस थक गया! कठिनाइयों से पराजित हो गया! यह वनस्पति-विज्ञान अभी चमत्कारों से भरा है। फिर साहस कर। हिम्मत से फिर नयी खोज कर। तू एक दिन सफल मनोरथी होकर रहेगा।'

इस प्रकार की प्रेरणा से चिकित्सक धन्वन्तरि फिर उठकर चलने लगते। भूख और प्यास की परवा न करते। थकान भूल कर कठिनाइयों से पुनः संघर्ष करने लगते।

जो संघर्ष करता है, उसके मार्ग से कठिनाइयाँ स्वतः हटती जाती हैं। सही प्रकार से श्रम करने से उन्नति का रास्ता साफ होता जाता है।

धन्वन्तरि अपना धैर्य न छोड़ते थे। कुछ-न-कुछ किये जाते।

पर मनुष्य के श्रम और संघर्ष की एक सीमा है। एक हद पर पहुँचने के उपरान्त उसे फिर सोचना-विचारना पड़ता

है कि वह क्या करे ? क्या अपनी योजना मे कोई परिवर्तन करे ?

वे अपने घर की ओर लौटे आ रहे थे। थके हारे बहुत महीनो तक दूर-दूर तक घूम कर अपने आश्रम के समीप पहुँच रहे थे। बस, उनका आश्रम दो-तीन मील के फासले पर दीखता था। वे पर्वत पर बैठे सोच रहे थे।

अचानक एक ओर से आवाज आई—'मैं आप से ही कह रही हूँ।'

'कौन बोल रहा है, इस पर्वतीय प्रदेश मे ?'

'आप इधर-उधर आश्चर्य से क्या देख रहे हैं ? आपसे ही तो कह रही हूँ।'

धन्वन्तरि ने विस्फारित नेत्रो से चारो ओर देखा, पर कोई मनुष्य नजर न आया।

'भगवन् ! मैं ही आपके रोग की औषधि हूँ।'

'कौन हो तुम ?'

'मैं एक जडी हूँ ?'

'तुम किधर हो ? मुझे तो दिखायी नही देती ? फिर बोलो।'

'भगवन् ! अपने पास ही देखिये। मैं ही आपके रोग की औषधि हूँ। मेरा उपयोग घाव पर करके देखिये।'

महर्षि ने देखा, उनके समीप ही उगी हुई एक जडी बोल रही थी—'मैं ही आपके घाव को ठीक कर सकती हूँ।'

'ओफ ! तो क्या तुम सच कहती हो।' आश्चर्य मिश्रित हर्ष से ऋषि बोल उठे।

'हाँ, हाँ, इसमे चौंकने की क्या बात है। मेरा प्रयोग तनिक अपने घाव पर करके तो देखिए। जीर्ण घावो को मैं ही आराम

कर सकती हूँ। चिकित्सकों को मेरा पता ही नहीं है। आपने श्रम और लगन से घूम कर मुझे मुग्ध कर लिया है। आपके सघर्ष के कारण ही मैं आप पर दया करके प्रकट हुई हूँ।'

'अच्छा लाओ, तुम्हारे पत्तों का प्रयोग घाव पर करके देखता हूँ।' महर्षि ने अपने घाव पर उस जडी को लगाया।

जादू की तरह था उसका चमत्कारी प्रभाव! जडी को पीस कर लगाते ही फोड़ा ठीक होने लगा। उसका मवाद धीरे-धीरे निकल गया और धन्वन्तरि को लगा कि कैंसर की यह दवा थी। अहह! कितना बड़ा अनुसंधान था! जीर्ण फोड़े की ऐसी अमृतोपम औषधि! कितनी जल्दी उसका गुणकारी प्रभाव अनुभव होने लगा। उन्हें रह रह कर लगा कि इस खोज के बिना तो उनका आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान अधूरा ही था। इसकी खोज उनके जीवन की एक स्थायी खोज थी, जिस पर एक वैद्य को सच्चे अर्थों मे गर्व हो सकता है। कठिनाइयाँ तो बहुत आयी, पर इस अद्भुत जड़ी की खोज मिलने से उन्हें आत्म-सन्तोष हुआ। वे इतने दिनों की थकान और पीड़ा को भूल गये।

धन्वन्तरि आश्चर्य से बोले—'तुम इतनी चमत्कारी जड़ी हो। मेरे चिकित्सा-विज्ञान मे तुम एक अनुपम खोज हो। तुम्हें खोजकर मैं आयुर्वेद को एक नयी चीज दे रहा हूँ। तुम्हारे उपयोग द्वारा असंख्य भूले-भटके दुखी रोगियों को लाभ पहुँचेगा। पीड़ित मानवता की सेवा होगी। पर....पर....।'

जडी ने पूछा, 'पर....पर....क्या कहना चाहते हैं महर्षि?'

'एक शङ्का मन में उभर आयी है?'

'कहिये, मैं यथा सम्भव उसका निराकरण करूँगी।'

'तुम तो मेरे आश्रम के समीप ही थी। मैं तुम्हारी खोज मे वन-वन, पहाड़ और सरिताओ पर मारा मारा फिरा....अब तक तुम क्यो न बोली ? इतने दिन मुझे व्यर्थ क्यो घुमाया ...? यह देखो, चलते-चलते मेरे पाँवो मे छाले उभर आये है। शरीर थकान से भर गया है। श्रम और सघष से टूट-फूट चुका हूँ।.... बोलो ! बोलो ! इस बूढ शरीर को क्यो पथ-पथ का घुमक्कड बनाया ?

जडी पहले तो चुप रही।

फिर लजाती हुई बोली, 'महर्षि ! इधर उधर खोजने में वास्तव मे आपको बडा कष्ट पहुँचा। आपको बडा श्रम करना पडा है। कठिनाइयो से बडा सघर्ष करना पडा है।'

'तुम्हें मुझ पर दया नही आयी ?'

'आपको जीवन का एक सत्य सिखाना था।'

'मुझ-जैसे वृद्ध को भी कुछ सीखने को बचा था ?'

'हाँ, हाँ, सीखने की क्रिया तो जीवन के अन्तिम दिन तक चलती रहती है। जिसने सीखने का काम छोड दिया, जिसने ज्ञान की इतिश्री समझ ली, वास्तव मे वही बूढ़ा है। इस दृष्टि से आप तो जवान हैं।'

'फिर क्या है वह जीवन का चरम सत्य ?' ऋषि ने उत्सुकतापूर्वक पूछा। जडी ने कहा, 'क्षमा करना भगवन् ! यदि अनायास ही मैं आपको प्राप्त हो गयी होती, तो नयी-नयी ओषधियों का शोध-कर्म आप कहाँ कर पाते ? श्रम और सघर्ष के अभाव मे कैसे आपका जीवन निखर पाता ?'

ऋषि निरुत्तर हो गये।

महर्षि मतंग का सामूहिक श्रमदान

(१)

'खट ! खट् ! खट !!

जगल की इस तपती दुपहरी में यह लकड़ी काटने की आवाज कहाँ से आ रही है ! यह लकड़ियाँ कौन काट रहा है ? खट खट् खट् !

ग्रीष्म ऋतु का झुलसाने वाला समय है। आकाश से जैसे आग बरस रही है। गरमी के कारण जगल में आस-पास मनुष्य पशु-पक्षी कोई नजर नहीं आ रहा है। पास चलकर देखे, इस अग्नि-जैसी धूप मे कौन लकडियाँ काट रहा है ? विश्राम के समय कौन श्रम कर रहा है ? इस भीषण गरमी में भी इसे चैन नहीं। अजीव व्यक्ति है यह !

अरे ! यह तो एक वृद्ध हैं। श्वेत लम्बी दाढी, चेहरे पर झुर्रियां, शरीर अस्थिपंजरवत, जैसे मांस ही हड्डियो पर चिपका हुआ हो ! दुर्बल होते हुए भी यह पेड़ पर चढा हुआ है और कुल्हाड़ी मार-मारकर 'खट् खट्' वृक्ष से लकडियाँ काट रहा है। पसीने से लथपथ है पर यह सब होने पर भी इसका चेहरा मानो दिव्य तेज से चमचमा रहा है।

जगल की नीरव शान्ति मे उस 'खट खट्' की कर्कश ध्वनि दूर से ही सुन पड़ती है।

यह तो कोई साधु मालूम होते है, गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए हैं। गले मे रुद्राक्ष को माला है। फकीर-सी वेश-भूषा है

इनकी। लीजिये, पहिचान लिया इन्हें। अरे ! ये तो महर्षि मतङ्ग हैं। महर्षि पेड पर चढे आज स्वयं ही कुल्हाडी से लकडियाँ काट रहे हैं। यह खट् खट की ध्वनि उन्ही की कुल्हाडो से तो आ रही है।

महर्षि मतङ्ग! ज्ञान और तपस्या के मूर्तिमान् आदर्श! वह महर्षि मतङ्ग जो वृद्धावस्था मे भी स्वावलम्बन और शारीरिक श्रम के लिए विख्यात है। ज्ञान और श्रम, विद्वत्ता और सक्रियता सत्सङ्ग और कर्म के मूर्तिमान आदर्श हैं।

दूर-दूर से ज्ञान पिपासु इनकी अनुभव से निकली हुई अमृत-वाणी सुनने के लिए भागे आते हैं और इनके आध्यात्मिक सत्सङ्ग का पाकर अपना जीवन धन्य समझते है।

आज महर्षि मतङ्ग को यह क्या सूझो कि स्वय ही अपने दुर्बल बुढापे के शरीर से पेड पर चढकर इस गरमी मे लकडियाँ काट रहे है !

उनका शिष्य-समुदाय उन्हे ढूँढता-तलाश करता खट्-खट् की ध्वनि का सकेत पाकर उसी वृक्ष के नीचे आ इकट्ठा हुआ है।

'गुरुदेव! अब बहुत देर हो चुकी। आप थके दीख रहे हैं। पसीना बह रहा है। हम यह सहन नही कर सकते कि हमारे रहते आप जङ्गल में लकडियाँ काटते फिरें।'

'आचार्यप्रवर! अब आप हमारा प्रेमपूर्ण आग्रह मानिये। बस, काफी हो चुका श्रम ! आपके शरीर का पसीना बूँद-बूँद-कर नीचे टपक रहा है। हमे यह देखकर बडी लज्जा आ रही है।' शिष्यो ने अनेक प्रकार से अनुनय-विनय की।

जब महर्षि कहने से न माने, तो दो श्रद्धालु शिष्य पेड पर चढ़ गये। गुरुजी के हाथ से कुल्हाडी पकड़ ली। अन्त मे वात्स-

त्ववश महर्षि मतङ्ग को पेड से नीचे उतरना पड़ा। शिष्य लज्जित थे। उनका मन जिज्ञासा से भरा था।

'गुरुदेव! आपने हम सबके होते हुए लकड़ियाँ काटने का श्रम क्यो किया भला?' सबका आग्रह था।

'शिष्यो! देखते नही, बरसात का गीला मौसम पास आ रहा है। चार महीने चल सके, इतना ईंधन आश्रम के लिए जुटाना आवश्यक था न!'

'फिर गुरुदेव! आप स्वय ही कुल्हाड़ी लेकर अकेले ही चुप-चाप जङ्गल मे लकडियाँ काटने निकल पड़े? किसी को साथ न लिया आपने?' शिष्य पूछने लगे।

'मैंने तुम्हें जङ्गल में भेजना उचित न समझा! फिर मुझे भी तो शारीरिक श्रम करना चाहिए। कर्म तो धर्म का अङ्ग है। श्रम द्वारा ही हम जीवन के····धर्म के रहस्यो तक पहुँच सकते है।'

'यह उम्र! और यह कठोर श्रम! पसीने से लथपथ!'

'बच्चो, तुम्हार लिए श्रम करना तुम्हारे प्रति मेरे वात्सल्य का प्रतीक है।'

'ओह! हमारे लिए इतना कठोर श्रम! इतनी कष्ट सहि-ष्णुता गुरुदेव! हमारा इतना अधिक ध्यान?'

'बच्चो! पिता और गुरु मे कोई अन्तर नही होता। मुझे अध्ययन और मानसिक उन्नति के अतिरिक्त तुम्हारे स्वास्थ्य और सुख सुविधा का भी ध्यान रखना पड़ता हूँ।'

फिर: एक बात यह भी तो है—केवल दूसरों को उपदेश दे और स्वयं उस काम को न करे, यह तो आत्मवञ्चना है और है—गिराने वाला आदर्श।

महर्षि बहुत मना करने पर भी लकड़ी तोडते और संग्रह करवाते हुए आगे जंगल मे बढते गये। आचार्य को लकड़ियाँ इकट्ठा करने के उद्देश्य से आगे बढते देख शिष्य भी उनके साथ आगे बढ चले। यह सामूहिक श्रमदान का विलक्षण दृश्य था! इस श्रम से उन्हे जरा भी थकान प्रतीत नही होती थी।

अकस्मात् पीछे से उन्हे कोलाहल सुन पडा।

'अरे! यह कोलाहल कैसा है? ये कौन लोग चले आ रहे हैं?' महर्षि मतङ्ग ने मुड़कर जगला मार्ग की तरफ देखकर कहा।

धीरे-धीरे आने वाली भीड का दृश्य साफ दिखायी देने लगा। सत्सङ्ग-पिपासु भक्त प्रेमाविह्वल हो उधर ही भागे आ रहे थे।

आचार्य को ढूँढते ढूँढने उस आश्रम मे आये हुए अतिथि भी जगल मे आ पहुँचे थे। अब शिष्यो के अतिरिक्त भावुक जनता भी साथ थी ·· फिर भी सामूहिक श्रमदान का उत्साह-पूर्ण कार्य क्रम रुका नही, उलटे उसमे और जोश आ गया।

लकडियाँ काटते, तोडते बीनते-बीनते सभी आश्रमवासी घने जगल मे निकल गये। महर्षि आगे आगे मेहनत से अब भी ईंधन जुटाते जाते थे। सामूहिक श्रमदान से उस दिन उन सबने काफी ईंधन इकट्ठा कर लिया था। ईंधन के गट्ठर बाँधे, सिरो पर लादे, वे आश्रम की ओर वापस लौट पड़े थके-हारे, श्रम सीकर से नहाये हुए!

'अब थोड़ा विश्राम कर लीजिये गुरुदेव! आप बहुत थक गये है। पसीना पानी की धारा की तरह आपके शरीर से बह रहा है।' सभी ने फिर श्रद्धापूर्वक आग्रह किया।

महर्षि मतङ्ग की कुल्हाडी फिर भी सक्रिय रही। उनका कृशकाय शरीर गरम पसीने से लथपथ था, नीचे पैरों तले की जमीन भाड़ की रेत की तरह तप रही थी। आकाश मे ऊपर मे सूर्यदेवता आग बरसा रहे थे। उफ्! ऐसी प्रचण्ड गरमी.... और उसमें महर्षि का ऐसा कठोर श्रम !!

'बालको ! श्रम केवल स्वास्थ्यदायक और उपयोगी ही नहीं, शाश्वत ब्रह्मानन्द का सहोदर भी है।' महर्षि अपना दृष्टिकोण समझाते हुए कहने लगे—'शरीर को तामसी आलस्य के वश करके आराम से पड़े रहकर केवल कुछ पाठ-जप करने से ही उपासना तथा साधना पूरी नही होती। उसके लिये अपने शरीर के द्वारा श्रम करना भी आवश्यक है। उपयोगी श्रमपूर्ण कर्म उत्कर्ष और शक्ति प्रदान करने वाला होता है।'

महर्षि मतङ्ग तो गरमी और शारीरिक श्रम के कारण जैसे पसीने से नहाये हुए थे। वे बार-बार मस्तक से पसीना पोंछते थे और वह गरम गरम बूँदे तवे जैसी तपी हुई धरती पर गिरती जाती थी।

उनके शिष्य और श्रद्धालु भक्त भी थककर चकनाचूर थे। सबके कपड़े पसीने से तर-बतर थे।

थकान मीठी नीद देता है। महर्षि मतङ्ग के आश्रम में नगरों जैसी सुविधाएँ नहीं थी। न सोने के लिये गद्देदार पलंग, न और कोई आराम। संयम और श्रम का मिला जुला रूप था। आश्रम में कोई ऊँच नीच, वृद्ध युवक का अन्तर न था। सभी को अपनी शक्ति भर काम करना पड़ता था। उस दिन ईंधन भी सभी ने एकत्रित किया था। सभी बुरी तरह थक गये थे। रात को प्रगाढ़ निद्रा मे निमग्न हो गये।

(२)

दूसरे दिन—

प्रभात की स्वर्णरश्मियाँ क्षितिज पर खेलने लगी। पक्षी चहचहाने लगे। दिन निकलने गया।

पूर्व रात्रि के थकान के कारण सभी आश्रमवासियो को गहरी नींद आ गयी थी। हंसता हुआ सूर्य निकल आया।

'शिष्यो ! मान्य अतिथियो ! प्रातःकाल हो गया। उठकर देखिये तो सूर्य देव का लाल-लाल बिम्ब पूर्व दिशा की ओर उदित हो उठा है। दिन चढा जा रहा है। अब सोना छोडकर उठिये :—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।'

(ईश० २)

'हमारा काम ही हमे जीवन देता है। जीवन यज्ञ मे हम कर्म की ही तो आहुति देते हैं। हम कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करें।' अब टहलने को अमृत वेला है। उठकर टहलने चलिये, जिससे स्वच्छ वायु का आनन्द प्राप्त हो सके स्वास्थ्य और मनः स्थिति ठीक रहे। टहलना जीवन के लिए आवश्यक है। यहाँ प्रतिदिन सुबह टहलने का नियम है।

गुरुदेव का आदेश पा सब हडबडाते हुए उठे। वे अपने आलस्य पर लज्जित थे।

'क्षमा करे ऋषिवर! कल अधिक श्रम करने के कारण आज सुबह हमे विलम्ब हो गया।'

'कोई हर्ज नही। आप शौचादि से शीघ्र निवृत्त हो लें। आइये घूमने चले। कर्म ही प्रज्ञा है। कर्म और ज्ञान से ही जीवन पूर्ण बनता है जो चलता है, भाग्य उसके पक्ष मे रहता है। जो आलस्य मे सोया रहता है, उसकी अवनति होती है।

अवश्य ही कर्म होने चाहिये–ज्ञानमूलक तथा ज्ञान वर्धक। तभी उनका नाम 'कर्म' होता है।'

तत्काल आदेश का पालन हुआ।

सभी शिष्य और अतिथि शौचादि से निवृत्त हो टहलने निकल पड़े। प्रात:कालीन स्वच्छ वायु का आनद लेने जाते थे। रात्रि मे विश्राम से कुछ शक्ति और ताजगी आ गयी थीं। सरिता का जल यौवन की भांति किल्लोल कर रहा था। पक्षी आनन्द से मस्ती बिखेर रहे थे। वृक्षों की हरी-भरीं पत्तियां मादक बयार मे उन्मुक्त हिल रही थी। प्रकृति अपने मोहक रूप मे आनन्ददायक दीख पडती थो।

आगे-आगे महर्षि मतङ्ग और उनके पीछे-पीछे हँसते-खेलते उल्लसित शिष्य तथा अथितिगण टहलते हुए जंगल से गुजर रहे थे। कोई मुसकराता, तो कोई किलकिलाता !

सयोग की बात ! वे उधर ही निकल पड़े, जहाँ पहले दिन लकड़ियां काटने निकले थे। वही पूर्वपरिचित मार्ग था। कही-कही कल के टूटे पत्ते और वृक्षो की मुरझा ई हुई टहनियाँ अब भा पहिचानी जाती थी।

अकस्मात् वहाँ किसी अज्ञात स्थान से भीनी भीनी सुगन्ध का एक झोका आया। अहह ! अजोव मादक थी वह सुगन्ध !!

जिस जिसने उस महक को सूँघा, वह प्रफुल्लित हो उठा ! उसके कारण उसका मन मयूर नृत्य कर उठा।

यह अदम्य मीठी गन्ध चुम्बक की भाँति उन्हें अपनो ओर आकृष्ट कर रही थो। उस मादक गन्ध ने मानो उन्हे आनन्द के स्वर्ग मे ला उपस्थित किया।

'ऐसी मीठी सुगन्ध हमने कभी नही सूँघो ! अहह, बड़ी अजीब है यह सुगन्ध

'यह मधुर पुष्प-गन्ध तो यहाँ के समग्र वायु मण्डल मे व्याप्त है ।

'अहह ! आज तो इधर आकर जङ्गल मे टहलने का मजा ही आ गया इसकी मधुरिमा के कारण यहाँ से हिलने को मन नही करता । शायद किसी विशेष प्रकार के पुष्पो से यह मादक सुगन्ध आ रही है ।

जितने मुँह, उतनी ही बाते ।

'गुरुदेव ! यह अभिनव पुष्पगन्ध किस फूल की है ? ऐसी आकर्षक गन्ध हमने जीवन भर मे पहले कभी नही सूँघी ।'

'शिष्यो ! मैं भी पहली बार ही इन पुष्पो की गन्ध सूँघ रहा हूँ । मुझे इस फूल का नाम याद नही आ रहा है....पता नही, यह किस फूल की खुशबू है ?'

फिर महर्षि आगे बोले—

'शिष्यो ! उन फूलों को ढूँढकर पता लगाना चाहिये । युवको ! यह काम मैं तुम्हे सौंपता हूँ ।'

'जो आज्ञा गुरुदेव !'

महर्षि मतङ्ग भी चकित थे कि आखिर उस जगल मे कहाँ से वह अजीब महक आ रही थी ?

'शिष्यो ! जगल मे उस सुगन्ध की ओर जाओ । पता लगाओ, यह किस नये पुष्प की मादक महक है ? ऐसी मीठी तथा तेज सुगन्ध अपने जीवन मे मैंने कभी नही सूँघी है ।'

शिष्य खोज के लिये उधर ही निकल पड़े । वे सब ढूँढते और परखते हुए आगे चलते गये । सुगन्ध के स्रोत की ओर निरन्तर बढते गये ।

'अहह ! ये रहे वे फूल, जिनसे वह अभिनव सुगन्ध आ रही

है। इस सुरभि से तो हमारा अङ्ग प्रत्यङ्ग तरङ्गित हो उठा है ! ये पुष्प भी बड़े अद्भुत है ! कितने प्यारे ! कितने दुलारे !!'

शिष्य मुग्ध मन से उन्हे सूँघने लगे।

'महर्षि ! ये हैं वे अद्भुत पुष्प, जिनसे यह अभिनव सुगन्ध उत्पन्न हो रही है।' शिष्यो ने उन्हे फूल दिखाये।

महर्षि मतङ्ग ध्यान पूर्वक उन पुष्पो का परीक्षण करने लगे। मन मे सोच रहे थे कि यह कैसे फूल हैं !

सोचते-सोचते बिजली का चमक की तरह उनके मन मे एक नया विचार कौंध उठा ! एकाएक वे हर्ष से पुकार उठे—

'अरे ! यह तो वे ही श्रम की बूँदे हैं, जो कल ईंधन बटोरटे हुए हमारे शरीरो से धरती पर गिरी थी। वे श्रम सीकर ही फूल की तरह खिल रहे हैं यह तो श्रम की ही अभिनव सुगन्ध है शिष्यो !'

शिष्य चकित होकर उन फूलों को और ध्यान से देखने लगे।

'शिष्यो ! सत्कम मे ही चिरस्थायी सुगन्ध है—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतँ समाः।'

(ईश० २)

—निरन्तर कर्म करते हुए ही हम सौ वर्षो तक जीने को इच्छा करें।'

'गुरुदेव ! सचमुच हमने पाया है कि श्रम में चिरस्थायी सुगन्ध है।'

'इसमे किंचित् भी संदेह नही, शिष्यो ! श्रम ही जीवन में सफलता का मूलमन्त्र है। जो मनुष्य आलसी है, श्रम से दूर भागता है, बस अपने लक्ष्य की सिद्धि नही पा सकता।'

अपने पुरुषार्थ और आत्मबल से ही विपत्ति से निवृत्ति होती है।

एक गाँव मे दुर्बुद्धि नामक एक व्यक्ति रहता था। उसकी बुद्धि मन्द थी, किन्तु वह श्री राम के भक्त प्रवर हनुमान् जी का अनन्य भक्त था। भक्ति भाव से आर्त हो, देर तक हनुमानजी की पूजा और अराधना करता रहता था। वह भगवान् की शक्ति में हनुमान जी की शक्ति को ही सर्वोपरि मानता था। उसे पूर्ण विश्वास था कि सङ्कट के समय जब और कोई शक्ति सहायता नही करती, तो बजरङ्गबली ही सहायक हो सकते हैं। बजरङ्ग-बली के मन्दिर मे पूजन के लिए जाना उसका नित्यकर्म था।

दुर्बुद्धि किसानी का धन्धा करता था। अनाज या चारे से भरी गाडियाँ लाना ले जाना उसका प्रधान कार्य था। वह श्रम तो काफी करता था, किन्तु उसमे आत्मबल की कमी थी। वह स्वावलम्बी तो था, पर उसमें आत्म विकाम पर्याप्त न था। वह प्राय. अन्धविश्वासी था और सङ्कट के समय देवी देवताओ को अपनी सहायता के लिए पुकारा करता था। विना कर्म गुप्त दैवी हयासात मे उसका विश्वास जम गया था। यही उसकी सबसे गलत धारणा थी।

एक वार बरसात का मौसम था। रास्ते मे कीच-गारा फैला हुआ था। उसकी गाडी अनाज से भरी हुई थी। सयोग से उसका अनुमान कुछ गलत सिद्ध हुआ। जैसे ही वह एक कीचड वाले

मार्ग को पार करने लगा, वैसे ही उसकी बैल गाडी दलदल में फँस गई।

बहुत प्रयत्न करने पर भी कीचड़ से पहिया न निकला !

वह शारीरिक दृष्टि से ताकतवर था। पर था तो मन्दबुद्धि ही ! खुद अपनी ताकत न लगा कर उसने अनेक देवी देवताओं के नाम लिए और अपनी सहायता के लिए पुकारा। एक ही औषधि हर जगह काम नही आ सकती। इसी प्रकार बदलती परिस्थिति के अनुकूल ही सिद्धान्तों का प्रयोग उचित रहता है। देवी देवताओ का स्मरण मात्र आलसी और भग्यवादी लोग ही किया करते हैं। जब आदमी स्वय पुरुषार्थ से डरता है तो दैव दैव पुकारता है। संकट मे निराशा और खीज उत्पन्न होती है, और भाग्य या देवी देवताओ के सहरे खाली बैठे रहने से आदमी अकर्मण्य, नपु सक और निर्बल बन जाता है।

जब वह सब देवी देवताओ को सहायता के लिए पुकार कर हार गया तो उसने अपन इष्टदेव हनुमान जी का स्मरण किया—

'हे भक्तप्रवर महाबली बजरगबली ! मेरी सहायता कीजिए। हे शरणागत हनुमान जी, आप मेरा रक्षा कीजिए। भक्तराज, मुझे इस सकट से उबारिये। महावीर मुझे अपनी शक्ति दीजिए।'

भक्ति भाव से स्मरण करने पर यकायक एक दिव्य ज्योति के साथ भक्तप्रवर हनुमान जी प्रकट हुए। दुर्वद्धि उन्हे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसे आशा थी कि अब उसका संकट दूर हो गया।

'मैं धन्य हो गया, भक्त प्रवर ! मेरे मन के धन आप ही है। मेरे तन के श्वास प्रश्वास आप ही है बजरंगबली ! मेरा सब

बल पौरुष आपका ही तो है ! आप ही मेरी बुद्धि को प्रेरित करते हैं। धन्य है अपकी दीन वन्धुता !'

'ओफ ! तो तुमने मुझे अपनी गाडी इस कीचड मे से निकालने के लिए स्मरण किया है, दुर्बुद्धि !' 'हनुमान जी ने पूछा।

'हा भक्तप्रवर ! आपके सिवा मैंने कभी किसी को अपना विश्वास पात्र नही बनाया, भगवन् ! कृपा निधान इस गाडी को कीचड़ मे से निकाल दीजिए।'

'अरे ! इतनी सी बात के लिए हमे पुकार लिया, दुर्बुद्धि !'

'मेरे इष्टदेव ! दलदल से गाडी निकालना मेरे बलबूते में नही है। मैं इसे मुसीबत समझ रहा हूँ, हिमालय पर्वत जैसा मुसीबत !

'तुमने पूरी कोशिश कर ली है ?' कड़ककर महावीर हनुमान ने पूछा—

'भक्तप्रवर ! मैं याद करते करते हार गया। सभी देवी देवताओ को याद कर चुका हूँ। अब अन्त मे आपको सहायता के लिए पुकारा है।'

'नही, यह गलती बात है। मैं पूछता हूँ स्वयं तुमने अपनी सारी ताकत लगाई या नही। अपने आत्मबल से काम लिया या नही।'

वह कुछ बोल न सका। चकित विस्मित रह गया।

'दुर्बुद्धि ! तू गाडी से नीचे उतर कर पहियो को अपने मजबूत हाथो से निकालने का यत्न तो कर देख। जो आज्ञा मैं देता हूँ, वह कर।'

वह सुन रहा था। उधर हनुमान जी बोले जा रहे थे—

'....और फिर अपनी गाडी मे जुते बैलो को चाबुक से हाक तो तेरी दलदल मे फंसी गाड़ी अवश्य निकल जायगी। याद

रख, किसी कठोर कार्य में सहायता के लिए कोई देवी देवता नहीं आते प्रत्युत हर जगह स्वय अपना आत्मबल ही काम देता है। तेरी भुजाओ मे बड़ी शक्ति छिपी हुई है। तुझ में असख्य हाथों की ताकत है'

'पर मेरे ता दो ही हाथ हैं, भगवन्!

'इन दो हाथो की ताकत अपरिमित है। जरा जरा सी उलझन मे दु.खी होना छोड़ दे। जीवन के उतार-चढावों पर चिन्तित और उद्विग्न होना किसी प्रकार भी वाछनीय नही माना जा सकता। मनुष्य शक्ति स्वरूप है। उसका संकट मे दुःखी होना क्या? उसे तो ऐसे विपत्ति मे धैयवान् आनन्दित और उत्साहित होना चाहिए। यही आदमी की विशेषता है दुर्बुद्धि! अपने आत्मबल से काम ले।'

तब दुर्बुद्धि ने एक बार फिर प्रयत्न किया। इस बार पूरे आत्मबल के साथ। और सचमुच, उसकी गाडी दलदल से निकल गयी!

खेत की टूटी मेढ़ पर लेटने वाला आदर्श शिष्य

मूसलाधार वर्षा हो रही थी। आकाश मेघाच्छन्न था। चारो ओर पानी ही पानी दृष्टिगोचर होता था।

ऋषि धौम्य ने अपने शिष्य आरुणि से कहा—"बेटा! आज बारिश बहुत हो चुकी है। हम गुरु शिष्य भोजन के लिए मिल जुल कर खेती करते हैं। जो अनाज पैदा होता है, उसी से इस

गुरुकुल के विद्यार्थियों की गुजर बसर चलती है। आश्रम के लिए धान इसी खेत से उत्पन्न होता है। अधिक वर्षा से सभव है, फसल को भारी नुकसान पहुँचे। हमारे आश्रम की खेत की मेढ टूट जाने से पानी बाहर निकला जा रहा है। तुम सबसे आज्ञाकारी विद्यार्थी हो। जाकर मेढ बाँध आओ। धान की खेती के लिए जल को रोके रहना जरूरी है।

आरुणि 'जो आज्ञा गुरुदेव!' छात्र ने अपने अध्यापक को प्रणाम किया और चल पड़ा।

बारिश ज्यो की त्यो पडर ही थी। वातावरण में ठन्डक थी।

सचमुच पानी काफी पड चुका था। तब तक अरुणि खेत पर पहुँच चुका था। खेत मे पानी हा पानी भरा था। पौधे जलमान थे। फसल को भारी हानि पहुँच चुकी थी। भारी विपत्ति की आशका से वह काँप उठा।

उसने देखा कि खेत की मेढ टूट चुकी थी, और तमाम फसल के बह जाने का खतरा था। फसल का नुकसान, ऋषि धौम्य के आश्रम को हानि, भुखमरी—भोजन सम्बन्धी कठि-नाइयां।

भारी नुकसान की कल्पना से आरुणि काँप उठा। कैसे इस विपत्ति से छुटकारा हो। उसने आस-पास की मिट्टी बड़े परिश्रम से एकत्रित को और मेढ को बडे यत्न पूर्वक ठीक कर दिया। अब पानी रुक जायगा।

किन्तु अरे! खेत की मेढ़ तत्काल फिर टूट गई।

उसने हिम्मत न छोड़ो। फिर उसी प्रकार मिट्टी इकट्ठा की और इस बार पहले से भी अधिक ऊँची मेढ बना दी। उसे हाथ से पकड़े रहा। पानी कुछ क्षण के लिए रुका रहा।

प्राचीन काल में ऋषि धौम्य के आश्रम में कितने ही विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे। ऋषि को अपने शिष्यो के भोजन इत्यादि का भी प्रबन्ध करना पडता था। आश्रम के गुजारे के लिये एक छोटी-भूमि थी जिसमे खेती होती थी। सभी शिष्य गुरु के साथ खेती मे सहायता करते थे। जो उपज होती थी, उसी से भोजन का खर्च चलता था। ऋषि धौम्य अपने शिष्यो को विद्याध्ययन के साथ साथ अनुशासन, शिष्टाचार क्षमाशी-लता, तितिक्षा आदि सदगुणों की भी शिक्षा देते थे। उस समय यह विश्वास था कि विद्या के समान ही चरित्र भी आवश्यक है। सद्गुणों के विकास पर भी पूरा पूरा ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

वर्षा के पानी का बहाव तेज था। छात्र आरुणि से रुका नही। लेकिन गुरु की आज्ञा की अवहेलना भी नही हो सकती थी। जो आज्ञा मिल गई, चाहे कुछ भी हो उसका पालन करना उसने अपना धर्म समझा।

उसे एक उपाय सूझा।

मिट्टी तो पानी के बहाव में ठहर नहीं पाती। तनिक से वेग से मेढ बह जाती है। कोई ऐसी सख्त चीज होनी चाहिए जो जल के बेग के विपरीत चट्टान की तरह अडिग रहे। पानी को रोके रहे।

आस पास पत्थरों को तलाश किया, पर संयोग से कोई भी पत्थर नजर न आया।

अब क्या करे वह ?

कोई उपाय न देख छात्र आरुणि टूटी मेढ के स्थान पर स्वय ही लेट गया। इस प्रकार टूटी मेढ़ बन गई। पानी को रोके रहने मे उसे सफलता मिल गई। वह मन ही मन अपनी

सफलता पर प्रसन्न था। गुरु की आज्ञा पालन मे उसे आत्मा को शान्ति मिल रही थी। वह पानी की ठन्ड का कष्ट अनुभव कर रहा था। पर कर्तव्य पालन मे जो आनन्द होता है, उससे उसका मन पुलकित हो रहा था। वह इसी प्रकार देर तक लेटा रहा।

साय काल हो गया पर अरुणि वापिस न लौटा। ऋषि धौम्य को बडी चिन्ता हो गई। रात्रि हो चली थी।

क्या बात है कि आरुणि नही लौटा ? कही उसे कोई चोट तो नही लग गई ? वही पाव फिसल जाने से वह गिर तो नही पड़ा ? कोई विषैला हिंसक जन्तु उसे मार तो नही गया ? ऋषि का मन शकाओ से भर गया।

ऋषि धौम्य उसे खोजने निकल पड़े। रात्रि में उसका नाम ले लेकर पुकारते जाते थे। कभी पाँव फिसलता, कभी लडखडाने लगते, पर वे ढूढते जाते थे।

आरुणि ! आरुणि !! तुम कहाँ हो ? आरुणि, ओ आरुणि ! वे खेत पर ढूँढते ढूँढते आ पहुँचे उन्होने अनुमान लगाया कि आरुणि ने खेत की मेड को दुरुस्त कर दिया है,अवश्य यही आस पास होगा। यही तलाश करना चाहिए।

देखा धान के खेत मे जल भरा हुआ था। यह देखकर उन्होने पानी के बहाव की दिशा मे चलना शुरू किया। 'आरुणि !' कह कर पुकारते जाते थे।

अचानक एक ओर से उत्तर मिला, 'गुरुजी मैं यहाँ हूँ। खेत की मेड पर।'

'किधर हो ! आरुणि, दिशा बताओ। बोलो, किधर आऊँ ?'

'मैं खेत की मेड बना लेटा हुआ हूँ। मेरी आवाज की ओर चले आओ गुरुदेव।'

धौम्य ने जाकर पाया सचमुच आरुणि खेत की मेढ बने लेटा था और जल के बहाव को रोके हुए था। वे शिष्य की आज्ञा पालन की प्रवृत्ति पर प्रसन्न हो उठे।

उन्होने उसे उठा कर हृदय से लगा लिया। तुम जैसे शिष्य को पाकर मैं धन्य हुआ !

एक लाख नर मुण्डों का पहाड़ बनाने वाले राजा का मूल्य चार कौड़ी भी नहीं

(१)

"एक लाख आदमियो..........हमारे समस्त शत्रुओं विरोधियो गैर धर्मावलम्बियो और विद्रोहियो के सर धड से जुदा कर दिये जाँय....और फिर मनुष्य की उन खून से सनी खोपड़ियों का एक पहाड खडा किया जाय !" दुनिया के सबसे खूँखार और निर्दयी शहन्शाह तैमूरलङ्ग ने गरजती हुई कर्कश आवाज मे अपने सिपाहियों को हुक्म दिया। कौन था जो इस आज्ञा का विरोध कर सकता ! किसी को इतनी हिम्मत न थी जो तैमूर को आज्ञा का उलघन कर सकता !

फिर क्या था समूचे बगदाद मे कुहराम मच गया ! खूँखार भेड़ियो जैसे सिपाही ढूँढ़ ढूँढ कर तैमूरलङ्ग के शत्रुओं और विरोधियो का सिर धड़ से काटने लगे ! अनेक विधर्मियो को

कत्ल किया गया ! कितने ही निरपराध आदमियो को मौत के घाट उतारा गया। जिब पर सन्देह मात्र था, वे भी पकड मे आ गये।

यह खून की होली कई दिन तक खेली जाती रही। रक्त पिपासा का भयङ्कर कार्य उस क्षेत्र मे हा हाकार पैदा करता रहा !

रक्त से सनी एक लाख काफिरो की खोपडियो का पहाड लगाया जा रहा था। एक मुसलमान अधिकारी गिनती कर रहा था, कही सख्या कम न रह जाय।

कत्ल किये गए आदमियो मे वे इन्सान थे जिन्हे तैमूर ने अपना विरोधी समझा था, और कुछ तो ऐसे थे जो इस्लाम को नही मानते थे। कुछ पर केवल सन्देह मात्र ही था। दुर्भाग्य से वे सब उस क्रूर शासक के कोप भाजन बन गये थे। वह अपने शत्रुओ को भयानक यातनायें देने मे न चूकता था।

"शहन्शाह, नरमुण्डो का खून से सना पहाड हुक्म के मुताविक तैयार है ! मुलाहिजा हो जाय।" सिपाहियो ने दबे स्वर मे विवेदन किया।

"कही एक लाख से कम खोपडियां तो नही हैं" कट्टर शहन्शाह ने कर्कश आवाज मे अफसर से जबाव तलब किया।

'हजूर अपके तमाम शत्रु मारे जा चुके हैं। सब विरोधियो के सिर उडा दिये गये हैं। और गिनती पूरी करने के लिए बहुत से विधर्मियो और गुलामो को कत्ल कर दिया गया है। पूरे एक लाख कर दिये गये हैं।

"ठीक है। हः ! हः !! हः !!! अब हमारी दिल्ली तमन्ना पूरी हुई। हमारी हरवाकांक्षा और दर्प की तृप्ति हुई। अहह आज हम सबसे ताकतवर और मशहूर शहन्शाह हैं" बगदाद

में रक्त से सने नर मुण्डों का पहाड देखकर तैमूर लङ्ग एक राक्षसी हँसी हँसा।

"अहह! आज दुनिया में मेरी कीमत कितनी ऊँची है। मै खड़े खड़े लाखों आददियो को बकरों और हिरणो को तरह कटवा सकता हूँ।" दर्प से तैमूर लङ्ग के मुँह से अनायास ही निकला। 'भला कौन मुझ जैसे शक्तिशाली शहन्शाह के सामने टिक सकता है। किसकी हिम्मत है जो तैमूर के सामने चूँ भी कर उठे। आज मै दुनिया का सबसे कीमती आदमी हूँ।" उस दुर्दान्त व क्रूर जालिम ने दम्भ पूर्वक कहा।

व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा, अहङ्कार, कट्टरता, अभिमान और दुनिया मे अपनी कीमत सबसे अधिक समझने वाले खूंख्वार शहन्शाह तैमूर लङ्ग ने उन दिनो विशाल भू-भाग हाथियो की तरह रोद कर रख दिया था। उसकी निर्दयता से बगदाद क्या, एक बहुत बडा हिस्सा काँपता था। खड़े-खड़े वे मनुष्यों को बोटी-बोटी करा देते थे। वे विख्यात हिंसक राजा थे। जब वे आवेश मे होते थे, तो हजारो निरपराध आदमियों को पशु जैसी क्रूरता से कटवा देते थे।

(२)

बगदाद में एक बार यह हुआ कि शहन्शाह तैमूर लङ्ग बगदाद के गुलामो से नाराज हो गये। बस, जैसे कयामत ही आ गई! कितने ही गुलामो को मार डाला गया। पशुओ की तरह निर्दयता से पीटा गया। कुछ को गिरफ्तार कर जानवरो की तरह बाजार मे बेचा गया। कुछ तो बन्दी बना कर तैमूर लङ्ग के सामने पेश किया गया।

तैमूर लङ्ग ने उन्हे गालियाँ सुनाई और तरह-तरह से

अपमानित किया। उनके चिल्लाने पुकारने को सुनने वाला कोई न था।

दुर्भाग्य से इन गुलामो मे तुर्किस्तान के विख्यात कवि अहमदी भी पकडे गये। कवि अहमदी को भी गुलामो की पंक्ति मे ही खडा किया गया। वहाँ अच्छे बुरे अपराधी निरपराध का कोई भी भेद भाव न था। सब बन्दी बेबसी मे बलि के बकरो की तरह मूक खडे थे। अन्दर से उन सब का दम घुट रहा था कि न जाने किस क्षण सिर धड से उतार लिये जायें। जो बादशाह जरा से मतभेद, हठ और क्रोध से सैकडो को मरवा सकता है, वह कुछ इने गिने गुलामो के साथ अमानुशिकता का व्यवहार करने मे कब सकोच करेगा। वह किसी कसाई से कम न था। कसाई तो निरपराध जीवो को ही काटता है, तैमूर सैंकडो हजारो आदमियो को गाजर मूली की तरह कटवा चुका था।

एक ओर गुलामो की भीड खडी थी। एकएक कर वे तैमूर-लङ्ग के सामने पेश किये जा रहे थे। वह राक्षसी हँसी हसते हुए उन पर कटु व्यंग कस रहा था। अप शब्द बालकर अपने राक्षसी दप की पूर्ति कर रहा था। सभी इन कुकृत्यो और वहशीपन को देख रहे थे, पर उसकी नाशकारी हिंसा वृत्ति को रोकने का किसी मे साहस न था।

तैमूर से बहस करना ज्वालामुखी मे आग उत्पन्न करना था! कुछ भी कहना मौत को निमन्त्रण देना था।

आज तैमूर की इच्छा हुई कि और गुलामो की तरह तुर्किस्तान के मशहूर शायर अहमदी से भी कुछ मजाक किया जाये। कुछ मूड विनोदी था उसका।

उसने कवि को सामने बुलाया, 'सुना है अहमदी, शायर

लोग बड़े पारखी होते हैं ?" दर्प के स्वर में कवि पर तैमूरलङ्ग ने व्यंग-वाण फेंका।

"हजूर, ठीक फरमाते है। शायर लोग ऊँची नीची, अच्छी बुरी, हलकी भारी, सस्ती मँहगी चीजो की आसानी सेपरख करते रहते हैं।"

"अहमदी, क्या वे आदमी की भी परख जानते हैं ?

'हजूर, बाजार की चीजों की तरह समाज में सबकी ऊँची नीची कीमते है। दुनिया में हर चीज की कीमत है।

"तो क्या आदमियों की भी कीमते होती है, अहमदी ?' लठ्ठास करते हुए तैमूर ने सवाल किया—

"गुस्ताखी माफ हो" हजूर, कीमते तो सबकी है। हर मर्द औरत और बच्चे की..................हर मजदूर और मालिक की.........हर कलाकार, साहित्यकार, शिल्पकार की कुछ न कुछ कीमत जरूर होती है। कोई इस कीमत को जानते है, कोई उस कीमत को पहचानने की कोशिश ही नही करते।

'अहह ! खूब कहा तुमने आदमी की कीमत है। विद्रूप की हँसी हँसते हुए तमूर बोल उठा—

"हः ! ह !!' वह कुछ देर राक्षसी हसी हसता रहा। फिर कहने लगा—

"अच्छा जरा बताओ तो इन दोनों गुलामों की कीमत क्या होगी तुम्हारी निगाह मे ?" कवि अहमद इस सवाल के लिए तैयार न थे। वे उसका उत्तर सोचने लगे। कौन-सा उत्तर तैमूर लङ्ग को पसन्द आयेगा !

तमूर फिर बोला, "सोच कर इन गुलामों की परख करना शायर-साहब, आदमी कोई गाजर मूली नही है कि जो चाही

कीमत लगा दी। चीज से जानवर और जानवर से इंसान कहीं ज्यादा कीमती होता है।"

ठीक है, हुजूर! यह ख्याल मैं रखूंगा। लेकिन..........हुजूर, इन गुलामो की कीमत लगाना कुछ मुश्किल है। पता नही इनमे कितनी मानवता, कितनी योग्यता, कार्यक्षमता और चरित्र के सद्गुण होगे।"

"फिर भी शायद अहमदी, तुम्हारी निगाह में ये गुलाम कितने-कितने के होगे!"

अहमदी सोचते रहे। फिर बोले—

"हुजूर, इन गुलामो मे से कोई भी चार हजार अशर्फियो से कम कीमत का नही है।" सरल और स्पष्ट उत्तर था।

"ओफ! चार-चार हजार अशर्फियां! इतनी ज्यादा कीमत! काफी ऊँची कीमत बताई! अपनी सफाई पेश करो!"

"हुजूर, ये गुलाम जिन्दगी मे इनसे भी अधिक कीमत का काम कर डालेंगे। अधिक उत्पादकता, ऊँचे किस्म का काम और ईश्वरीय सद्गुणो पर ही तो कीमत लगाई जाती है आदमी की।"

'हम अभी तक तुम्हारा मतलब नही समझे? विस्तार से बताओ, कवि अहमदी! हमे तुम्हारी बातो मे दिलचस्पी हो रही है।"

"हुजूर, प्रत्येक व्यवसाय का यह उद्देश्य है कि जो माल पैदा किया जाय, उसकी उत्पादन लागत कम से कम रहे। अधिक काम करने वाले शरीफ लोगो पर ही मुल्क की तरक्की निर्भर होती है..........जो मुल्क और रिआया की बेहतरी का ख्याल रख प्रत्येक क्षण उद्योग और श्रम करते है, नए-नए तरीको, सुझावो एवम् विकाश के तरीके काम मे लाते है, वे ही

कीमती है। नैतिकता, चरित्र और सद्व्यवहार से आदमी मूल्य-वान बनते है।"

यह सुनकर तैमूर एक नए तरीके से सोचने लगा। कवि अहमदी डर गये कि शहन्शाह नाराज हो गये शायद।

"शहन्शाह ! आप क्या सोच रहे हैं ?" कवि ने सहमते स्वर में पूछा।

"फिर शायर साहब, यह बताओ कि हमारी कीमत क्या होगी ?" तैमूर के स्वर में अभिमान, दर्प और व्यग्य का मिश्रण था।

कवि अहमदी बड़े संशय मे पड गये। उनके चेहरे पर उल-झन स्पष्ट थी।

तैमूर ने समझा यह डर के कारण ही झिझक रहे हैं। "एक शहन्शाह की कीमत बहुत अधिक होती है। फिर मुझ जसे विजेता की कीमत का अन्दाज दर असल बहुत मुश्किल भी है।" उसने मन ही मन विचारा।

"हजूर यह कोई २४ अशर्फियाँ !" निश्चित भाव से कवि ने उत्तर दिया।

ये शब्द बन्दूक से छूटने वाली गोली की तरह तैमूर के सीने मे लगे ! अनगिनत कराहो और चीत्कारों से विचलित न होने वाला उसका हृदय मानो सैकडो छोटे-छोटे टुकड़ो मे चकनाचूर हो गया ! उसके दर्प और अहकार को गहरी चोट लगी उसने इसमे अपना अपमान समझा।

क्रोध से उनका चेहरा तमतता उठा !

तैमूर चिल्ला कर बोला,—"बदमाश, तू जानता है इन शब्दो का क्या मतलब होता है ? जरा जबान सम्हाल कर बोल वर्ना तेरी जीभ कटवा कर कुत्तो को खिलवा दूंगा। तैमूर

जैसे दुनियाँ को कपाँ देने वाले शहन्शाह की कीमत सिर्फ २४ अशर्फिया बताता है और एक नाच ज गुलाम की कीमत चार हजार अशर्फियाँ आकता है। मैं इसे अपनी बडो भारी तौहीन समझता हूँ। सजा देनी होगी इस तौहीन की। फिर सोच कर जवाब दे ! रहम कर तुझ एक मौका और देता हूँ।"

क्रोध से तैमर आग बबूला हो रहा था।

कवि अहमदी ने उसकी बातें सुनी, क्रोध और खू ख्वार पन की झाँकी देखी, पर चुप रहा।

काले काले बादलो मे जैसे बिजली कडकती है और बादल गरजते है, वैसी ही कर्कश आवाज मे तैमूर गुर्राने लगा—

"वदमाश, इतनी सी अशर्फियो मे तो मेरी सदरी भी नही बन सकती। बता तो तू यह कैसे कहता है कि मेरी कीमत सिर्फ चौबीस अशर्फिया हैं।" वह गुस्से से आगबबूला था।

लेकिन कवि अहमदो निभय थे। उन्होने बड़ी सोच समझ कर यह जवाब दिया था। बिना किसी आवेश या उत्तेजना के वे स्पष्टीकरण करने लगे—

"हजूर गुस्ताखी माफ हो। बस यह कीमत उसी सदरी की ही है।" आवेश मे तैमूर लङ्ग का पारा चढता जा रहा था।

'और—........मेरी................कीमत ?" वह गरज कर बोला—

"जी आपकी कीमत तो कुछ भी नही है।"

ये शब्द थे, या पिस्तौल की गोलियाँ !

इतना सुनना था कि तैमूर लङ्ग का रहा सहा अभिमान और अहङ्कार सर्प की तरह फुङ्कार उठा। पीपल की पत्तो की तरह वह क्रोध से उन्मत्त हो काँपने लगा।

"या तो अपनी बात को साफ करो, वर्ना तुम्हारे सिर की

खैर न-ी। तुम दुनिया के सबसे कट्टर और ख'ख्वार शहन्शाह तैमूरलङ्ग से बातें कर रहे हो, समझे अहमदी? जबान सम्हालो क्या बक रहे हो!

"हजूर गुस्ताखी माफ हो। आपने बार-बार पूछा, तभी मैंने अर्ज किया था।"

"लेकिन तुमने यह कहा क्यो? आखिर तुम्हारा मतलब क्या है?

"हजूर, जो आदमी दु'खी पीड़ितों की सेवा नही कर सकता, बडा होकर छोटो की रक्षा की तरफ दिलचस्पी नही दिखाता, अनाथों की············असहायों की मुसीवतें दूर नही कर सकता, मनुष्य से बढ़कर जिसे व्यक्तिगत मयहत्त्वाकांक्षा, अहङ्कार और जवाहिरातों की तृष्णा प्यारी है, उस इन्सान का मूल्य चार कौड़ी भी नही···········।"

"ओह! यह बात है तो फिर? बात को और समझाओ।"

"हजूर, शास्त्रो मे तो परोपकार, पर दुःख, कातरता, दया करुणा आदि गुणो को ही मनुष्य का भूषण और मोक्ष का प्रदाता बतलाया है। मानव-जीवन का सबसे बडा फायदा यही बतलाया है कि वह अन्य प्राणियो के दु ख, कष्ट, अभावो को दूर करने मे प्रयुक्त हा सके।"

'फिर मेरी कीमत कुछ भी क्यों नही?" तैमर ने पूछा।

"हजूर इस सम्बन्ध मे संस्कृत का एक श्लोक सुन लीजिए बात साफ हो जायगी। कहा है—

मोऽहिंसकानि भूतानि हिनस्यात्मसुखच्छया।
स जीवेश्चैव न क्वाचिति सुखमेधते॥

अर्थात्—"जो आदमी अपने सुख के लिए अन्य प्राणियों को

मारता पीडित करता है, उसका ज`वन व्यर्थं ही है और कभी सुख नही पा सकता।"

"बात काम की कही तुमने। कुछ और बताओ इस बारे में।"

"जी हाँ, हजूर, हिंसक कभी खुदा के स्वर्ग राज्य में दाखिल नही हो सकता। शास्त्रो मे अन्य प्राणियो के दु ख, कष्ट और हिंसा करने की बडी निन्दा की गई है। प्राणी वध, जीव हिंसा और किसी को सताने को पाप कहा गया है।"

"क्या किसी हिंसक राजा का वणन याद है तुम्हे?"

"हजूर, भागवत् मे देवी देवताओ के नाम पर पशुओ तक को काटने को महापाप बतलाया गया है और एक ऐसे पशु हिंसक राजा का वर्णन करते हुए लिखा है।"

"क्या लिखा है, हमे सुनाओ।" 'तैमूर ने शान्त भाव से पूछा।'....सुनिये हजूर—

"भो भोः प्रजायते राजन्य शून्यश्च त्वयाध्वरे।
सत्तायियातृ जीवसंघान्निघृणेन स स्त्रश ॥
एतेता सम्प्रीक्षन्ते स्यरत्तो वैशस तव।
सम्यरेतमयः कुटैश्छिन्नेन्त्युय नन्वयः ॥"

"इसका मतलब क्या है?" तैमूर ने जिज्ञासा प्रकट की।

"हजूर, इसमे पशु हिंसक राजा को सम्बाधन करके कहा गया है, "हे राजा! तू ने हजारो निरपराध पशुओ का देवी देवताओ के नाम पर बलिदान करवाया। देख, अब वे ही पशु तेरी क्रूरता की याद करते हुए क्रोध मे भरें तीखे हथियार लेकर तेर शरीर की बोटी-बोटी काटने को तैयार बैठे है।" जब पशु-हिंसक की ऐसी गति है, तो मनुष्य हिंसक की तो बड़ी भारी

दुर्गति होगी ! हजूर, ऐसे शहन्शाहों से तो अच्छे वे गुलाम ही हैं, जो किसी की हिंसा न कर ईमानदारी से परिश्रम कर रोटी खाते है।"

तैमूर इन बातों में उलझ गया। उसके पुराने हिंसा मूलक विचारों को बड़ा धक्का लगा। आज उसे अपनी सांसारिक शान-शौकत सारहीन प्रतीत हुई।

"तो सबसे अच्छा धर्म क्या हो सकता है, अहमदी ?"

"हजूर, माफ करे,। मैं तो मनु के बताये हुए धर्म मार्ग को ही मानता हूँ। मुसलमान होते हुए भी मुझे जैन और बौद्ध धर्मों मे सबसे उपयोगी तत्त्व दीखते हैं।"

"वे क्या हैं, अहमदी ? मुझे आज उन्हें जानने की इच्छा हैं।"

"हजूर, मनु ने सब वर्ण के लोगो के लिए नीति धर्म के पांच नियम बतलाये है। अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः (मनुस्मृति १०-६३) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, काया की और मन की शुद्धता एव इन्द्रिय निग्रह। इनमे अहिंसा परमोधर्मः (महा० भा० आ० ११-१३) यह तत्त्व हिन्दुओं के वैदिक धर्म मे ही नही, किन्तु अन्य सब धर्मों में भी प्रधान माना गया है।"

"अहिंसा और किस-किस धर्म में है ?"

"हजूर, जैन, बौद्ध और ईसाई धर्म ग्रन्थों में जो-जो आज्ञाये है, उनमे अहिंसा को पहला दर्जा दिया गया है।"

"क्या सिर्फ किसी की जान न लेना ही अहिंसा है ?'

'हजूर, उसमे किसी जीव के मन अथवा शरीर को भी दुःख न देने का आदेश है। मतलब यह है कि किसी सचेतन प्राणी को किसी प्रकार दुःखित न करना ही अहिंसा है। इस ससार

मे सब समझदार धार्मिक वृत्ति के लोगो की राय मे यह अहिंसा ही सब धर्मों मे श्रेष्ठ मानी गयी है।"

तब तो हम से बड़े पाप हो गये !" कह कर तैमूरलग पछताने लगे।

भारत की साम्राज्ञी को जब स्वयं भोजन बनाना पड़ता था।

सम्राट ! यह देखिए आज फिर भोजन पकाते समय मेरा हाथ जल गया !' पीड़ा से बेचैन होकर बेगम ने झुझलाते हुए सम्राट नासिरुद्दीन से प्रेम मिश्रित करुण स्वर मे फरियाद की।

'अरे ! यह क्या ? ओफ ! तुम्हारे हाथ मे तो फफोले उठ आये हैं !' नासिरुद्दीन ने सहानुभूति का मरहम लगाया।

सचमुच रोटी पकाते हुए उस दिन भाप से भारत की साम्राज्ञी के हाथ झुलस गये थे।

बात यह थी कि उन्हे अपने हाथो भोजन पकाने का अभ्यास न था। राजसी परिवार मे प्रारम्भिक जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री के लिए स्वय हाथ से अपना तथा सम्राट् का भोजन पकाना हिमालय जैसा महान् कष्टसाध्य कार्य था। इनके पिता के पास सदैव प्रत्येक कार्य के लिए एक नही, अनेक नौकर हाजिर रहते थे। मुंह से फरमाइश निकलते ही हुक्म का पालन होता था। शाहजादी सारे दिन आराम से गुदगुदे बिस्तरो पर लोट लगाया करती। बावर्चिन भोजन बनाती और खानसामा उसे शाही मेज पर सजा देता। हसीन कम उम्र शाहजादी तो

सब्जी में बस नोन मिर्च के कम ज्यादा होने की शिकायत मात्र करती रहती थी, रोटियों के मोटी होने या जल जाने की खराबी निकाला करती थीं।

हाँ, जब से उनकी शादी दिल्ली के सम्राट् नासिरुद्दीन से हुई, तब से जैसे उनकी दुनियाँ ही बदल गई!

क्यों? आखिर क्या हुआ?

अब उस बेचारी को भारत सम्राट् की बेगम होते हुए भी स्वयं ही अपने परिवार का भोजन पकाना पड़ता है। उसने खाना बनाना सीखा है, पर अभी पर्याप्त अभ्यास नही हुआ है। जब वह भोजन पकाती है, तो कई बार भाप से उसकी उँगली जल जाती है। नेत्रों मे कडुआ धुआँ लग जाने से आँसू बहने लगते है। कभी उसकी रोटियाँ कच्ची रह जाती हैं, तो कभी वे लापरवाही के कारण जल जाती। कभी आटे में पानी अधिक पड़ जाने से वह पतला अधिक हो जाता और चकले या बेलन पर बुरी तरह चिपक जाता। उसकी बिली हुई रोटी कही मोटी रहती तो कहीं से फट जाती, कभी बच्चो जैसी छोटी-सी रह जाती तो कभी बड़े आकार को हो जाती। रोटा पकाने के मामले में वह अपने आपको असफल पाती।

'कमबख्त रोटी फूलती ही नही!'

'भोजन बनाना भी अजीब मुसीबत है!!

इस प्रकार के वाक्य प्राय: उसके मुँह से निकला करते।

कई बार उसके मन मे आया कि सम्राट् से अपनी भोजन पकाने सम्बन्धी असमर्थता प्रकट करे। कह डाले—'जनाब शहशाहे हुजूर, मैं भी दिल्ली सम्राट् की प्रियतमा हूँ, कोई रोटी पकाने वाली बावर्चिन नहीं हूँ। आप राजगद्दी पर बैठ देश पर शासन करते हैं, तो मैं जनानखाने मे अपना हुक्म चलाऊँगी।

आपका हुक्म बजाने के लिए बेशुमार नौकर हैं, तो मेरी सेवा चाकरी के लिए भी दस-पाँच बाँदियाँ होनी चाहिए। भारत की साम्राज्ञी की हैसियत के मुताबिक मेरी पारिवारिक इज्जत होनी चाहिए। यह कैसी हिमाकत है कि इतने बड़े देश की साम्राज्ञी होकर मुझसे घर का भोजन पकवाया जाता है। मेरे फूल से कोमल हाथ जल जाते हैं, खञ्जन से मदमाते नेत्रों में कड़ुवे आंसू बहने लगते है, मक्खन-सी मुलायम त्वचा खुरदरी और सङ्गमरमर सी सफेद रङ्गत जले कोयले-सी काली हो चली है। मुझ से खाना पकवाना मेरे साथ सरासर अन्याय है। कोई भोजन पकाने वाली नौकरानी रखी जाय।'

ये क्रान्तिकारी विचार साम्राज्ञी के दिमाग को विक्षुब्ध कर देते, पर शिकायत के शब्द बेचारी के ओठो पर आते-आते जैसे रुक जाते। सम्राट् के सामने जबान न खुलती। बस जली भुनी उद्विग्न हो चुप रह जाती।

मुझे खाना बनाने वाली नौकरानी चाहिये ऐसे कई अवसर आये। वह कुछ न कह सकी। शब्द मुँह से निकलने के लिए मचलते रहे।

पर आज ?

उसकी सीमा चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। "नही ! आज शिकायत करनी ही पडेगी। कब तक हाथ जलाये जाते रहेगे।"

वह भोजन पकाते-पकाते क्रुद्ध घायल सर्पिणी-सी उठी और झुंझलायी हुई सीधे बादशाह के पास शिकायत रूपी गोली दाग दी—

"सम्राट् ! यह देखिये आज भोजन पकाते समय मेरा हाथ जल गया। हाय ! बड़ी बुरी तरह जला है। बड़ी पीड़ा हो रही

है। सहा तक नहीं जाता। यह देखिये, कैसे फफोला उठ आये है !!"

सम्राट् न सिरुद्दीन टोपियाँ सीं रहे थे। उनका प्रण था कि जनता के रुपये में से अपने निजी खर्च के लिए एक पैसा भी न लिया जाये। खुद मेहनत करके अपनी जीविका उपार्जन की जाय। वह फालतू समय में टोपियाँ सीने और थोड़ी-सी आमदनी से गुजर बसर करते। किसी को यह रहस्य पता न था।

सम्राट् ने एक प्रेम भरी दृष्टि अपनी बेगम पर डाली। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर देखा तो दरअसल बेगम का बुरी तरह झुलस गया था। उस पर फफोले उठ आये थे। यह हालत देख वे भी मन-ही-मन बडे दुःखी हुए। कुछ देर तक अपलक साम्राज्ञी का म्लान मुख-मण्डल निहारते रहे।

आन्तरिक पीडा के शिकन बेगम के फूल जैसे मधुर मुखड़े पर स्पष्ट अङ्कित थे जैसे रात में चन्द्रमा के चारों ओर काले-काले बादलों के टुकड़े।

वह आज बड़ी विक्षुब्ध थीं। बहुत दुःख भरे स्वर में कहने लगी—"सम्राट्! इतने बड़े देश के मालिक होकर भी क्या आप मेरे लिए रोटी बनाने वाली कोई नौकरानी नही रख सकते? देखिये, मेरे हाथ आज कैसी बुरी तरह जल भुन गये हैं! इस लम्बे चौड़े मुल्क के शहनशाह की बेगम की यह हालत!! क्या आपको मुझ पर रहम नही आता? आप यह सब दुर्गति कैसे गवारा कर लेते हैं?"

सम्राट् को बेगम के जले हाथ देख कर सचमुच बड़ा सदमा पहुँचा। लज्जा और आत्मग्लानि से वे पानी-पानी हो गये। कुछ देर तक तो बोल मुँह से नही निकला। वे अनुभव कर रहे

थे. "मैं ही बेगम की मुसीबतों का कारण हूँ। ससार की तवारीख मे शायद ही कोई साम्राज्ञी की तरह खाविन्द की रोटी पकाती होगी। मैं चाहे शाही खजाने से अपने निजी हाथ खर्च के लिए कुछ न लूँ, पर मेरी वजह से इस बेचारी को भी परेशानी उठानी पडे, यह और साम्राज्ञियो को तरह आराम, सुख और सुविधाएँ न पाये, यह तो उचित नही है।"

फिर भी बात को टालने की दृष्टि से वे बोलेः—

"प्यारी मल्का ! मुझे मुल्क का मालिक न कहो !"

"आप दिल्ली के इस इतिहास प्रसिद्ध तख्त पर बैठे शासन कर रहे हैं। आपको जनता के भाग्य के वारे न्यारे करने का पूरा हक हासिल है। शहनशाह का पूरा हुक्म ही कानून हैं। फिर आप इस मुल्क के मालिक नहो, तो भला दूसरा कौन है ?"

"नही, नही, मालिक तो सिर्फ खुदा ही है।"

"हुजूर फिर आप क्या हैं ? सुनूँ तो, दिल्ली का सम्राट् अपने आप को क्या गिनता है ?"

'मैं तो एक नाचीज खिदमतगार हूँ।"

शहन्शाह का यह सक्षिप्त-सा उत्तर सुन कर बेगम उलझन मे पड़ गई। वह अथ नही समझी।

बोली—"हुजूर, आपने अपने आप को खिदमतगार (नौकर) कैसे कहा ? यह बात मन में नही बैठती।"

जवाब के लिए वह सम्राट् के चेहरे की ओर निहारने लगी।

थोडा मुस्करा कर नासिरुद्दीन बोले—

"अरे मल्का ! मेरी बात तो दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट है। तुम देखती ही हो, मैं समय बचाकर टोपियाँ सी-सी कर

अपनी खुद की मेहनत से जो थोड़े से पैसे कमाता हूँ, उससे ही अपनी गुजर-बसर करता हूँ। हमारे मुल्क में लोग आलस में बैठे रहने और हरामखोरी करने को ही बडप्पन मान बैठे हैं। वे मूर्ख इस बात का घमण्ड करते हैं कि उनके नौकर-चाकर ही उनका सारा काम कर देते हैं। हमारे यहाँ ऐसे भी काहिल राजा हुए है, जिन्हें कपडा पहिनाने, उतारने और जूता खोलने बांधने का काम तक नौकर करते थे।"

बेगम चुप थी, पर शहन्शाह बोलते रहे—

"अभी भी जिन अमीरों के पास जमीन जायदाद हैं, वे बडे कहला ने वाले आदमी इस बात मे घमण्ड समझते हैं कि उन्हें कुछ काम नही करना पड़ता। सारा दिन आलस में ठाली बैठे बीत जाता है। जिनके बच्चे कमाऊ हो गये हैं, उनके भी माँ बाप सोचते हैं कि अब उन्हें काम क्यों करना चाहिए। यह अभागा देश गलती प न जाने उन लोगो को क्यों सन्त महात्मा मानता है, जो मेहनत रत्ती भर भी न करें और मुफ्त का माल उड़ाये! तुम्ही बताओ, क्या अमीर और भाग्यवान् की यही परिभाषा है?

बेगम ने विषय को फिर बदला—

बोली—"दिल्ली का सारा शाही खजाना तो आपके हाथ है। इसमें से खर्च करने से आपको भला कौन रोकता है?"

"तुम मेरा मतलब नही समझीं, बेगम! भला इस सरकारी खजाने मे मेरा क्या है? यह तो सब इस मुल्क की रियाया की चीज है।..........और..........प्रजा के कामो में ही खर्च होनी चाहिये।"

"फिर भी खर्च करने में भला आपका हाथ कौन पकड़ता है?"

"यह ठीक है कि सरकारी खजाने को अनुचित तरीके से खर्च करूँ, तो आज मेरा हाथ कोई प्रजा-जन नही पकड़ेगा………।"

सम्राट् कुछ कहते-कहते रुक गये ।

"तो फिर नौकरानी रखने मे आपको क्या डर है ?" बेगम ने उनका पीछा न छोड़ा—"भला आप को किसे हिसाब देना है ? किस की हिम्मत है कि आप से हिसाब मांग सके ।"

"हिसाब ? हिसाब कल खुदा सामने मुझे क्या, हर एक को हिसाब देना ही होगा । बेगम, तुम जरा गहराई से तो सोच कर देखो। हम राजा लोग सार्वजनिक सम्पत्ति के ट्रस्टी हैं । प्रजा की तरफ से उसी के इन्तजाम के लिये खर्च करने वाले हैं। मैं अगर इस अमानत मे खयामुत करूँ, प्रजा के पैसे खुद के खर्च मे लाऊँ, तो ईश्वर के सामने गुनाहगार ठहराया जाऊँगा………।"

यह कहते-कहते नासिरुद्दन की आंखे डबडबा आई ।

सच्ची बात और फिर जब वह हृदय के गहनतल से निकली तो असर किये बिना न रही । बेगम सम्राट् का मतलब समझ गई ।

वह सोचने लगी "वाकई सम्राट् ने ठीक ही कहा है । जिस मुल्क मे आलसी पूँजीपति पुरानी पूँजी के बल पर सम्मान पाते हो, निठल्ले भाग्यवान कहलाते हो, और श्रमिको को छोटा तिरस्कृत या अछूत समझा जाता हो, उस देश का भविष्य क्या होगा ? श्रम से जी चुराने वालो पर जितनी विपत्तियाँ पड़े कम है ।"

उन्होने फिर कभी भोजन पकाने के लिए दासी की फरमाइश पेश नही की ।

जब ऋषि गहने बनवाने निकले

एक बात बहुत दिनों से कहना चाहती थी, महर्षि !'

'कहो, चुप कैसे रह गयी, भद्रे !'

ऋषि पत्नी लोपामुद्रा ने महर्षि अगस्त्य से एक दिन कहा—

'मेरी इच्छा है पतिदेव ! आप मेरी अशिष्टता क्षमा करें, तो कुछ कहूँ ?

'अवश्य कहो, क्षमा करने की बात तुमने खूब कही, जो कहना हो साफ-साफ कह डालो। पति–पत्नी में दुराव कैसा ! मन की गुत्थी खोल दो। भला, आज तक क्यों न कही वह बात ?

'महर्षि ! विचित्र इच्छा है मेरी। एक ऋषि की धर्म-पत्नी के लिए ऐसा सोचना भी शायद अप्रिय लगे।'

'इसकी चिन्ता न करो लोपामुद्रा ! हम सब आखिर हाड़-मास के पुतले ही हैं। कोई देवी - देवता की कोटि को तो पहुँचे नहीं हैं, जो मन की इच्छाओं और कल्पनाओं को जीत चुके हों ! फिर तुम तो कम आयु की नारी हो। मैं तो तपस्वी हूँ, इन्द्रिय-निग्रह का अभ्यास करता रहता हूँ ...त्याग और संयम में विश्वास करता हूँ.... मैंने तो अपनी सांसारिक वासनाओं का दमन किया है ...लेकिन....अरे, मैं यह क्या कहने लगा ! तुम कुछ कह रही थी मुझसे ?'

लोपामुद्रा बोली—

'मैं तो अल्पज्ञ ...अज्ञानी....अविकसित नारी हूँ....सांसारिक

प्रलोभन प्राय. मुझे दबा लेते है.......अभी आत्म-विकास के उस ऊँचे स्तर पर नही पहुँच सकी... हूँ।'

'कोई बात नही लोपामुद्रा ! तुम नि शक अपने मन की वह गुप्त इच्छा कहो। तुम तो कभी कुछ कहती ही नही हो। पता नही, आज तुहारे मन मे कुछ कहने की इच्छा क्यो कर उमड पडी है।'

'आप भी क्या कहेगे, इस लोपामुद्रा को आज क्या सूझी है !'

'अरे, यह भी क्या सोचने की बात है ! मन की उमङ्ग ही सही !'

बात यह है कि जब मैं अपनी उम्र की नारियो को ...।'

हाँ, हाँ, कहो न कहते-कहते रुक क्यो गयी ? इसमे छिपाने जैसी क्या बात है ? भला तुम अपनी उम्र की स्त्रियो मे क्या देखती हो ? अपने मे क्या कमी पाती हो !

'कुछ नही ! मैं कह रही थी.......मेरा मतलब है कि.......।'

क्या अभिप्राय है तुम्हारा ? कहो न। लोपामुद्रा ! तुम बड़ी सकोचशीला हो !

'छोटी-सी बात है ...मैं जब अपनी आयु की नारियो को अच्छे आभूषण पहिने देखती हूँ तो.......।'

'आभूषण !....नारी और आभूषण-दोनो एक ही नाम हैं। मै तुम्हारा मतलब समझ गया। बस, तुम्हारे इस सकेत मात्र से मैंने अनुमान लगा लिया है। तुम कहना यह चाहती हो कि जब कभी तुम अपने समान आयु वाली नारियो को आभूषणो से सुसज्जित देखती हो, तो स्वय तुम्हारी भी इच्छा हो उठती है कि मैं भी आभूषण पहनती ...मैं भी सधवा स्त्रियो की तरह वैसा

ही साज-श्रृङ्गार करती·······आयु का तकाजा है·······ठीक····ठीक·······। तुम्हारा क्या अपराध है। यह सब स्वाभाविक बात है।'

'अरे, आप तो मेरे मन की पारी बातें एक दम समझ गये। सचमुच मेरे पास भी कुछ आभूषण होते, तो क्या अच्छा रहता····। ऋषि पत्नी होकर मेरे मन मेंयह क्या बात उठी है ? आप भी इस इच्छा को सुनकर क्या कहते होंगे ' यह देखिये, मेरे हाथ, पाँव, नाक, कान—कही एक भी आभूषण नही है···· सभी स्त्रियाँ गहने पहनती है।' गहनों की इस माँग पर ऋषि असमंजस में पड़ गये।

पत्नी के लिए आभूषणों का कैसे प्रबन्ध हो ?

वे सोचने लगे, मैं एक त्यागी ऋषि हूँ। सांसारिकता से दूर रहता आया हूँ। मने कभी धन एकत्रित करने की बात ही नही सोची। एक पैसा भी जमा-पूँजो मेरे पास नही है····फिर अभूषण खरोदने या बनवाने की बात सोचना ही एक विडम्बना है। पर नारी तो आखिर नारी ही है नादान और अलज्ञ····। वह इतनी विकसित कहाँ कि धन यौवन और आभूषण के मोह से ऊँची उठ सके। उसे सांसारिक प्रलोभन झकझोरेंगे ही ! एक ऋषि के लिए माया-मोह के बन्धन से दूर रहना सम्भव हो सकता है, किन्तु एक कमजोर स्त्री के लिये प्रलोभनो से छुटकारा आसान नही है। यदि यह आभूषणो की माँग करती है, तो क्या बुरी बात कहती है। मुझे चाहिये कि इसके लिये कही से कैसे भी आभूषणों का कुछ प्रबन्ध करूँ।"

पति को विचारो मे डूबे देख कर लोपामुद्रा ने कहा, 'पति देव ! मैंने आपको व्यर्थ ही उलझन मे डाल दिया···।'

'नही, नहीं, तुम्हारा आभूपणो के लिये मन करना कोई अस्वाभाविक बात तो नही है। प्रायः सभी स्त्रियो को मन-ही-मन गहनो की गुप्त इच्छा होती है····फिर अभी तुम्हारी आयु भी तो कम ही है। तुमने यदि आभूषणो के लिए प्रार्थना की तो कौन अस्वाभाविक बात कर डाला ? मेरा कर्त्तव्य है कि तुम्हारे लिये आभूषणो का प्रबन्ध करूँ।'

'आपको आभूषण लाने मे व्यर्थ ही कष्ट होगा। क्या करूँ, जो नारियां मिलती हैं, नङ्गे हाथ और आभूषण-विहीन कान, नाक, गला रखने पर व्यग्य-बाण कसती रहती हैं। तङ्ग आकार आज कह डाला है। स्त्री-समाज मे बिना गहनो के आदर से नही देखा जाता। सुहागिनी नारी के लिये आभूषण एक सामाजिक आवश्यकता है। मैं ऋषि पत्नी जरूर हूँ, पर सुहागिनो की प्रथम आवश्यकता—आभूषण भी जरूरी है। क्षमा करें··।'

लोपामुद्रा ने दबे हुए दद को आज व्यय हो कर डाला था वह बहुत दिनो से अपने दबे हुए भाव व्यक्त करने को आतुर था, किन्तु आज अपने-आपको सम्भाल न सकी था।

लेकिन ऋषि के लिए गहनों का प्रबन्ध एक समस्या बन गयी !

अब महर्षि अगस्त्य को आभूषण बनवाने की चिन्ता सताने लगी। किसी प्रकार कुछ धन मिले, तो आभूषणो का प्रबन्ध किया जाय। यदि समाज मे रहना है, तो धन की जरूरत है ही। ऋषि को स्वय अपनी गिनी-चुनी आवश्यकताओ के लिये कुछ भी नही चाहिये था, परन्तु नारी तो माया-मोह की वेल है। वह सारा ससार है।

वे सोचने लगे मैं गृहस्थी हूँ। मेरे धर्मपत्नी है, गृहस्थ को थोड़ा-बहुत कुछ धन तो अपने पास रखना चाहिए ही। भौतिक

उन्नति भी आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होती है। अब पत्नी आभूषण माँगती है और इधर हाथ मे एक पैसा नहीं है.........आज मैं यह अनुभव करता हूँ कि धन में सृजनात्मक शक्ति है।'

सङ्ग का अभाव ! महर्षि अगस्त्य यह सोच सोचकर पछ-ताने लगे। जरा-सी कामना जगी कि उसके लिये चिन्तित होना अनिवार्य। निःस्पृह ऋषि सोचने लगे—'अब मैं किससे धन की याचना करूँ ?'

'गुरु को अपने शिष्यों पर ही गर्व होता है। वे ही सङ्कट में उसकी सहायता करते हैं।

पत्नी की कामना पूर्ण करने मे किसी धनिक शिष्य का ही सहारा लेना ठीक रहेगा।'—उन्होने मन मे योजना बनायी।

लेकिन कौन इतना धन देगा ? साधारण मनुष्य के बल बूते का यह बात नही है।

पूरा दिन सोचते-विचारते व्यतीत हो गया। आखिर एक युक्ति सूझी। दूसरे दिन—

कुछ शिष्यो को साथ लेकर वे राजा श्रुतर्वा के पास चल दिये। सदा निष्काम विरक्त त्यागी ऋषि गृहस्थी के जञ्जाल मे फँस गये। सांसारिकता ने उन्हे दवा लिया !

जीवन में पहली बार वे धन की याचना के लिये निकले थे। मन मे बड़ी लज्जा का भाव अनुभव कर रहे थे। कैसे मैं राजा से धन की माँग करूँगा ? क्या शब्द होगे ? वह मन-ही-मन क्या सोचेगा ?' ऋषि का मन उथल-पुथल से भरा था। भाँति-भाति के विचार आ रहे थे। धन कामना होने पर भी ऋषि का हृदय पवित्र था, उनके मन पे एक सद्भाव जगा और उन्होंने सङ्कल्प किया।

'खैर धन तो मांगेगे किन्तु किसी के पाप के पैसे कदापि स्वीकार न करेंगे। दान लें, तो सात्त्विक और पवित्र कमाई मे से ही लेगे।'

उनके ओठ बुदबुदाने लगे—

प्राता रत्न प्रातरित्वा दधाति त
चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजा बर्धयमान आयु
रायस्पोषेण सचते सुधीर ॥

(ऋग्वेद १।१२५।१)

अर्थात् जो निरालस्यपूर्वक धर्माचरण द्वारा धन उपार्जित करता है तथा दूसरो के हित मे भी उसी प्रकार लगाता है, वह व्यक्ति इस संसार मे सदा सुखी रहता है।

'जो ईमानदारी से मेहनत करके धन कमाता है, किसी का अहित नही करता, किसी को प्रवञ्चित अथवा प्रताडित नही करता, अनुचित उपार्जन से दूर रहता हैं, पसीने की कमाई से उसी मे सन्तुष्ट रहता है....स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को महत्व देता है, धन का उदारतापूर्वक नित्य सत्कार्य मे उपयोग करता है। लोभी की तरह सग्रह नही करता। जो ऐसा होता है, उसी को प्रसन्नता, सुख-शान्ति, स्थिरता एव सन्तुलन प्राप्त होते हैं। इस प्रकार धर्माचरण करने वाले का धन ही हम लेगे........ कुमार्गगामियो का और अनुचित उपायो से अर्जित धन हम भिक्षा मे स्वीकार नही करेंगे....।' ऋषि ने मन-ही-मन यह दृढ सकल्प कर लिया।

चलते-चलते वे राजा के महल के द्वार पर आ पहुँचे।

राजा श्रुतर्वा ने जब सुना कि उनके गुरु पधार रहे है, तो उनके हर्ष की सीमा न रही।

शिष्य ने इसे अपना सौभाग्य समझा कि आज देवतुल्य उनके गुरु महर्षि अगस्त्य उनके यहाँ पधार रहे हैं।

राजा ने महर्षि का समुचित स्वागत सत्कार किया।

'कोई सेवा बताइये, गुरुदेव !' राजा ने याचना की।
'श्रुतर्वा ! मेरे आने का एक कारण है।'

'धन्य हूँ ! महर्षि जो आपने आज मुझे अपनी सेवा के योग्य समझा और यहाँ पधारे। आप जो कहेंगे, वह इच्छा अवश्य पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा, आज्ञा दीजिए। यह राज्य, इस राज्य का कोष, हम सब आपके हैं। जो आज्ञा देंगे, वही सहर्ष शिरोधार्य होगी। मेरे अहो भाग्य हैं कि मैं आज अपने गुरु की सेवा कर पा रहा हूँ। गुरु से जो विद्या पढ़ी है, उसी के पुण्य-प्रताप से राज्य-सञ्चालन में मुझे कुशलता मिल रही है। मेरी सांसारिक सफलता का सारा श्रेय आपको ही है।'

'मुझे पत्नी के आभूषण बनवाने के लिये कुछ धन चाहिए।'

'धन चाहिये, गुरुदेव ! आपने धन जैसी तुच्छ वस्तु की क्या माँग की है ? आप यह सारा राज्य माँगते, तो वह भी आपके चरणो पर न्योछावर था। आप यह शरीर माँगते, वह भी सहर्ष प्रस्तुत है। चाहे चमड़ा निकलवा कर जूता बनवा लीजिए। अपने को धन्य मानूँगा। गुरु का ऋण तो जीवन भर नही उतरता है....। धन की माग तो बहुत ही मामूली-सी माँग है। मेरे खजाने का सारा धन आपके लिये खुला है। जितना चाहिए, ले लीजिए। मैं अभी राज्य के कोषाध्यक्ष को बुलाता हूँ। कुञ्जी आपके चरणों पर रख दूँगा। कोष में से जितना चाहिय ले जाइये।'

ऋषि यह सुन कर सतुष्ट हुए।

फिर,बोले—तुम्हारी गुरु भक्ति देख कर मन मे बड़ी शान्ति मिली। मैंने जो विद्या पढ़ायी थी, आज उसकी सफलता मैं तुम में प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।'

आपके आशीर्वाद से मैं पूर्ण समृद्ध हूँ । आप जितना धन च हे, सहर्प मुझ से ले लीजिए ।'

'ले लूँगा पर एक शर्त है।'

'क्या शर्त है, गुरुदेव ?'

'जो धन धर्म पूर्वक कमाया और उचित कामो मे खर्च करने से बचा हो, उसी को मैं ले सकता हूँ।'

'गुरुदेव ! यह तो बडी कठिन माँग है। राज्य मे धन तरह-तरह के स्रोतो से आता है। पता नही, कितना धर्म का कमाई का है ? कितना उचित कर्मों के खच करने से बचा हुआ है।'

'पहले इसका पता लगा लो। पाप का एक पैसा भी मुझे स्वीकार न होगा।'

'कठिन परीक्षा है; गुरुदेव ! फिर भी पता चलाता हूँ कि इस कसौटी पर कितना खरा बैठता है ?'

'किन्तु मैं विश्वास नही करता। तुम गुरुभक्त हो, भावुक हो, आज्ञाकारी हो। कही गुरु को प्रसन्न करने की दृष्टि से बिना जाच-पड़ताल के रुपया दे डाला, तो हित के स्थान पर उल्टे अहित हो जायगा।'

'गुरुदेव ! तब आप स्वय ही सारे हिसाब की जाँच-पड़ताल कर लीजिए।'

यह कहकर राजा श्रुतर्वा ने महर्षि अगस्त्य को राज्य के कोषाध्यक्ष के पास भेज दिया ताकि वे सारी आमदनी और खर्च जाँच कर देख सकें कि उनका इच्छित धन है या नही'

कितना रुपया धर्म पूर्वक कमाया गया है और कितना उचित कामो के खर्च करने से बचा है ?'

उस जाँच-पड़ताल मे ऋषि को कई दिन लगे पर्याप्त परिश्रम भी करना पड़ा ।

हिसाब की जाँच का नतीजा क्या रहा ?

अगस्त्य ने राज्यकोष जाँचा तो समस्त राज्य-कोष को धर्म की उपार्जित कमाई का ही पाया, पर साथ ही उचित कार्यो का खर्च करने को इतना बाकी था कि उसमे बचत की कुछ भी गुञ्जाइश न रही। प्रजा की उन्नति, लोकोपकार की योजनाएँ धर्मशालायें, कुएँ, बावड़ी, पुस्तकालय, विद्यालय, मन्दिर इत्यादि अनेक उचित कामो में और व्यय होना शेष था। जमा-खर्च बराबर था।

'मैं तुम्हारे राज्य कोष से कुछ भो न ले सकूँगा।'

क्यो, मैं ऐसा अभागा क्यो रहा ? क्या मेरी कमाई पाप की मिली है ?'

'नही, श्रुतर्वा ! मेरे पढाये शिष्य भला पाप की कमाई कैसे कर सकते है ?"

'फिर क्या हुआ ? मेरी आर्थिक-सेवा क्यों स्वीकार नही की जा रही है ?

श्रुतर्वा ! तुम्हे अपने कोष मे पर्याप्त रुपया दीखता है, किन्तु तुम्हारे पास अनेक उचित कार्य भी करने को शेष पडे है, जिनमे यह रुपया अभी खर्च होना है। तुम्हे अनेक पीड़ितो के लिये औषधालय खुलवाने हैं, गरीबों के लिए व्यवसायो का प्रबन्ध करना है और असहाय, दीन-दुखियो के लिये अनाथालय बनवाने है, राज्य मे अनेक स्थानो पर विद्यालय और औषधालय खुलवाने को पड़े है, कई स्थानो पर धर्मशालाएँ, पुस्तकालय

और वाचनालय चलाने है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक हित के सैकडो काम करने को शेष पड़े हैं। प्रजा का यह धन इन सबमें खर्च हो जायगा। राज्य के तमाम नागरिको के स्वास्थ्य, शिक्षा, उन्नति और सदाचार की सारी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है। मैंने जाँच-पड़ताल से पाया है कि उचित कामो में खर्च करने पर तुम्हारे राज्य मे बचत कुछ भी न रहेगी। जमा-खर्च बराबर रहेगा। फिर मैं कैसे तुमसे धन लूँ ?'

'फर मैं क्या करूँ ? मेरे लिये क्या आज्ञा है ?'

'मजबूरी है। तुम्हारे यहाँ से कुछ भी लेने का मतलब यह है कि प्रजा के कुछ काम अपूर्ण ही रह जायेंगे। उनकी आवश्यकता हमारी आवश्यकता से बडी है। अत हमे तुमसे दान नही लेना है।'

श्रुतर्वा का चेहरा दु ख से म्लान हो उठा।

महर्षि अगस्त्य वहाँ से चल दिये।

अब वे राजा धनस्व के यहाँ पहुँचे। उन्होने सोचा, चलो, यहा जरूर कुछ धर्मपूर्वक कमाया और उचित कामो मे खर्च करने से बचा धन मिलेगा।'

उन्होने राजा धनस्व को उसी प्रकार अपना अभिप्राय कह सुनाया। वे बोले, 'महर्षि ! मेरे भी हिसाब की जाच पडताल कर लीजिए। पता नही वे आपके काम के हो, या न हो।'

महर्षि न उसी प्रकार हिसाब जाँचा, तो वहाँ भी उसी प्रकार सन्तुलन पाया गया। महर्षि बोले—'धन का महत्व तभी है, जब वह नीतिपूर्वक कमाया गया हो। अनीति से कमाया तो जा सकता है, पर जिन लोगो के द्वारा वह कमाया गया है, जिनका शोषण और उत्पीड़न हुआ है, उनका विक्षोभ सारी मानवता के लिये घातक परिणाम उत्पन्न करता है। शोषित एव उत्पीड़ित व्यक्ति जब देखते हैं कि उन्हे ठगा या सताया गया

है या जिसने शोषण किया है, वह मौज कर रहा है, तो उनका मन आस्तिकता एव नैतिकता के प्रति विद्रोह की भावना से भर जाता है··· मैंने देखा है कि तुमने सारा धन धर्माचरण से कमाया है, उसके द्वारा अनेक उपयोगी कार्य भी होते हैं तुम धन कमाने में सचाई का और उसके सदुपयोग का महत्व समझते हो। सदुद्देश्यों के लिये उचित मात्रा में खर्च करने के कारण वहाँ मैंने सन्तुलन ही पाया है। जमा खर्च बराबर है। मेरे लिए कुछ बचता ही नही फिर कैसे लूं ?

अगस्त्य राजा धनस्व से भी बिना कुछ स्वीकार किये ही चले गये।

सोचते जाते थे, 'ये राजा धर्मपूर्वक कमाते तो हैं, पर उस धन को उचित कार्यों मैं मुक्त हृदय से खुले हाथों व्यय भी करते हैं। जमा-खर्च बराबर है। मुझे यह हर्ष है कि यद्यपि मेरे धनी शिष्य मुझ कुछ नही दे सके हैं, वे धन की पवित्रता पर ध्यान रखने वाले निकले हैं··· कोष मे बचत कुछ भी न निकली।'

महर्षि कई सदाचरी बहुत धनी शिष्यो के पास गये, किन्तु कही से बचत के पैसे न मिले। 'जैसी ईश्वर की इच्छा!' कहकर वे वापिस लौट रहे थे। सोच रहे थे कि लोपामुद्रा से क्षमा माँग कर कहूँगा। कि 'आभूषणों के लिये कही भी धन का प्रबन्ध नही हो सका है। किसी सत्पुरुष के कोष मे बचत ही नहीं मिली है।

कितनी निराशा ! कितनी विवशता !

पत्नी आभूषणों के लिये पूछेगी, तो क्या उत्तर देगे उसे ! वह कहेगी, महर्षि ! समाज मे आपकी कोई मान प्रतिष्ठा नही ! कोई साख नही ? किसी के पास आपको देने के लिये भिक्षा नही ! निरुपाय हो वे वापिस लौटने लगे।

सयोग से वापिस लौटते-लौटते मार्ग मे उन्हे इल्वण नामक दैत्य मिला। महर्षि को देख उसने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और उनका अभिप्राय पूछा।

'महर्षि ! मुझे भी सेवा का मौका दीजिए। मेरे यहाँ विपुल धन सम्पत्ति जमा है। उसमे से आप जितनी चाहे प्रसन्नतापूर्वक ले जा सकते है।'

'किन्तु मुझे तो धर्मपूर्वक कमाये हुए उस धन मे से भिक्षा चाहिए, जो उचित कामो मे खर्च करने से बचा हो।' वे बोले।

'महर्षि ! इसका तो मुझे ज्ञान नही है कि आप जैसा धन चाहते हैं, वैसा मेरे पास है या नही। पर मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरा धन महर्षि के काम आये। मेरे पास अनाप-शनाप धन भरा हुआ है। मैंने अरबों कमाया है, करोडो खर्च करने पर भी मेरे पास धन-ही धन इकट्ठा है। कृपा कर मेरे कोष को देख लीजिए लेकिन पहले यह धन स्वीकार कीजिये।'

ऐसा कहकर स्वर्ण मुद्राओ से भरा एक सन्दूक उन्होने ऋषि के चरणो पर रख दिया। बोला, 'यह देने से मेरे कोष मे तनिक भी कमी आने वाली नही है। यह आप स्वय देख लीजिये।'

अब दैत्य इल्वण उन्हे अपना कोष दिखाने लगा। आश्चर्य से ऋषि ने देखा, दैत्य के पास उनके धनी समझे जाने वाले शिष्यो, राजा श्रुतर्वा और राजा धनस्व से भी कही अधिक धन सगृहीत था। बहुमूल्य रत्नो तथा स्वर्ण के ढेर लगे हुए थे। एक के बाद दूसरा कमरा धन से भरा हुआ था। सर्वत्र स्वर्ण ही-स्वण, रत्न-ही-रत्न भरे थे !

'बस, यहाँ से मुझे पत्नी के आभूषणो के लिए धन मिल गया।' ऋषि के मन मे आया, 'मै यह ले लूँगा, तब भी इस

कोष मे कोई कमी पडने वाली नहीं था चला, पुनः आकर लोपामुद्रा की बात रह जायगी।'

यह सोच कर ऋषि का मुरझाया हुआ मुख कुछ प्रदीप्त हो गया आभार दृष्टिगोचर होने लगा। सचमुच धन में रचनात्मक शक्ति है। अभी बिना पैसे के वे अपने आपको कितना निबल और असहाय अनुभव कर रहे थे, किन्तु अब यह धन पाकर उनका विक्षोभ और मानसिक दुर्बलता दूर हो गयी थी।

'किन्तु स्वीकार करने से पहले मैं इसे जाँचना चाहूँगा।'

'जाँच की क्या आवश्यकता है? मै खुशी-खुशी आपके चरणो में भेट कर रहा हूँ। आपके यह धन काम आयेगा, तो इससे मुझे बडी खुशी होगी। मेरा मन रखने के लिये कृपा कर इस धन को स्वीकार कर लीजिये।'

फिर वह गरज कर बोला, अरे नौकरो! इस भारी सन्दूक को महर्षि के आश्रम में पहुँचा दो। जल्दी करो।'

तुरन्त अशर्फियों मे भरा सन्दूक उठा कर नौकर चलने को खड़े हो गये।

'खड़े-खड़े क्या देखते हो। पहुँचा दो इसे महर्षि के आश्रम में! जल्दी करो। महर्षि के पहुँचने से पहले ही ये स्वर्ण मुद्रायें गुरुपत्नी के सामने पहुँच जानी चाहिये।'

जब तक अगस्त्य कुछ कहे, तब तक नौकर भागते-भागते सामने से निकल गये।

पल मारते ही यह सब घटना हो गयी।

अगस्त्य के मन में फिर उथल-पुथल शुरू हो गयी, 'कहीं से भी धन नहो मिला था। अब यह घर पहुँच हो चुका होगा। चुप रह जाऊँ, तो क्या हर्ज है? अहह! इस धन को देखकर

लोपामुद्रा कितनी प्रसन्न होगी ! उसके सारे आभूषण बन जायगे । फिर भी पर्याप्त स्वर्ण-मुद्रायें शेष बच रहेगी ।'

लेकिन थोडी देर बाद ही सदाचारी हृदय मे स्थित उनके विवेक ने उन्हे फटकारते हुए कहा, 'अपने पूर्व सङ्कल्प को याद कीजिये महर्षि ! आपने तो कहा था कि जो धन धर्म पूवक कमाया और उचित कामो मे खच करने से बचा होगा, उसी को लूंगा । नारी की इच्छा पूण करने के कारण इतने मे ही धर्म स डिग गये ? छि: छि: छि ! पहले इस धन की परीक्षा तो कर लीजिये, कैसा है ?'

उधर नौकर स्वर्ण मुद्रायँ लेकर गुरुपत्नी के सम्मुख थे । 'यह धन आपके पास भेजा है । कृपया स्वीकार कीजिये ।'— नौकरो ने शिष्टतापूर्वक निवेदन किया ।

धन देखकर लोपा मुद्रा अत्यन्त हर्षित हुई ! 'अरे, मेरे पति की शक्ति अभी तक मुझ विदित नही थी । थोडे-से सकेत मात्र से इतनी विपुल धन-राशि इकट्ठी कर लाए । इनके शिष्य कितने गुरुभक्त हैं, जिन्होने सकेत पाते ही इतना धन दे डाला । इस धन से तो असख्य आभूषण बन जायेंगे । मुझसे पहने भी न जायेंगे । कई सेट चूड़िया, गले के अनेक आभूषण, नाक, कान, पाँव—सभी के लिए एक-से एक सुन्दर आभूषण बन जायेंगे....। अब देखूँ, कौन स्त्री कहती है कि मेरे पास गहने नही हैं । मेरा गला, नाक कान नगे हैं । सबसे अधिक सख्या मे मेरे ही पास आभूषण रहेगे मेरे पति मे कितनी शक्ति हैं ।'

लोपामुद्रा विस्फरित नेत्रो से उन स्वर्ण मुद्राओ को देखने लगी । मुट्ठियां भर-भर कर बच्चो की तरह मुद्राओ से खेलने लगी । अहह ! ये मुद्रायें कितनी सुन्दर...... कितनी प्यारी लगती हैं ।

उधर महर्षि ने दैत्य इल्वण का हिसाब जाँचना शुरू किया। उन्होने पाया कि वह धन अनीतिपूर्वक कमाया गया था....। अनेक गरीबों का शोषण और उत्पीडन हुआ था। किसी के साथ बरबस दुर्व्यवहार से छीन लिया गया था, तो किसी को झूँठ-फरेब से ठगा गया था। निर्बलों को सताया गया था। इस धन को एकत्रित करने में मिथ्याचार, भ्रष्टाचार, कपट तस्कर-व्यापार, मिलावट, नकलीपन आदि सभी अनैतिक उपायों का प्रयोग किया था। यह हराम की कमाई विलासिता, व्यभिचार, बाह्याडम्बर, व्यसन, नशेबाजी में ही खर्च हो रही थी। बाहर से तो वैभव का दिखावा था, पर अन्दर-ही-अन्दर सब अस्त व्यस्त और विक्षुब्ध थे। पैसों के लिए एक दूसरे की हत्या करने को उतारू थे। उनमे अपराधी प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर बढी जा रही थी।

उचित जनहित के कार्यो मे खर्च न करने की कन्जूसी की वजह से वह धन दैत्य के कब्जे में था। पैसा जहाँ रुकता है, वही सडने लगता है। अनुचित अर्थोपार्जन से परिणाम में शोक-सन्ताप -ी पैदा होता है। पाप की कमाई अन्ततः खद जनक दुष्परिणाम प्रस्तुत करती है। देने और लेने वाले—दोनों ही नष्ट होकर समाप्त हो जाते है। अमीरो से मानवोचित शुभ सात्विक आकांक्षाए कुण्ठित हो जाती हैं। महर्षि ने इस पाप की कमाई मे से कुछ भी लेने मे धर्मपत्नी का अहित देखा।

'महर्षि क्या मेरे इस विपुल भण्डार से कुछ भी स्वीकार न करेंगे।'

'मुझसे बड़ी भूल हो गयी। हाय, अब क्या हो ?'

"कौन-सी भूल ?'

'तुम्हारे नौकर मेरे घर स्वर्ण मुद्राओं से भरा एक बक्स ले

गये हैं। वह मेरे काम न आ सकेगा……उसे फौरन वापस मँगवाओ।

'क्यो क्या बात हो गयी ? जाँच का क्या परिणाम निकला ?'

'इल्वण ! मुझे यह कहते हुए खेद है कि तुम्हारी विपुल सम्पत्ति मे से मेरे काम का एक पैसा भो नही है। उस पर पाप की छाया है।'

महर्षि अगस्त्य खाली हाथ लौट आये।

प्रतोक्षा मे बैठी हुई लोपामुद्रा ऋषि को आते देख स्वागत के लिये खडी हो गयी। आते ही वे बोले—'ये स्वर्ण-मुद्राएँ तुरन्त लौटा दो। हम उनमे से एक पैसा भी न लेगे।'

क्यो क्या हुआ ? घर आयी सम्पत्ति को क्यो लौटा रहे है ?'

'लोपामुद्रा ! धर्म से कमाई करने और शुभ कार्यों मे उदारतापूर्वक उचित खर्च करने वालो के पास कुछ बचता नही है। अनीति से कमाने वाले कृपण लोगो के पास ही धन पाया जाता है, सो उस पाप की कमाई को लेने से हमारे ऋषि-जीवन मे बाधा पड़ेगी……।'

'फिर मेरे लिए क्या सोचा है आपने …वे गहने…?'

'भद्रे ! अपवित्र धन से शोभायमान होने की अपेक्षा तुम्हारे लिये अभावग्रस्त रहना ही उचित तथा विशेष सुशोभन है।'

लोपामुद्रा थी तो पवित्रहृदया ऋषिपत्नी ही, उसने पति के दृष्टिकोण का औचित्य समझा और शोभा सौन्दर्य की क्षुद्र कामना छोड़ सादगी के साथ वह अत्यन्त सुखपूर्वक रहने लगी।

नकली साधु का अभिनय करते करते एक बहुरूपिया सच्चा बैरागी बना

'रूपनिधि ! एक बात मन में आयी है।'

जी सरकार, क्या आज्ञा है इस बहुरूपिये के लिए… ?'

रूपनिधि ! तुम हमारे राज्य के सबसे सफल बहुरूपिये हो। अभिनय की कला में तुम्हारी टक्कर का दूसरा बहुरूपिया कोई नही है।'

'सरकार आपके मन में क्या बात आयी है ? कृपा कर हुक्म दीजिए।'

'रूपनिधि ! हमने कई प्रतिष्ठित व्यक्तियो के मुंह से तुम्हारे नाना रूपों और अभिनय की तारीफ सुनी है। तुमने न जाने कितने व्यक्तियों को धोखा दिया है। सबको खूब छकाया है …। हर प्रकार के अभिनय करने में तुम कमाल कर देते हो।……। लेकिन…. …'

'सरकार, आप मेरी तारीफ कर रहे हैं……। आपने दूसरो के मुंह से मेरी अभिनय-कला की प्रशसा सुनी जरूर है, पर……मैं स्वय अपनी कला का प्रशसा कर अपने मुंह मियाँ मिट्ठू नही बनना चाहता……। आप क्या कहना चाहते है आज्ञा दीजिए…… ? मुझे क्या करना है, आपकी खुशी के लिये……?'

'वही तो !' राजा रत्नेश्वर आगे कहने लगे, 'तुम मेरी सभा के एक बहुमूल्य रत्न हो……। बहुरूपिये की कला मे जनता ने

तुम्हारी तारीफ की है। नाना वर्गों और प्रकृति के आदमियों की नकल कर तुमने लोकप्रियता प्राप्त की है। कितनो को छकाया या मूर्ख बनाया है। बुद्धि मे, अभिनय मे बातचीत मे तुम्हे सबसे बढ कर माना गया है, लेकिन तुमने हमे कभी नही छकाया ......।'

'राजा को छकाने की हिम्मत किसमें हो सकती है, श्रीमान्! यह तो बडो हिमाकत होगी।'

'नही, नही, तुम तो कोरा अभिनय ही करोगे, मनमें तो तुम अपने शासक के प्रति बडी प्रतिष्ठा और आदर रखते हो, यह बात हम अच्छी तरह जानते है।'

'तो फिर क्या हुक्म है, हुजूर ?'

'एक बार हमे धोखा दो तो जाने ? देखें, तुम्हारी अभिनय-कला की सफलता। हम पर आजमा कर देखो। कहाँ तक सफलता मिलता है ?

'सरकार मैं तो बहुरूपिया हूँ। अच्छा-बुरा, देव-दानव, सभ्य-असभ्य, शिष्ट-अशिष्ट, सज्जन-दुजन, राजा-रङ्क, भोगी और सन्यासी, योगी और सिद्ध पुरुष—सब प्रकार के व्यक्तियो का रूप बना सकता हूँ।

'रूपनिधि ! तुम कोई ऐसा अभिनत और विचित्र रूप बनाओ कि हम सब देखकर चकित—विस्मित रह जाएँ। चतुर समझने वाले लोग बेवकूफ बन जायँ। बहुरूपिये का कमाल तब है, जब वह अपने बेमिसाल अभिनय, वेश भूषा, बोलचाल, आचार व्यवहार से एक बार तो सबको मूर्ख बना डाले। तुम राज्याश्रित बहुरूपिये हो। हम तुम्हारा अभिनय कला की परख करना चाहते हैं। सच्चे सोने को कसौटी पर जब चाहो कसो, वह खरा सोना निकलता है।'

रूपनिधि को प्रेरणा मिली। कलाकार को अपनी कला के प्रदर्शन की इच्छा हो उठी।

'तारीफ तो बहुत की सरकार, लेकिन...... ...' वह बोला।

'कुछ और चाहते हो ?'

'यदि मैं आपको सफलतापूर्वक धोखा दे सकूं, तो कुछ इनाम भी मिलना चाहिए।'

राजा रत्नेश्वर खुशी की मनःस्थिति में थे।

आखिर बहुरूपिये ने उनकी चुनौती स्वीकार कर ली थी। बड़ा आनन्द रहेगा। देखें, यह बहुरूपिया हमें कैसे मूर्ख बनाता है। यह सोचकर राजा बोले—

'रूपनिधि ! हमें यह देखकर खुशी है कि तुम अपनी अभिनय कला की परख कराने में कतई पीछे नहीं हटे हो....। जिस कलाकार में वास्तव मे योग्यता होती है वह अपनी कला को परखवाने में कभी पीछे नही हटता है। मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे चेहरे पर उत्साह की आभा है, जो एक सच्चे कलाकार के मुखमण्डल पर पायी जाती है। अपनी अभिनय कला के सफल प्रदर्शन पर तुम्हें राज्य की ओर से नकद पाँच सौ रुपये का इनाम मिलेगा........। पर हमें पूरा धोखा लग जाना चाहिए। समझें !'

'पाँच सौ रुपये !' इनाम का नाम सुनते ही रूपनिधि का चेहरा खुशी से चमक उठा। 'पाँच सौ रुपये !!'

वह बोला, 'जैसी आज्ञा सरकार ! मैं जाता हूँ ....। आपको बहुरूपिया खरा मिलेगा ...। आप से इनाम लेना है........खुश करके.......।'

'देखें, तुम कैसे हम सबको मूर्ख बनाते हो ? जाओ ...।'

और वहुरूपियिा रूपनिधि राजा रत्नेश्वर की सभा से चला गया। वस सोचता जाता था कि ऐसी क्या युक्ति हो सकती है कि राजा को ठगा जा सके और वह मूर्खो की गिनती मे आ जाय ? नाना योजनायें उसके मन मे थी।

× × ×

ससार मे अनेक सुख है, पर कलाकार की कला मे सफलता का—विजय का सुख सबस बड़ा है। अपने उद्देश्य मे सिद्धि मिलना बडी बात है, कलाकार जब अपनी चिरसञ्चित इच्छा और आकाँक्षाओ को पूण हुआ देखता है, तो उसे आत्मा मे सन्तोष मिलता है। यह मानसिक सन्तोष एक प्रकार की आध्यात्मिक खूराक है, जिसके मिलने से आत्मबल मे असाधारण वृद्धि होती है।

विजय अकेली नही आती ! वह अपने साथ अनेक सपत्तियाँ लाती हैं, जिसके वैभव से मनुष्य का मन, शरीर और आत्मा जगमगाने लगता है। जिसने अपनी कला मे सफलता प्राप्त की है, उसके गले में लक्ष्मी की वरमाला पड़ती है। ससार उसके आगे मस्तक झुका देता है। वह समाज सदा से विजयी और सिद्धो की पूजा करता आ रहा है। जिसने अपना छुपा हुआ पराक्रम प्रकट किया है, उसकी महानता स्वीकार की गयी है। इसीलिये मनुष्य जीवन मे प्राप्त हो सकते वाली सम्पदाओ मे सफलता को, सिद्धि को सर्वोहरि स्थान दिया गया है। सफलतारूपी महान् सम्पदा को हर कोई चाहता है, पर जिनमे दृढता, साहस, पौरुष, पराक्रम, लगन और परिश्रमशीलता है, वे ही इस सम्पदा के अधिकारी होते है। बहुरूपिया रूपनिधि ऐसी ही अभिनय कला का साधक था। सोचते-विचारते आखिर

उसने राजा को मूर्ख बनाने की एक तरकीब सोच निकाली और तुरन्त उसे कार्यान्वित करना शुरू कर दिया।

× × ×

थोड़े दिन बाद—

उसी राजधानी के बाहर एक विशाल वट-वृक्ष की घनी छाया मे एक सिद्ध योगी ने अपना आसन जमाया है। वह नङ्गा रहता है, एक लङ्गोट बांधे। उसके सारे शरीर पर भभूति लगी हुई रहती है, जटाजूट बढ गई है। 'शिव' के पवित्र नाम की ध्वनि उसके मुंह से सुन पडता है। भक्त जनो का कहना है कि यह महात्मा केवल शौचादि के लिये ही उठता है, अन्यथा सदा धूनी पर ही भगवत्-चिन्तन किया करता है। वह हर समय योग साधना में लगा रहता है। भक्तजन सर्वत्र छाये रहते है, जैसे पुष्पो के चारो ओर लुब्ध भ्रमर! सट्टे के नम्बर पूछते वालो के जमघट लगे र ते हैं। अनेक भक्त अपनी घरेलू पारिवादिक और सातािजक समस्याओ को दूर करने की तरकीवे पूछने चले आते है।

इस दहात्मा की कीर्ति चारो ओर कस्तूरी की सुगन्ध की तरह फैल रही है।

आखिर वे इतते पहुँचे हुए महात्मा हैं। सारा जीवन ही भगवच्चिन्तन किया करते, हर समय तपस्या मे निरत रहते। भक्तजन सदा उनके आस-पास बैठे रहते और समीप के शहर और देहातो मे उनकी योगसाधना की चर्चा किया करते।

धीरे-धीरे वे उस क्षेत्र मे विख्यात हो गये। उनके धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा, सन्यास, भक्ति और साधना की खबर फैल गयी उनके आश्रम मे दूर दूर से लोग दर्शन और प्रवचन

सुनने के लिये आते थे। उनके द्वारा होनें वाले छोटे-बड़ें अद्भुत चमत्कारो की चर्चा सुनी जाती थी। प्रायः ऐसा विश्वास जम गया था कि उन्हे कोई देवी-देवता की सिद्धि प्राप्त है।

ऐसे महान् तपस्वी, भक्त, विद्वान को देखनें के लिये लोगो का ताता बँधा रहता था। उत्सुक नर नारी, भोले भावुक ग्रामीण, गरीब मजदूरो ने उस आश्रम को तीर्थ-जैसा पवित्र मान लिया था।

समाचार उड़ते-उडते राजा के पास पहुँचा।

'महाराज! उस योगो के मुख मण्डल पर सिद्धि की आभा है। उसके दर्शन मात्र से अविद्या रूपी अन्धकार दूर होता है और विवेक का सूर्य उदित होता है। उनके सत्सङ्ग से आध्यात्मिक और पारमार्थिक लाभ प्राप्त होता है। अतः उनके दर्शन कीजिये।'

राजा के मन मे महात्मा के दर्शनो की कामना बढो। जिन सिद्ध पुरुष को देखकर लोग धन्य हो रहे हैं, राजा क्यो न उन्हे देखना चाहेगा?

लेकिन साधारण पुरुषो और राजा के दर्शनों मे अन्तर है। साधारण पुरुष यो ही भक्ति भाव से दर्शनो के लिये चले जाते है। पर राजा को राजसी ठाट से ही दर्शनो के लिए जाना चाहिये।

राजा की वह दर्शन-यात्रा निराली थी!

एक थाल मे हीरे-मोती और असख्य स्वर्ण मुद्राये दूसरे मे मूल्यवान् रेशमी वस्त्र, तीसरे मे फल-फूल और चौथे मे स्वादिष्ट मिष्ठान्न लेकर राजा रत्नेश्वर महात्मा जी के दर्शन और सत्सङ्ग के लिये उपस्थित हुए। वडी धूम धाम थी। महात्मा के शिष्यो ने राजा रत्नेश्वर के आगमन की सूचना दी—

'राजा रत्नेश्वर महाराज के दर्शनों के लिए आश्रम में पधारे हैं। क्या आज्ञा है, महाराज ?'

योगी ने अपने नेत्र खोले। वे कुछ बोले नही। बस देखते रह गये अपलक। तब तक राजा उनके सामने थे।

उन्होने देखा, सामने राजा भक्ति-भाव से विह्वल हाथ जोड़े खड़े थे। नेत्र श्रद्धा से झुके हुए थे। वे भक्ति-रस मे सराबोर थे, बिनयावनत !

'कौन हो तुम ?' महात्मा जी ने अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से क्रुद्ध स्वर में पूछा।

'मैं इस प्रदेश का राजा रत्नेश्वर हूँ महाराज ! प्रजा का सेवक ! आपका दास !! आशीर्वाद का भिखारी !!! आज आपके इस विख्यात आश्रम मे आपके दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गया हूँ......।' विनयपूर्वक राजा ने उत्तर दिया।

लेकिन यह क्या ! योगी पर इसका विपरीत प्रभाव दिखाई दिया ! आंधी तूफान की तरह रौद्रस्वरूप। वह शिव के ताण्डव नृत्य की तरह विकराल हो उठा !

राजा ने आश्चर्य से देखा काल की तरह महात्मा की भृकुटि चढ गयी थी ! वे क्रोध मे भयङ्कर स्वरूप धारण किये हुए थे। यकायक क्रुद्ध हो उठे थे। साक्षात् मृत्यु की तरह कराल। ऐसी नाराजगी का कोई कारण राजा को न दिखायी दिया।

क्रोध साधु के लाल-लाल नेत्रो से अङ्गारो की तरह बरस रहा था। महात्मा जी हीरे-मोती और स्वण मुद्राओ के थाल की ओर सकेत कर नाराज हो कहने लगे—

'राजा रत्नेश्वर ! यह माया-मोह यह धन सम्पत्ति, यह रुपया पैसा, यह चांदी-सोना,....यह सब भला मेरे पास क्यो लाये हो ? यह माया ठगनी है। नासमझ राजा ! याद रक्खो,

आदमी का जितना लौकिक भोगो मे—धन-सम्पत्ति, माया-मोह, स्वर्ण-रत्न, रुपया-पैसा आदि मे मोह होता है उतना यदि वह ईश्वर से प्रेम करे तो नि:सन्देह उसका ससार सागर से उद्धार और उसे परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है" । तुम इस अपनी धन-सम्पत्ति को बडी ही गौरव की वस्तु समझते हो, इसीलिए इसे लेकर मुझे ठगने आये हो "? यह कभी मत भूलो कि पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा की क्षुद्र भावनाओ से प्राणी दु:ख पाता है । क्षुद्र माया-मोह के कुचक्र से बचो....। मौत को याद रक्खो.... यह मृत्यु मनुष्य, जीव-जन्तु किसी को भी नही छोडती । यदि तुम इससे बचना चाहते हो तो अपने आत्मा को पहचानो और ज्ञानवान् होकर मृत्यु से डरो.... इस क्षुद्र माया को मेरे लिये क्यो लाये ? मुझ माया के कुचक्र मे फँसना चाहते हो ?... ले आओ अपने इन सोने, चादी, स्वर्ण मुद्राओ के थालो को ....। हम विरक्तो को इस माया-मोह से क्या काम है... .. .?'

यो कहते-कहते महात्मा का चेहरा मानो रोष से तमतमा उठा । अङ्ग-अङ्ग फड़क उठा !

'आज महाराज को यह क्या हो गया ! इनमे तो कभी जरा-सा भी रोष हमने आज तक नही देखा । क्या होगा इसका परिणाम ? उफ् !' उनके चेलो ने फुस-फुसाकर कहा ।

महात्माजी का क्रोध केवल बोलने या कुटिल भ्रूभङ्गिमा तक ही सीमित न रहा । गुस्से मे आकर उन्होने वे थाल नौकरो के हाथो से छीन लिए । हीरे-मोती, सोना-चादी आदि मूल्यवान् वस्तुएँ फेक दी, शाल-दुशाले तितर-बितर कर दिये और भेट की सारी वस्तुएँ छोडकर नाक-भौ सिकोड़ कर यह कहते-कहते उठकर अन्दर जाने लगे—

'हम माया मोह से दूर विरक्त संन्यासी हैं। हमें धन-सम्पत्ति की चमक दमक दिखाकर पथ-भ्रष्ट करने क्यो आये हो ?'

कितना उच्च कोटि का चरित्र था। महात्मा की निःस्पृहता से आस-पास के सभी व्यक्ति प्रभावित थे।

'महाराज ! क्षमा कीजिए…क्षमा कीजिए…मुझे अपनी करनी पर बड़ी आत्म-ग्लानि हो रही है……। भविष्य मे ऐसी गलती न होगा… । माया का कण भी आपके समक्ष न आयेगा… पर…पर…।'

महात्मा जाते-जाते रुके, पूछा—'बोले, क्या कहना चाहते हो ?'

महाराज ! ठहरिये। जाते जाते मुझे कुछ सन्देश तो देते जाइये। बड़ी लालसा से आया हूँ।' कातर भाव से राजा रत्नेश्वर प्रार्थना करने लगे।

महात्मा उपदेश करते हुए बोले—'रत्नेश्वर ! अनजान अज्ञानी लोग धनसग्रह, भोग विलास, शान-शौकत आदि वाह्या-डम्बरो को ही जीवन की सफलता मानते है। कुछ लोग मान-प्रतिष्ठा ऊँची स्थिति, सामाजिक सम्मान को ही उन्नति की अन्तिम सीढी मानते हैं, कुछ लोग पद-अधिकार के पीछे पागल रहते हैं किन्तु तुम यदि गम्भीर चिन्तन करके देखो, तो तुम पाओगे कि धन-सम्पत्ति, मान-प्रतिष्ठा, पद-अधिकार सब धूल-मिट्टी की तरह क्षणिक है। परमानन्द की प्राप्ति ही मनुष्य के जीवन की वास्तविक सफलता है……। तुमने चाहे कितना ही धन सग्रह क्यो न किया हो, किन्तु पता नही, यह कब नष्ट हो जायेगा। यह मूल्यवान् जीवन धन रूपी कङ्कड़-पत्थरों को सग्रह करने के लिये नही बना है….। ले जाओ, अपने कङ्कड़ पत्थरो को……।'

राजा पर इस उपदेश का बड़ा प्रभाव पड़ा। श्रद्धा से अभिभूत वे महात्मा के चरणो पर गिर पड़े।

'देव ! मैं धन्य हो गया आप जैसी दैवी विभूति के दर्शन और सत्सङ्ग से।'

राजा महात्मा के चरण नही छोड रहे थे।

तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी। यह ऐसी अजीव घटना थी, जिसकी किसी को स्वप्न मे भी आशा न थी।

लोगो ने देखा कि महात्मा के रुख मे सहसा परिवर्तन आ गया।

अरे, यह क्या ! स्वामी जी ने अपनी नकली दाढी-मूँछ और जटाजूट उतार फेंके ! भभूत पोंछ डाला। कर्कश स्वर बदल कर शिष्ट विनयशील बन गया। देखते-देखते वे बदल कर कुछ-के कुछ बन गये।

लोगो ने आँखे फाड़-फाड कर देखना जारी रक्खा। ओफ ! यह क्या करिश्मा है ? यह कैसा रहस्य है ? अब तो वे वृद्ध से जवान दिखायी देने लगे। उनका स्वर भी जाना-पहिचाना प्रतीत हुआ।

क्या यह अभिनय था ?

सचमुच, यह अभिनय ही था। बहुत लम्बा दीर्घकालीन अभिनय ! स्टेज पर किया गया अभिनय तो कुछ घण्टो का ही होता है, लेकिन यह अभिनय दिनो, सप्ताहो, महीनो, वर्षों मे फल चुका था।

'महाराज ! मैं आपका वही पूर्व परिचित रूपनिधि बहुरूपिया हूँ। आपने आज पाया कि मैंने आपको धोखा दे दिया है। आप मेरी अभिनय-कला से पूरी तरह परास्त हो गये हैं। मैंने जो प्रण किया था, वह आज पूरा हुआ है !'

सब कुछ देख-सुनकर राजा आश्चर्य में पड गये।'

बोले, 'अरे ! रूपनिधि, तो यह तुम निकले ! खूब, तुमने तो दर-असल अभिनय-कला मे कमाल ही कर दिया है। सचमुच मैं तो पूरी तरह ठगा गया''' '''मूर्ख बन गया। तुम्हारा इनाम पक गया।'

राजा हैरत मे पडे थे।

'अरे, लाखो के हीरे-मोती तुमने मिट्टी में फेक दिये। स्वर्ण-मुद्राएँ यत्र तत्र बिखेर दी, मूल्यवान् शाल-दुशाले वापस लौटा दिये''' अजीब आदमी हो''''। क्यो न उन रुपये-सोना जवाह-रातों को रख लिया ? इस अतुल धनराशि को रखकर तो कई पीढ़ियो के लिये तुम धन की चिन्ता से मुक्त हो गये होते ? खैर, तुम्हे भरपूर इनाम मिलेगा'' खूब धन दूँगा।'

बहुरूपिया यह सब सुनता रहा।

क्यों, रुपये-पैसे की ओर तुम कोई रुचि नही दिखा रहे हो ?'

बहुरूपिया चुप था, सोच-विचार में डूबा हुआ।

राजा बोले—'क्या इनाम चाहिये अब ? जितना माँगोगे, उतना ही दिया जायगा। तुम चुप क्यों हो ? बोलो तो कितना चाहिये ? क्या चाहिए ? हम तुम्हारी अभिनय चातुरी से बेहद खुश हैं।' राजा गद्‌गद्‌ हो उठे।

रूपनिधि बोला—'महाराज ! सिद्धि पुरुप, योगी और महात्मा का अभिनय करते-करते भजन-पूजन-स्वाध्याय तथा सद्‌ग्रंथो के पठन पाठन एवं वैराग्य का अभ्यास करते-करते अब मुझ सांसारिक भोग-विलास और माया-मोह से सच्ची विरक्ति हो गयी है। अब मुझे इन क्षुद्र वस्तुओ में तनिक भी आकर्षण

नही प्रतीत हो रहा है। मुझे उच्च आध्यात्मिक जीवन मे ही तात्त्विक आनन्द आने लगा है। इस धन सम्पत्ति को पाकर मैं फिर दुनियाँ के विशाल मोह जाल मे नही फँसना चाहता। मैं जिस जीवन का अभिनय कर रहा था, उसी मे सच्चाई से रह कर अब भगवद्चिन्तन और मोक्ष लाभ करना चाहता हूँ। मुझे सासारिक माया मोह से वास्तव मे पूर्ण विरक्ति हो गयी है। मुझे अब आत्मज्ञान हो गया है। मैं क्षुद्र माया के फन्दे से छूट चुका हूँ। आपकी प्रेरणा से सन्यासी-जैसा अभिनय करते-करते मेरी स्थायी प्रवृत्ति वैराग्य तथा ज्ञान की ओर हो गया है और उसी के फलस्वरूप आज मैं बहुरूपिया न रहकर सच्चा साधु हो गया हूँ। आपकी कृपा से ही मुझे यह लाभ हुआ, इससे मे आपका कृतज्ञ हूँ। पर भला अब मैं आपका इनाम लेकर क्या करूँगा ?'

'रूपनिधि ! तुम धन्य हो। तुम्हारी कर्तव्यशीलता अनुपम है। तुम नकली जीवन मे ही महात्मा और साधु पुरुष का अभिनय करते-करते वैरागी—सच्चे साधु बन गये हो। भारतीय सस्कृति का जो यथार्थ रूप तुमने आज प्रस्तुत किया है, उसका मुझ पर भी स्थायी प्रभाव पडा है। अपने इस माया-मोह और धन-सम्पत्ति से मुझ भी आज घृणा हो गयी है। मै भी आज इस भोगो के विलासी जीवन का त्याग करता हूँ। तुम मेरे गुरु बने, मैं तुम्हारा शिष्य।'

राजा फिर रूपनिधि के चरणो मे बैठ गये।

उस दिन से राजा रत्नेश्वर भी वैरागी बन गये। हम जैसा अभिनय करते है, वैसी ही मानसिक प्रवृत्ति बनती है। एक दिन वही हमारा असली स्वरूप बन जाता हैं।

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥
(अथर्ववेद ५।२३।१३)

अर्थात् अपने बाह्य और आन्तरिक द्वेष हम ऐसे ही नष्ट करें, जैसे आग में जलकर या पत्थर से कुचलकर गन्दी चीजे नष्ट हो जाती हैं।

जब स्वर्ग का एक मुकदमा धरती की अदालत में तय हुआ

'ओह ! सिर में बडी जोर की पीडा उठ आयी है ।'

'महाराज ! घोडे से उतरकर तनिक विश्राम कर लीजिये।'

'अरे ! हरिण का पीछा करते करते हम इतनी दूर निकल आये हैं····उधर से आया वह सिंह ···हरिण को छोड़ सिंह से.... उफ ! यह सिर-दर्द !'

'महाराज ! आप उसी से भिड़ गये । इसी में थककर घायल हो गये।'

शिकारी के सामने कोई भी वन्य पशु आये, वह पीछे नही हटता ।'

'महाराज ! आप और सिंह में मुठभेड देर तक चली । उसने भी आक्रमण किया, किन्तु वह हिंसक अन्त में आपके पैनें तीर-तलवार से बुरी तरह घायल होकर भाग निकला····। पता नही लग रहा है, किधर भागकर छिप गया वह सिंह ।'

'किधर गया वह सिंह····लेकिन ···यह पीडा ओह ! सिर में बड़ा दर्द है, सारा शरीर टूटा-फूटा हो रहा है युद्ध करते करते थकान रग-रेशे मे घुस गयी है····घोडे पर बैठा तक नही जाता···· बड़ी कमजोरी आ रही है ...ओह !··· !'

महाराज ! आप सिंह से मुठभेड में बुरी तरह घायल हो गये हैं ···।'

'मुझे तो अन्त समीप दीखता है ···रह रहकर विगत कटु स्मृतियाँ मानस-पटल पर उभर रही हैं ।····हाय ! मैंने अमुक के प्रति कर्त्तव्य-पालन नही किया। अमुक को न्याय नही दिया। ··· मेरी कई जिम्मेदारियाँ अभी पूर्ण करनी शेष हैं।··· मैं अपने उच्च आदर्शों को पूर्ण न कर सका ।····मुझ से अनजान मे पाप हो गया। हाय ! यह मौत को काली परछाई क्या मुझे निगल लेगी ? हाय ! क्या इस वन मे ही मेरा अन्तकाल लिखा है ? मेरे जीवन की कटु स्मृतियाँ चक्कर लगा रही हैं ···।

यह कहते-कहते एक प्रकार की बेहोशी सम्राट विक्रमादित्य के शरीर पर छा गयी। उनके साथ के सरदारो ने बडी साव-धानी से उन्हे घोड़े की पीठ से नीचे उतार कर एक वृक्ष की शीतल छाया मे लिटा दिया। उनके उपचार की कोशिशें होने लगी· भगदड़ मच गयी।

\+ \+ \+

एक बार न्यायमूर्ति सम्राट् विक्रमादित्य वन मे शिकार खेल रहे थे। जब राजधानी के शुष्क कार्यों से वे ऊब जाते थे, तो उसे मिटाने के लिये जंगल मे शिकार खेलने निकल जाते अनेक शिकारी और सरदार उनके साथ रहते। कुछ दिन बड़ी भाग-दौड रहती। ऊब दूर होकर जीवन मे परिवर्तन आ जाता।

सयोग की बात ।

उस दिन सिंह के आखेट में विक्रमादित्य थोक और घायल होकर परेशान हो उठे । शरीर में तो पीडा और थकान थी ही, मन भी पुरानी स्मृतियो के गुप्त भार से उद्विग्न हो उठा ।

विक्रमादित्य गये थे परिवर्तन और रोम ञ्चकारी मनोरंजन के लिये, उनके सभी मित्र शिकारी, सरदार प्रसन्न मुद्रा मे थे, पर भाग-दौड और आखेट दिन भर चलता रहा । उनके शरीर और मस्तिष्क पर इतना तनाव चढा कि सम्राट् उसे न सभाल सके । वे वृक्ष की छाया मे लेटे थे । सभी लोग चारों ओर चिन्तित मुद्रा में बैठे तरह-तरह के उपचार कर रहे थे । सम्राट् के नेत्र दर्द से मुंदे थे, जैसे सायंकाल मे बंद होते हुए कुम्हलाये कमल !

'ओफ ! यह तो बड़ा बुरा हुआ । सम्राट् के प्राण सकट में हैं । अब क्या किया जाय ? कैसे इनके प्राण बचें ? कई प्रकार की आवाज सुन पड़ती थी ।

सभी घबरा रहे थे । वे सहायता के लिये इधर-उधर भागने लगे । क्षण भर में आखेट का राक्षसी-ताण्डव विलुप्त हो गया, जैसे भयंकर तूफान के उपरान्त मौत-जैसी खामोशी !

घायल विक्रमादित्य को स्वस्थ करने की तात्कालिक औप-' चारिक युक्तियाँ होने लगीं । उस बियावान जगल में, जो भी चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता उपलब्ध थी, उनका जल्दी-जल्दी उपयोग किया गया । हर कोई हितैषी उन्हे स्वस्थ करने को अपनी दवाई बता रहा था, पर विक्रम बेचैन तड़प रहे थे जैसे पानी से निकली हुई मछली !

सौभाग्य से उस दिन राजवैद्य भी शिकार में साथ ही थे । उनके साथ जो भी औषधियाँ थी, उन्होंने एक-एक कर उनका

उपयोग किया, जगल से ताजी जडी-बूटियाँ भी लाये, हर प्रकार उपचार किया. परन्तु हाय ! विक्रमादित्य को मानसिक पीडा कम न हुई ! सिर मे इतना दर्द बढा कि वह फटने लगा

उन्हे स्वस्थ न होता देख सभी हितैषी व्यग्र हो उठे।

'क्या करे ? अब हे परमेश्वर ! विक्रम जैसे न्यायी शासक को स्वस्थ कीजिये।' सर्वत्र यही पुकार था।

'इस एकत्रित जनसमुदाय मे चिन्ता काले अन्धकार की तरह फैल गयी।

झाड-फूंक करने वाले बुलाये गये। उन्होंने अपनी मन्त्र विद्या की शक्ति से सम्राट् को स्वस्थ करना चाहा, किन्तु सब व्यर्थ।

जगल मे रहने वाले वयोवृद्ध अनुभवी लोगो ने अपने उपचार किये, पर रोगी की मानसिक व्यथाएं और मन का भार हलका न हुआ।

विक्रमादित्य जल से निकली हुई मछली की तरह तडपने लगे।

ईश्वर की लीला विचित्र है। उनकी गुप्त दैवी शक्ति विश्व को सूत्रधार की भाँति सचालित करती रहती है। अनेक बार ऐसी-ऐसी अद्भुत और विलक्षण घटनाएँ हो जाती है कि मनुष्य आश्चर्य मे पड जाता है।

ऐसी ही एक दैवी चमत्कार पूर्ण घटना यहाँ घटित हुई।

यकायक ऊपर आकाश मे शोर होने लगा। यह मामूली कोलाहल न था। जैसे आकाश मे गुजरते हुए हवाई जहाज से स्वर आता है, वैसा भी न था। विचित्र प्रकार स्वर मिल-जुले थे। पृष्ठभूमि मे वायुयान-जैसी सरसराहट के साथ कुछ गरमागरम बहस ! कुछ झगड़े-जैसी उत्तेजित परिस्थितियां !

तर्क और वाद-विवाद की तरह का कोलाहल यकायक ऊपर आकाश में भर गया।

सबके नेत्र ऊपर उठ गये। सम्राट् की मोहनिद्रा भी टूटी और उन्होंने भी आकाश की ओर देखा।

आश्चर्य था !

उन्होंने पाया कि स्वर्ग की अनेक पूज्य देवियाँ—लक्ष्मीजी, सरस्वतीजी, दुर्गा, पार्वतीजी इत्यादि अनेक दैवी शक्तियाँ परस्पर किसी विषय झगडती हुई आकाश मार्ग से गुजर रही थी। उन सबकी दृष्टि भी पृथ्वी पर पडे सम्राट् तथा चिन्तानिमग्न इस जन-समूह पर पडी। उन्हें सम्राट् पर दया आ गयी और सहानुभूतिवश वे अपना झगडा छोडकर पृथ्वी पर हो रहे इस संकट के सम्बन्ध मे बातचीत करने लगी—

'अरे ! नीचे पृथ्वी पर आज यह कैसी भीड-भाड है ?" पार्वतीजी ने आश्चर्य से पूछा।

ज्ञान की देवी सरस्वतीजी ने अपने दिव्य नेत्रो से धरती का सारा दृश्य देखा। परिस्थिति का अध्ययन करने के बाद वे बोली, पार्वतीजी ! विक्रम शिकार खेलते-खेलते आज अभी-अभी यकायक बीमार हो गये है। शारीरिक थकान के अतिरिक्त मानसिक भार भी कम नही है। अनेक प्रकार के उपचार हो चुके हैं, राजवैद्य ने भी पर्याप्त चिकित्सा करली है, झाड-फूँक से भी कोई लाभ नही हुआ है। देखिये न, सभी कैसे चिन्तित दिखायी देते है !'

अन्य देवियाँ परिस्थिति का अध्ययन करने लगी।

सभी विक्रम-जैसे न्यायी सम्राट् के दुःख से विक्षुब्ध हो उठी। लक्ष्मीजी के मुँह से हठात् निकल गया, सचमुच सभी व्यक्ति बड़े दुखी है। काश ! विक्रम को उनके शारीरिक तथा

मानसिक थकान से मुक्ति मिल जायेगी। इतने सज्जन सम्राट् की प्राण रक्षा करनी चाहिये।'

'हाँ, हाँ। यह परोपकार का कार्य अवश्य होना चाहिये।' सबने निर्णय कर डाला।

× × ×

सभी देवियों में 'कौन देवी सबसे अधिक शक्तिशालिनी है?' इस प्रश्न पर झगड़ा चल रहा था। कोई भी देवी अपने को दूसरे से छोटा मानने को तैयार न थी। हर एक अपनी महत्ता प्रमाणित करने के लिये नये-नये तर्क दे रही थी, किन्तु दूसरी देवियाँ उसे स्वीकार नहीं करती थीं। महत्ता के प्रश्न पर गरमागरम बहस चल रही थी उन सबमें।

लक्ष्मीजी का तर्क था, मैं धन-सम्पत्ति की अधिष्ठात्री हूँ। आज समाज क्या, विश्व में मेरी आर्थिक शक्ति के समक्ष और कोई ताकत नहीं ठहर सकती। रुपये की शक्ति से यह मनुष्य चल रहा है। मैं कंगाल को अमीर बना दूँ तो वह क्षण भर में अपने दुःख दर्द और चिन्ताओं के भार से मुक्ति पा सकता है। बीमार को किसी दवाई की जरूरत नहीं, केवल रुपये की गरमी की आवश्यकता है। अतः मैं सबसे अधिक शक्तिशालिनी हूँ।'

पर बीच में बात को काटती हुई सरस्वती जी टोक देतीं। वे कहतीं, नहीं, सो बात नहीं है। अज्ञान से आदमी बीमार होता है। जिस मनुष्य की विवेकबुद्धि विकसित हो जाती है, वह अपने आपको शरीर नहीं, आत्मा मानता है। आत्मा सत्-चित् आनन्दस्वरूप है। वह विकार रहित है। विवेकवान् अपने आपको शरीर नहीं आत्मा मानता है और इस प्रकार दुःख,

रोग, व्याधि से मुक्त रहता है। मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये अधिक-से-अधिक ज्ञान, बुद्धि, विवेक, कलात्मकता, सगीत, साहित्य और कलात्मक विषयो में रस लेने की आवश्यकता है। बुद्धि की शक्ति से ही मानव चलता है। यदि सरसता न हो, तो मनुष्य प्रसन्न न रहे। रोगी हो जाय। मेरी बराबरी कौन कर सकता है?'

'आर्थिक और ज्ञान की शक्ति दोनो ही छोटी है' बीच मे हस्तक्षेप कर पार्वतीजी कह उठती, नारी स्वय ही महौषधि की तरह शीतल सजीवनी शक्ति है। पतिव्रता प्रेममयी पत्नी के सम्पर्क से पल भर से सारे शारीरिक और मानसिक कष्ट दूर हो जाते है। जो प्रेम का यथार्थ स्वरूप समझते हैं, वे कभी रोग और व्याधिग्रस्त नही हो सकते! नारी ही पुरुष को स्वर्ग से पृथ्वी पर धकेल लायी थी, वही अपने प्रेम और बलिदान की शक्ति से उसे वापिस स्वर्ग मे ले जा सकती है।'

नही, नही,' कडकती हुई आवाज मे भगवती दुर्गा बोलीं 'तुम सब भोले भावुकों जैसी बाते करती हो। रोग, व्याधि, शोक इत्यादि निर्बलो को सताने वाले मनोविकार हैं। निबलो पर ही सारी मुसीबते आती है। कायर लोग दिलो में दो कमजोर भावनाएँ जगाते हैं—करुणा और सहानुभूति! मैं तो शारीरिक शक्ति को ही सबसे उत्तम मानती हूँ।'

अन्य देवियो के स्वर साफ न सुन पड़ते थे। बहस चल रही थी। झगड़ा बढता जा रहा था, पर कोई निर्णय न हो पा रहा था।

'यह झगडा व्यर्थ है। इस तरह बहस से हम यह निर्णय न कर सकगी कि हम सब देवियो में कौन बड़ी है?' उन्होने थक

कर कहा—"बड़प्पन तय करने की कोई और कसौटी सोचनी चाहिए।'

और वे कोई ऐसी युक्ति सोचने लगी जिससे वह प्रश्न हल हो सके। लक्ष्मीजी ने सुझाव दिया—

'मेरे मन मे एक युक्ति आयी है। उससे स्पष्ट हो जायगा कि कौन बड़ा है।'

'वह क्या युक्ति है?' सरस्वती जी ने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

लक्ष्मीजी कहने लगी 'सम्राट विक्रमादित्य भारत मे न्याय करने मे सर्वोपरि हैं। उनको न्याय-क्षमता का हर कोई जानता है। हम सब इनके पास चलें और इस बात का निर्णय करायें कि हम देवलोक की देवियो मे कौन वास्तव मे बडा है? यह मुकदमा धरती पर तय हो? देखिये, वे सामने लेटे हैं विक्रम।'

'हमे सहर्ष यह चुनौती स्वीकार है।' पार्वती जी ने सहमति प्रकट की।

फिर क्या था, देवलोक की सभी देवियाँ परस्पर बहस करना छोड विक्रमादित्य की ओर उतरने लगी। चकाचौंध करने वाले दिव्य प्रकाश के साथ वे सब आकाश मार्ग से नीचे पृथ्वी पर आ गयी।

सभी मनुष्य आश्चर्य मे पड गये! ओफ! यह कैसा अद्भुत चमत्कार था।

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत.॥
(सामवेद ६)

अर्थात् परमात्मा ज्ञानियो के हृदय में प्रकाशस्वरूप और मस्तिष्क मे विचार रूप मे प्रकट होता है।

परमात्मा की शक्तिस्वरूपा उन देवियो के सुन्दर स्वरूपो को देखकर सभी मनुष्य विस्मय-विमुग्ध हो गये। वे उस आभा के समक्ष कुछ बोल न सके। मूक पाषाण-प्रतिमाओ की तरह उन्हे निहारने लगे।

सम्राट् विक्रमादित्य के मन मे एक विचार कौंध उठा—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्ष सहस्रपात् ।
स भूमि ँ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

(यजुर्वेद ३१।१)

अहह ! यह दिव्य प्रकाश तो उसी परमात्मा का हो सकता है, जो असंख्य सिर, आँख और पाँव वाला है और पाँच सूक्ष्म भूतो से युक्त स्वभाव परमात्मा का ही ऐसा चमत्कार हो सकता है।

एक से एक दैवी ज्योति से परिपूर्ण देवी उनके सामने खडी थी। वे आश्चर्यचकित थे, मानो दिवा स्वप्न देख रहे हो।

'आप कौन है ? मैं इस चमत्कार को कुछ भी समझ नही पा रहा हूँ।'

'सम्राट् ! चकित-विस्मित न हो। हम स्वर्ग की देवियाँ है। स्वयं ही यहाँ उपस्थित होने का कारण स्पष्ट कर दगी।

इस समय विक्रम के सिर में दर्द और बढ गया था। उन्हे मौत के दृश्य दीख रहे थे। पुराने किये हुए दोष, गलतियाँ, मानसिक द्वन्द्व, कसक, वेदनाएँ और अतीत की व्यथाओं से वे उद्विग्न थे। सिर मानसिक भार से चकरा रहा था। पीड़ा के कारण उनका हाथ माथे पर टिका हुआ था।

'ओफ् ! मेरे सिर मे बेहद दर्द हो रहा है। मस्तिष्क मानो फटा ही पड़ रहा है। कृपा कर आप स्पष्ट कीजिये कि मुझ से

आखिर क्या चाहती हैं ? मैं क्यो कर आपकी सेवा कर सकता हूँ ।'

'हमे दु ख है,' सरस्वतीजी बो ी कि 'आपको पीडा के इन क्षणो मे और कष्ट दे रही है, किन्तु हमारी समस्या का निदान केवल आपके पास है आपकी बुद्धि, विवेक और न्यायपटुता विख्यात है । आप सब से व्याख्यात न्यायकर्त्ता है ।'

'क्या आपका भी कोई मुकदमा है ? किसी झगड का फैसला कराना है ?' विक्रम ने पूछा ।

'देवलोक का एक मुकदमा आपकी अदालत मे तय कराना है ।'

'कहिये, क्या गुत्थी है आपकी ?'

'मैं सरस्वती हूँ और वह देखो, वे धन की देवी लक्ष्मीजी है, ये पार्वतीजी और वे भगवती दुर्गा...... और भी वे सब देवियाँ ही हैं... ... परमात्मा की नाना शक्तियाँ .. ...।'

हाँ, हाँ, मैं सब को देखकर जीवन धन्य कर रहा हूँ । परमात्मा की दिव्य शक्तियो के सम्बन्ध मे जो सुना है वह अपने चर्मच क्षुओ से प्रत्यक्ष देख रहा हूँ । अहह ! आप देवियो ने मुझ पर बडो अनुकम्पा की है, जो आज दर्शन दिये हैं...... मैं धन्य हो गया !'

'हमारा अपना ही स्वार्थ है यहाँ आने मे !' दुर्गाजी बोली ।

'कहिये न, मैं आपकी सेवा कैसे कर सकता हूँ ? न जाने क्यों आज मेरे सिर मे बडी पीडा हो रही है । विगत कटु स्मृतियो को मैं भूल नही पा रहा हूँ । मन पर बडा भार है । फिर भी जो सेवा बन पडेगी, उस करने को प्रस्तुत हूँ ।'

'एक झगड़ा चल रहा है, हम मे '

'स्पष्ट कीजिये, क्या समस्या है ? मैं उस पर विचार कर लूँ ।'

'सरस्वतीजी, आप वाक्पटु हैं । आप ही मामला स्पष्ट कीजिये ।' दुर्गाजी बोली ।

'ओफ् ! पीडा के कारण मेरा सिर फटा जा रहा है । बडा सख्त दर्द है । नेत्र तक नही खुल पा रहे है । कृपया सक्षेप म मुकदमा स्पष्ट कीजिये ।'

'समस्या यह है कि देवलोक की सब देवियों मे आज इस बात को लेकर झगड़ा हो रहा है कि हम सब मे बडी देवी कौन है ? इसका निणय आपके ऊपर छोडा गया है ।'

यह समस्या बडी विचित्र थी ।

मुकदमा सुनकर विक्रम सोच-विचार मे पड़ गये । उधर देवलोक की सभी देवियाँ उनके सम्मुख उत्सुकता पूर्वक निणय को सुनने की प्रतीक्षा करने लगी ।

इस श्रेष्ठता का निर्णय किस आधार पर किया जाय ?

उत्तमता की कसौटी क्या हो ? शारीरिक शक्ति, आर्थिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति, मानव के लिये उपयोगिता या कोई और आधार ?

कुछ देर खामोशी का वातावरण रहा ! अब तक पृथ्वी पर रहने वालो के मुकदमे स्वर्ग के देवता तय करते थे, आज स्वग का मुकदमा तय करने जा रहे थे पृथ्वी के विक्रम ।

वे मामले पर सोच-विचार करते रह ।

यकायक उन्हे एक उपाय सूझा ।

बोले 'परमात्मा की शक्तियो के प्रतीक··· हे देवियो ! क्षमा करे । मुझे आप सब की परीक्षा लेनी होगी । तैयार हैं आप परीक्षा देने के लिये ?'

परीक्षा का नाम सुनकर देवलोक की शक्तिया बेचैन हो उठी। कौन परीक्षा देना चाहता है भला।

'अच्छा, अच्छा, आप हमारी परीक्षा ले देखिये। तय आपको ही करना है कि हम सब मे कौन बडी है'

'कोई व्यक्ति जब तक परीक्षा देने को तैयार नही होता, तब तक उसे अपनी कमजोरियाँ नजर नही आती।'

'निस्सदेह आप प्रश्न कीजिये। इम्तहान तुरन्त आरम्भ कर दीजिये।' देवियो ने पुन: आग्रह किया।

सम्राट् ने परीक्षा का सवाल किया—'जो देवी मेरे सिर की यह भयानक पीडा बन्द कर सके, वही मेरी दृष्टि मे सर्वश्रेष्ठ है। जिससे मानव का अधिक से अधिक उपकार हो, ज्यादा से ज्यादा फायदा हो, वही सर्वोत्तम देवी है। जो मुझ मानसिक द्वन्द्वो, गुप्त व्यथाओ, चिन्ताओ से एकदम मुक्ति दिला सके, वही देवी सबसे बडी है।'

'अरे, यह तो बडी साधारण सी बात है। लक्ष्मीजी चिल्ला उठी। 'मैं ही पहले आपका दु ख दूर करती हूँ।'

फिर क्या था। लक्ष्मीजी ने धन की शक्ति का उपयोग किया। आर्थिक सम्पन्नता के आकर्षक चित्र प्रस्तुत किये। उन्होने चुपचाप सम्राट् के कानो मे कहा—

'मै आपको कुबेर की तरह धनपति बना दूँगी। ससार की सारी सम्पदा आपके पास होगी। आप युग-युग तक सम्पदा का उपभोग करेगे। अपने विपुल ऐश्वर्य वाले स्वरूप को मन मे स्थान दीजिये। आर्थिक शक्ति से आप पलभर मे स्वस्थ हो जायँगे।'

सम्राट् ने वैसा ही किया, किन्तु उनकी मानसिक पीडा कम न हुई।

'मुझे यह कहते हुए खेद है कि लक्ष्मीजी की शक्ति मुझे स्वस्थ न कर सकी !

फिर सरस्वतीजी ने विक्रम के सिर पर हाथ रक्खा। धीरे-धीरे कहा, 'सम्राट् ! मैं संसार का सब ज्ञान, विज्ञान, कलाएँ आपको दे रही हूँ। उनके द्वारा आप अपने निर्विकारी रूप का ध्यान कीजिये। सद्-ज्ञान, सद्बुद्धि और सद्विवेक से आप अपने को शरीर नही, आत्मा मानिये। अब आप स्वस्थ हो जायेगे।'

पर ऐसा विचार करने पर भी विक्रम ज्यों के त्यो पीडा से तडपते रहे। सरस्वतीजी का ज्ञान-विज्ञान भी असफल रहा।

अब दुर्गाजी ने अपनी शारीरिक शक्ति देकर सम्राट् को स्वस्थ करना चाहा। भगवती दुर्गा कहने लगी, 'मैं शारीरिक शक्ति आपको दे रही हूँ। यह लीजिये, आपके अङ्ग-प्रत्यङ्गो मैं यौवन की असीम शक्ति आ रही है। इस शारीकि सामर्थ्य स आपकी पीडा दूर हो जायगी।'

लेकिन भगवती दुर्गा का शक्ति सम्राट् की मानसिक पीड़ा कम न हुई। वे भी परोक्षा मे अनुत्तोण रही।

इसी प्रकार और भी अनेक देवियो ने अपनी-अपनी शक्तियो से सम्राट् को स्वस्थ करना चाहा, पर सब व्यर्थ। सम्राट् उसी प्रकार नेत्र मूँदे अधमरे से पड़े रहे, कुम्हलाये हुए फूल की तरह।

'अब मुझे भी अपनी शक्ति अजमाने दीजिये।' कहते-कहते लज्जाभार से दबी एक देवी आगे आयी।

प्यार भरे स्वर मे वे सम्राट् के गुप्त मन को यह मधुर संकेत देने लगी—

'सम्राट् ! आप अपनी पुरानी कटु अनुभूतियो को भूल जाइये । भूलना एक बहुत अच्छी दवाई है । अपनी पराजय, अपमान, दुख, क्षोभ और सब प्रकार की पुरानी त्रुटियो को भूल जाइये । असफलताओ और व्यथाओ की याद मत रखिये । यदि कोई राजकार्य सम्बन्धी कुत्सित चिन्ता सता रही है, तो उसे भुला देने मे ही भला है । यदि किसी शत्रु से प्रतिशोध या हिंसा को दुष्ट भावना सता रही है, तो उसे मनरूपी उद्यान से उखाड़ फेंकिये । अपने दोष और भूलो की स्मृति पटल पर मत लाइये… भूल जाइये, प्रारम्भिक जीवन की विवशता दरिद्रता और शोचनीय अवस्था को… भूलिये, अपनी कमजोरियो और शत्रुओ को… पापो को… आत्मग्लानि को । जो पाप हुआ हो उसे भुलाकर ही आप स्वस्थ हो सकते है । इस दवाई का काम मे लाइये… और आप स्वस्थ हो जायेंगे ।

अहह ! इस प्रयोग से तो मुझे बडा मन. शान्ति और आन्तरिक शीतलता मिल रही है । मेरी मानसिक थकान कम हो रही है '

देवी आगे बोलीं, 'यह ससार भगवान की क्रीडास्थली है । इसमे सभी समस्याएं, सिद्धियाँ और विभूतियाँ भरी पडी हैं । ऐसा कोई भी अभाव यहाँ नही हैं, जिसकी त्रिकाल अथवा त्रिलोक मे कल्पना की जा सकती हो । कष्टो और अभावो को विस्मृति कीजिए । और अपने निखरे हुए समृद्ध स्वरूप पर ही मन को एकाग्र कीजिए । भगवान् के इस भरपूर भडार के सारे सुख,सारे वैभव और ऐश्वर्य आपके लिए हैं । उसस्वय पूर्ण काम परमात्मा को किसो वैभव की आवश्यकता नही हैं । उन्हे तो उसने अपनी सतान मनुष्य को बाँटने के लिए रख छाेडे है । मन मे छिपी मलिनता को दूर करें ।

'मुझे इस संदेश से बडी शान्ति मिल रही है। मन स्वस्थ्य होने लगा है और पीड़ा कम हो रही है। कौन है ये देवि ?'

अन्य देवियों को इस देवी से बड़ी ईर्ष्या हो रही थी।

उन्होने कहा, 'ये हैं विस्मृति देवि ! भुलाने की कला मे प्रवीण है !!'

'अहह ! विस्मृति देवी ! आपके मृदुल स्पर्श और दिव्य सदेश से तो मुझे बड़ी आन्तारक शान्ति मिल रही है। मैं कष्टों को भुलाकर मानसिक भार हलका कर रहा हूँ।'

विस्मृति देवि आगे कहने लगी—

'हाँ, सम्राट् ! विस्मृति के प्रभाव से थका हारा मानव अपनी मुसीबतें भूलता है। पुराना गलतियो को भूलकर ही वह मानसिक द्वन्द्व और व्यथाओ से छुटकारा पाता है। आप कडवी बातो पर रज-गम न कीजिये....कुढिये मत ऐसा कोई आदमी नही, जिसके यहां कभी न कभी कोई दु खदायी बाते या अप्रिय घटनाएं न हुई हों .. अपने विषय में जो कटु प्रसंग हुय हो, उन्हे याद मत रखिये। भूल जाया कीजिये। दूषित, कडवी, अपमान-जनक, निन्दात्मक बातो को भूलने मे ही मन का स्वास्थ्य निहित है। इसी दवाई से मैंने आपको स्वस्थ्य किया है कष्टो को भुला कर ही आप स्वस्थ्य हुए हैं। यह है इस विस्मृति देवी की कला की सार्थकता !'

'सचमुच देवी ! आपके दिव्य सूत्रो से मेरी मानसिक पीडा कम हो गयी। अब मैं अपने को स्वस्थ और सन्तुलित अनुभव कर रहा हूँ। कष्टों को भुलाने से मुझ नयी जिन्दगी मिली है।'

इतने मे बेसब्री से सब देवियाँ चिल्लायी, 'विक्रम ! हमारे मुकदमे का कोई निर्णय अभी तक नही हुआ है। आखिर हम सब मे कौन देवी सब से बड़ी है ?

'निर्णय हो गया !'

'क्या ? क्या ' क्या ?' सबने उत्सुकता से पूछा।

'मेरी राय मे सब देवियो मे विस्मृति देवी ही श्रेष्ठतम है। जो आदमी को दु:ख-दर्द से छुडाये, वही देवी सबसे उपयोगी है। पुराने दु:ख और दोषो को भुलाकर ही मनुष्य आगे उन्नतिशील हो सकता है। पीडाओ को भुलाने वाली देवी ही सबसे बड़ी है।'

'ओफ् ! यह कैसा निर्णय !' यह कहकर स्वर्ग की सब देवियाँ अन्तर्धान हो गयी।

उन्हे मालूम हुआ कि जब तक आदमी अपनी पुरानी कटु अनुभूतियो को नही भूलता, नयी उत्साहप्रद आशाओ की कलियाँ नही खिलाता, तब तक वह पूर्ण सुखी नही हो सकता। समाज और परिवार के दु:ख दर्द के कीचड मे फँसा व्यक्ति, माया मोह के बन्दीगृह मे कैद हमारी आत्मा अपनी संचित वेदनाओ भूलकर ही आगे बढ़ने की प्रेरणा दे सकती है।

यद् वदामि मधुमत् तद्वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमान् अवान्यान् हन्मि दोधत ॥

(अथर्ववेद १२।१।५८)

अर्थात् मैं सदैव मुख से मीठे वचन बोलूँ। मधुर निष्कपट व्यवहार के कारण) सभी मुझ से प्यार करें। मैं सदैव ईश्वर के दिव्य प्रकाश को ही अपने हृदय मे धारण करता चलूँ (मन में जो छिपी हुई या एकत्रित चिन्तामय ईर्ष्या, घृणा रूपी गन्दगी है, उसे निकाल फेकूँ)। जो बुरे तत्व मेरे निकट आयें, उनका उन्मूलन करूँ।

प्राण रक्षा के लिए भगवान् के विचित्र हाथ

एक्सप्रेस ट्रेन की खट-खट्....वातावरण में मर्मभेदी शोर, पटरियो से पहिये की रगड की तीखी ध्वनि—दौडती रेलगाड़ी केइञ्जिन से फक् फक्निकलता हुआ काला धुआं !

ट्रेन बड़ी तीव्र गति से लोहे की पटरियों पर दौड़ रही थी जैसे घनघोर अन्धेरे में शोर करती हुई भीड़-भाड़ भागी जा रही हो !

चारो ओर व्याप्त कोहरे को चीरती हुई यह एक्सप्रेस ट्रेन इङ्गलेण्ड के लन्दन नगर की ओर भागा जा रही है।

आज इस ट्रेन में रोजाना की अपेक्षा अत्यधिक भीड-भाड़ है। बेहद चहल-पहल और शोरगुल है। इतने मुसाफिर तो प्रायः मेलो या उत्सवों के अवसरो पर ही सफर किया करते हैं। इतना 'रश' बहुत कम दिखायी देता है।

फिर आज यह भीड़भाड क्यो ?

इस शोरगुल का क्या कारण है ?

आज इस ट्रेन से इङ्गलेण्ड की लोकप्रिय महारानी विक्टोरिया भी सफर कर रही हैं। अनेक उत्सुक व्यक्ति सम्राज्ञी करविक्टोरिया के पुण्य दर्शनो के लिए स्टेशन पर जमा थे। भीड़ क्या थी, जैसे नरमुण्डो का विशाल समुद्र हो ! असंख्य उत्सुक नेत्र इङ्गलैण्ड की सम्राज्ञी के दर्शनों की उत्कण्ठा लिए भीड़ में आगे आने का प्रयत्न कर रहे थे।

प्लेटफार्म से जब ट्रेन चला, तब अनेक दर्शक बिना टिकिट

की परवाह किए ही ट्रेन में सवार हो गए कि शायद किसी अगले स्टेशन पर सम्राज्ञी के दर्शनों का पुण्य लाभ हो जाय ! मनुष्य भावी आशा के सुनहरे पंखो पर व्योमविहार किया करता है !

जङ्गल मे चारो ओर अन्धेरा !

आसपास ट्रेन के सामने लगी सर्चलाइट के अतिरिक्त चारों ओर अन्धकार की काली चादर फैली हुई थी । कुछ न सूझता था इंजिन ड्राइवर बडा चौकन्ना था । वह रेल की पटरियों पर दृष्टि लगाये इञ्जिन चला रहा था । रफ्तार सबसे अधिक थी ।

सहसा एक अभूतपूर्व घटना घटित हुई !

इंजिन-ड्राइवर को ऐसा लगा जैसे रेल की लाइन के किनारे खड़ा एक लम्बे कद का आदमी अपनी दोनो लम्बी भुजाएँ ऊंचे किए किसी भावी खतरे की सूचना देने के इरादे से ट्रेन को फौरन रोक देने का मानो सकेत कर रहा हो—

'रुको ड्राइवर ! ट्रेन को तुरन्त यही खड़ा कर दो । तुम सबके लिये, ट्रेन के लिए, सम्राज्ञी के लिए आगे एक भयानक खतरा आ रहा है । यही ब्रेक लगा कर रोक देने से वह बच सकता है । ट्रेन को बिना देर किए रोको और इतने यात्रियो के प्राणो की-रक्षा कर पुण्य लाभ लो !'—कुछ ऐसी ध्वनि उसकी अन्तरात्मा मे अकस्मात् सुन पड़ी !

ड्राइवर का मन भिन्न-भिन्न विचारों के संघर्ष से परिपूर्ण हो उठा

यह घनघोर अन्धकार ! चारों ओर सुनसान जङ्गल ! यात्रियो की भीड से खचाखच भरी ट्रेन और फिर, इञ्ज-

लैण्ड की लोक-प्रिय सम्राज्ञी आज इसी ट्रेन से सफर कर रही हैं। क्या जङ्गल मे अचानक ट्रेन रोक देना खतरनाक न होगा ?

कोई डाकुओं का छिपा दल एकाएक आक्रमण कर सबको लूट ले ! मार काट मचा दे, तब क्या होगा ?

सम्भव है, यह कोई शरारत हो ! कोई शठ मजाक ही न कर रहा हो ? और····और कोई कुटिल राजनीतिक षड्यन्त्र रच रहा हो तो ? सम्भव है राज परिवार मे ही सम्राज्ञी का कोई विरोधी उनकी हत्या का घिनौना षड्यन्त्र कर रहा हो।

'नहीं, नहीं, यहाँ ट्रेन को रोकने के अनेक दुष्परिणाम हो सकते हैं।' ड्राइवर ने सोचा 'एक आदमी के····सो भी गैर-जिम्मेदार व्यक्ति के सकेत मात्र पर ट्रेन को नहीं रोकूँगा।'

ड्राइवर कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रहा था। उसका मन भय से शङ्कित था।

उसने सोचा····बार-बार विचार किया !

यह भी सम्भव है कि वास्तव में ही आगे ट्रेन के लिए कोई सङ्कट हो ! ट्रेन के न रुकने से कोई दुर्घटना न हो जाय।

प्रभु का नाम ले उसने मन में मानों वेद मन्त्र के अनुसार यह सोचा—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
··· बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

(यजुर्वेद १९ ९)

'हे परमेश्वर ! तू प्रकाश स्वरूप है। इस सङ्कट के समय मुझे विवेक बुद्धि (निर्णय की शक्ति) दे ! तू पराक्रमवान् है, मुझ वीर्य दे। तू बल हैं, मुझे मनोबल दे। तू ओजस्वी है, मुझे भी ओजस्वी बना। तू दुष्टो पर क्रोध करता है, मैं भी वैसा ही करूँ। तू सहनशील है, मुझे भी सहनशील बना।'

सच है—जो विश्वास करते हैं, परमात्मा उन्हे सद्बुद्धि देते है—

त्वामग्ने पुष्करा वध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य बाघत. ॥

(सामवेद १।१।६)

अर्थात् परमात्मा ज्ञानियो के हृदय में प्रकाश रूप और मस्तिष्क मे विचार रूप मे प्रकट होता है।

यही बात यहाँ हुई !

भगवान् का सकेत मान उसकी अन्तरात्मा मे एकाएक ट्रेन को वही खड़ा कर देने का इच्छा तीव्र हो उठी। उसे लगा कि सचमुच ही आगे ट्रेन के लिये कोई खतरा है। या तो कही पटरियो मे कोई खराबी है, षड्यन्त्र है या पुल इत्यादि टूट गया है। वह सोच विचार मे पड़ा रहा। ट्रेन रोके या यो ही भ्रम मान कर उस शङ्का को मन से निकाल दे ?

क्या निर्णय ठीक रहेगा ?

अन्तत: जन-कल्याण की भावना से भर कर ड्राइवर ने खतरा मोल ले लिया। उसने जल्दी-जल्दी ब्रेक लगाये।

कुछ दूर तक तो एक्सप्रेस ट्रेन घिसटती-घिसटती आगे खिसकती गयी, पर काफी मेहनत के बाद कोई सौ गज आगे

चलकर गाड़ी एकाएक 'डेडस्टाप' हो गयी। (एक दम रुक गयी।)

रेल के यात्रियो को झटके लगे। सब चकित हो उठे। आखिर, घनघोर अन्धकार में, जङ्गल के सुनसान वातावरण में तेज रफ्तार पर दौड़ती हुई ट्रेन एकाएक क्यों रुक गयी? क्या कोई दुर्घटना घटी है? ट्रेन का सिगनल डाउन नही हुआ है? या कोई छोटा-सा स्टेशन आ गया है?

यात्री खिड़कियो मे गर्दने बाहर निकाल-निकाल कर कारण जानने के लिये बाहर देखने लगे। कुछ लोग ट्रेन से उतर आये। महारानी विक्टोरिया के साथ बैठे हुए अफसर भी चकित हो बाहर झाँकने लगे।

सबने देखा इञ्जिन-ड्राइवर और गार्ड दोनों उस दैत्याकार आदमी को खोजने और ट्रेन रुकवाने की जानकारी प्राप्त करने के लिये गाडी से उतर आये थे, वे आगे जा रहे थे।

कहां गया वह लम्बा आदमी, जिसने ट्रेन रुकवायी थी?

उन्होने बहुत ढूंढा! बहुत आवाजें दी! पर कही कोई इन्सान नजर न आया।

अब ड्राइवर अपनी जल्दबाजी और मूर्खता पर पछता रहा था! ड्राइवर और गार्ड अपनी कारगुजारी पर लज्जित से हो रहे थे। जङ्गल में मामूली सकेत मात्र पर एक्सप्रेस ट्रेन को रोककर सचमुच आज वे बड़ी मूर्खता कर बैठे थे।

कुछ लोग आगे घूमके-घूमते वढ गये!

कुछ उस आदमी को इधर-उधर खेतो में तलाश करनें लगे!!

इतने मे कोई सौ गज आगे गयी टुकड़ी वाले जोर से चिल्लाये—

"गाडी मत चलाना""वहीं रुके रहो"' 'आगे पुलिया टूटी पडी है"'ट्रेन उसमे गिरकर नष्ट हो जायगी ' बडी भारी दुर्घटना होने जा रही थी""अभी रुको""हम सब बतलाने भागे आ रहे हैं""""।"

एक अजीब-सी स्थिति छा गयी ।

लोग बेतहाश दौडे-दौडे आये । कहने लगे, आगे एक पुलिया है । किसी ने उसे तोड-फोड डाला है । यह ट्रेन अगर न रुकती, तो आज एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई होती । उस अज्ञात आदमी ने अन्धेरे मे ऊँची बाहो से सिगनल दे ट्रेन को रुकवा कर बड़े उपकार का कार्य किया है । पता नही, उसे पुलके टूटने की बात क्यो कर मालूम हो गयी और उसने रेलवे लाइन के समीप खड़ रह कर कैसे इस ट्रेन को ऐन मौके पर बचा दिया। ऐसे उपकारी व्यक्ति का जितना इनाम दिया जाय, थोडा है । उसकी जितना प्रशंमा की जाय वही कम है ।

यह खबर महारानी विक्टोरिया के पास पहुँची । उन्होंने इस प्राणदाता की प्रतिष्ठा करने के लिये एक बार फिर खोज करने का आदेश दिया । नये सिरे से उस उपकारी आदमी को फिर ढूँढा गया । राज्य की पुलिस ने रेल की लाइन के आसपास के खेतो, इलाकों और गावो मे खूब तलाश किया, सब ओर घूम-घूम कर काफी पूछताछ की, रुपये तथा इनाम के बडे-बडे लालच दिए, पर वह प्राण बचाने वाला आदमी पुलिस को कही न मिला ।

सभी उस गुप्त सहायक की भरपूर प्रशसा कर रहे थे । लोग कह रहे थे 'अपने लिए ही जीवित रहना, अपनी ही समस्याओं की चिन्ता करना, अपनी ही प्रसन्नता ढूँढना उन लोगो का काम है, जिनके लिये मनुष्यता का कोई मूल्य नही । दूसरो का

भला और समूहगत समस्याओं का ध्यान करने वाला मनुष्य ही सच्चा मनुष्य है। सहयोग के आधार पर ही मानव-जाति ने इतनी प्रगति की है। उसके भविष्य का अन्धकार-ग्रस्त या प्रकाश मान होना इसी बात पर निर्भर है कि परस्पर स्नेह, सहयोग उदारता और सेवा की भावनाएं मानव-जीवन में से कितनी घटती या बढ़ती जाती हैं।

वह लाकसेवी व्यक्ति चर्चा का विषय बना रहा है। उसके जन कल्याथ के कार्य को बड़ा सराहा गया।

पुल की मरम्मत होने के बाद वह रेलगाड़ी कई दिनों बाद लन्दन पहुँची।

रहस्य की खोजबीन अभी तक जारी थी। सब को मानो नया जन्म मिला था। सभी यात्रियों की इच्छा थी कि उस जान बचाने वाले आदमी को परोपकार के लिये सार्वजनिक रूप से पुरस्कृत किया जाय। सब उसे कुछ भेंट दे।

रेलवे याड में गाड़ी के आने पर नियमानुसार जब उस ट्रेन के इञ्जिन का जाच-पड़ताल होने लगी, तब एकाएक उस दिन के रहस्य का कारण मालूम हुआ।

वह क्या था ?

परमात्मा की लीला विचित्र है। उनकी सहायता के रूप असंख्य हैं।

कदाचन शरीरसि नेन्द्र संश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नुते दानं देवस्य प्रच्यते॥

(सामवेद ३००)

(अर्थात् ईश्वर का न्याय विचित्र है) वह किसी के कम को निष्फल नहीं रखता, न किसी निरपराधी को दण्ड देता है।

फिर ताँगे वाले ने पास पडे एक पत्थर को उस शिशु पर पटकने के घातक इरादे से उठाने की कोशिश की।

लेकिन तभी एक अद्भुत घटना घटी ।

जब मनुष्य यह समझने लगता है कि इस जगत् मे कोई चैतन्य न्यायकारी शक्ति नही है और इसकी प्रक्रिया स्वयं ही सयोगवश अग्रसर होती है, तो उसके गुप्त मन से नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक कर्त्तव्य सम्बन्धी सभी नियम और उपदेश गायब होने लगते हैं और वह किसी भी तरह खाओ, पीओ और मौज उडाओ के आत्मघाती सिद्धान्त पर चलने लगता है। वह ताँगे वाला ऐसा ही दुष्ट व्यक्ति था जिसे ईश्वर दैवी दण्ड का भय न था ।

पर ईश्वर हजारो नेत्रो से देखता है और पापी दुष्ट तथा अपराधियो को तरह-तरह से दण्डित करता रहता है । वह पापी को सजा दिए बिना नही छोडता ।

जैसे ही मुसलमान ताँगे वाले ने शिशु की हत्या के नापाक इरादे से पत्थर उठाया कि पत्थर के नीचे एक काला नाग निकल आया । ओह ! कैसी तेज थी उसकी गति । जल्दी-जल्दी वह नाग ताँगे वाले पर चढ़ कर लिपट गया । तागे वाले को स्वप्न मे भी आशा न थी, साँप इतनी जल्दी उसे जकड लेगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई रस्सी मे लपेट कर उसे लगा-तार कसता जा रहा हो । वह उसे छुडाने की कोशिश करता पर वह ताँगे वाले को कसता ही जाता ।

थोडी देर मे काले नाग ने तागे वाले के दोनो हाथ जकड़ जकड़ लिये । वह भयभीत था । सिट्टी-पिट्टी भूल कर 'बचाओ ! बचाओ !!' चिल्ला रहा था । उसने भरसक मुक्त होने की

कोशिश की, पर काले नाग ने उसे नही छोड़ा। उल्टे मुँह के सामने फन खड़ा कर उसे सुखाता रहा।

तांगे वाले की वही हालत थी जैसे पुलिस वाले किसी अपराधी को हथकड़ियो बेड़ियो से कस कर हवालात मे बन्द कर देते है।

....

(२)

एक खत्री परिवार की स्त्री कहीं से रात के एक बजे पञ्जा साहेब (पंजाब मे सिखों के तीर्थ स्थान) स्टेशन पर उतरी थी। स्टेशन पर सिर्फ एक ही तागा था। घर जाने की आतुरता थी। दूरदर्शिता की कमी होने के कारण वह स्त्री जल्दीसे प्लेटफार्म के बाहर आकर तांगे वाले को तय करके बैठ गयी।

'तुम और सवारियो को भी बैठा लो, ताँगे मे !'

और कोई बस्ती को चलने वाला है ! आइये, मेहरबान, ताँगे मे बस्ती ले चलता हूँ !' ताँगे वाला चिल्लाया।

रात्रि के अन्धेरे में वह चिल्लाता रहा, पर रात्त को बस्ती चलने वाला कोई मुसाफिर न मिला।

अब क्या किया जाय ? यह सामने गुत्थी थी।

'कोई और सवारी तो साथ होनी ही चाहिये। मैं अकेली नही चलूँगी। मेरे साथ बच्चा भी है। रात का समय और सुनसान रास्ता।' उस स्त्री ने आशका प्रकट की।

नही तुम, डरो मत ! मैं तुम्हे ही ले चलता हूँ। तुम जो मजदूरी दे दोगी वही काफी है। अभी तेजी से घोडे को हाँक कर बात की बात मे बस्ती पहुँचा देता हूँ। मुझे वहाँ जाना

ही है। खाली जाऊँगा। यही अच्छा है तुम्हे अकेली को ही ले चलूं।' तागे वाले ने स्पष्टीकरण किया।

ताँगे वाला उस स्त्री और बच्चे को लेकर अकेले ही बस्ती की ओर चल दिया।

स्टेशन से बस्ती लगभग दो ढाई मील की दूरी पर है।

आगे चल कर ताँगे वाले का मन बदला। उसे शरारत और कपट की सूझी और दुर्बुद्धि तथा दुष्प्रवृत्तियो ने धर दबाया।

इस सृष्टि का सञ्चालक ईश्वर हर पदार्थ और प्राणी को नियत मर्यादा मे रखता है प्रकृति का हर जीव सन्मार्ग पर चल कर दिक प्रयोजन को पूर्ण कर रहा। है एक स्वार्थी मनुष्य ही है जो दुर्बुद्धि ग्रस्त होकर कुमार्ग—गामिता बन कर अपने तथा दूसरो के लिए सङ्कट उत्पन करता है।

पथ भ्रष्टता से दचने के लिए धर्म जैसे महातन्त्र की रचना आवश्यक हुई। भारतीय ऋषि-मुनियो ने बड़ी दूरदर्शिता से धर्म का कलेवर खडा किया, जिससे उम पुण्य चेतना द्वारा मनुष्य को दुर्बुद्धि एवम् दुष्प्रवृत्तियो से बचाया जा सके।

हमारे धम की सारी मान्यताएँ, भिन्न भिन्न परम्पराये और तरह-तरह की आस्थाय केवल इसी प्रयोजन के लिय हैं कि मनुष्य अपनी निर्धारिता मर्यादाओ के भीतर रह कर जीवन-यापन करे। वह ताँगे वाला धर्म के रास्ते से हटकर बेईमानी की योजनाएँ बनाने लगा।

धर्म का पहला आधार आस्तिकता अर्थात् ईश्वर मे विश्वास है। परमात्मा सव लगह है। वह समदर्शी है। वह न्यायाशील है। वह छोटे-बड़े सभी को उसकी बुरी करनी पर दण्ड देता है—यह विचार मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियो पर अकुश रखने मे

सहायक होते हैं। दुर्भाग्य से ताँगे वाले ने रात का सुनसान वातावरण और अकेली स्त्री देखकर समाज और पुलिस की आँखो मे धूल झोंकने की युक्ति सोची। 'यहाँ मै और यह औरत ही है। इसका काम तमाम कर दूँ और इसका सारा माल हड़प लूँ। कौन रोक सकता है मुझे? कौन इसे बचा सकता है!' बस फिर क्या था। ताँगे वाला बस्ती में जाने के मुख्य रास्ते को छोड़कर दूसरी कलकत्ता से पेशावर जाने वाली सुनसान सड़क पर ताँगा हाँकने लगा।

'अरे ताँगे वाले! तुम शायद रास्ता भूल गये हो।' स्त्री ने आपत्ति की।

'क्यो, क्या तुम्हे रास्ता मालुम है ?'

'हाँ, हाँ, यह सड़क तो बस्ती नही जाती।'

'क्या कहा, बस्ती नही जाती ? तुम्हे क्या मालुम ?'

'मुझे ठीक मालूम है। यह सड़क तो कोई और ही है। यह बस्ती नही जाती। फिर इस ओर तागा क्यो लिए चल रहे हो ?

तागे वाला कुछ क्षण के लिये मौन था।

'क्या सोच रहे हो, ताँगे वाले ?'

'बात यह है कि आगे सड़क बड़ी खराब है। बारिश की वजह मे टूट फूट गई है। जगह-जगह गड्ढे हो गये है। बड़े झटके लगते है। अन्धेरे मे ताँगे के उलट जाने का खतरा है। इसलिए दूसरे रास्ते से चल रहा हूँ।'

'इस अन्धेरे में सुनसान सड़क पर मुझे डर लगता है।'

'अरे तुम भी कैसी डरपोक हो। तनिक से अन्धेरे से डर गई! सुबह होने में अधिक देर नही है। इधर से मुसाफिरो का

आवागमन शुरू हो जायगा। डरने की कोई बात नही है। मैं तुम्हारी रक्षा के लिए साथ हूँ। कोई खतरा नही है।'

'यह तो तुम जानो ! जब तुम रक्षा करने का बचन दे रहे हो, तो मुझ दिलासा बध गया है।

'शरीफ आदमी अपने बचनो के पक्के होते है। अपने ईमान पर कायम रहना, तागे वाले।'

इस प्रकार बातचीत करते करते ताँगा डेढ मील आगे निकल गया। स्त्री पूर्ण रूप से आश्वस्त थी। उसे तागे वाले की सज्जनता में विश्वास जम गया था। वह प्यार से अपने बच्चे को गाद मे चिपकाये थी। सर्दी सुनसानपन से उसकी रक्षा कर रही थी।

यकायक तागा रुक गया।

'यह क्या हुआ ? क्या सड़क आगे टूटो हुई है ?'

'ऐ औरत, नीचे उतर !' तागे वाले ने कर्कश स्वर मे चीख-कर कहा। उसके मन में सोया हुआ राक्षस यकायक जाग उठा था।

'हे परमेश्वर ! यह क्या माजरा है ?'

'माजरा क्या है ? अपनी जान की खैर मना !'

'यह तुम क्या कह रहे हो, ताँगे वाले भाई !'

'मैं भाई वाई कुछ नही। नीचे उतर वर्ना दो लात जमा-ऊँगा !'

डरी हुई औरत बच्चे को गोद में लिए तांगे से नीचे उतर कर सहमी-सी एक किनारे खडी हो गई। उसकी हालत वही थी जो शेर के पजे मे फंसी किसी निर्दोष हरिणी की होती है।

अपने गले का हार, हाथो की चूड़ियाँ और सारे जेवर

उतार कर मेरे हवाले करा। वर्ना काम तमाम कर डालूंगा तेरा, समझा। जल्दी कर।'

'अरे तो तुम चोर डकैत निकले ! यो मुझे अकेली समझकर अत्याचार करने पर उतारू हो गये तुम्हारे शराफत के वायदे कहां गये ? तुमने तो मुझे रक्षा का वचन दिया था न ? तुम तो एक भले आदमी थे न ?

रक्षा वक्षा कुछ नही जेवर उतार दे, वर्ना हत्या कर दूंगा। यहां सुनसान जगल और अन्धेरी रात मे कौन देखने वाला है ? गुस्से से मुसलमान तागे वाला डाटकर बोला।

तुम्हारे वे सब वायदे..........।'

फिजूल का वकवास बन्द कर औरत ! हार उतार दे। यहां तेरी कोई मदद नही कर सकता। अपनी जान का खैर मना... देर करेगी तो बच्चे को तेरे सामने जमीन पर दे मारूंगा....।'

विवश होकर बेचारी स्त्री ने उसे अपने सोने का हार उतार कर दे दिया।

फिर चूड़ियां उतार कर गिना दी। कानो के बुन्दे दे डाले।

'कुछ नगदी है तेरे पास ?'

अब वह स्त्री इतनी डरी थी कि उसने तुरन्त अपना पर्स निकाल उस दुष्ट को दे दिया।' सारी नगदी देदी है। अब मुझे छोड़ दो।'

'कुछ और छिपाया जरूर होगा' वह कहने लगा, 'यो नहीं मानेगी। कुछ और तरकीब करनी पड़ेगी।'

तागे वाला उस स्त्री की गोद से बच्चा छीनने लगा।

शिशु के इस तरह छीने जाने पर मां ने कातर स्वर में पूछा 'तुम भला इस गरीब शिशु को क्यों छीन रहे हो ?'

'मुझे जेवर चाहिए। तुम्हारा सब धन चाहिए!'

'वह तो मैंने तुम्हे सब दे दिया है।'

'अव भी तुम्हारे पास बहुत कुछ छिपा होगा।'

'नही! नही! नही!! अब मेरे पास कुछ नहीं है। रहम करो। मुझे छोड़ दो।'

स्त्री ने बहुत अनुनय विनय की पर राक्षस न माना।

सब कुछ ले लेने के बाद भी उस दुष्ट तांगे वाले ने स्त्री से उसके प्यारे पुत्र को छीन लिया। बच्चा डरकर चिल्लाने लगा। स्त्री भी फूट-फूटकर उसे छोड देने की प्रार्थना करती रही। उसके नेत्रो से अश्रुधारा बह रही थी। वह बार बार कह रहा था, 'इस बच्चे को अभी खत्म किए देता हूँ। तब तू छिपे हुए माल को निकालेगी। याद रख तेरी इज्जत मेरे हाथो मे है।'

उस दुष्ट ने बच्चे को निर्दयता से जमीन पर पटक दिया। वह और भी तेज स्वर में रोने लगा। यही नही, उस हृदयहीन राक्षस ने शिशु के एक लात भी मारी।

शिशु यह आघात न सह सका। चीखकर बेहोश हो गया। 'ऐसे चुप न होगा। अभी इसे हमेशा के लिए चुप किये देता हूँ। साला चुप होता ही नही। नाहक परेशान कर रहा है।'

फिर तागे वाले ने शिशु की हत्या के इरादे से एक बडे पत्थर को उठाने की कोशिश की। यह सडक से थोडा हटकर एक झाड़ी के किनारे पड़ा था।

सर्वव्यापी ईश्वर की दृष्टि मे हमारा गुप्त या प्रकट कोई आचरण या छिपा हुआ भाव छिप नही सकता। पुलिस की आंखो में हम धूल झोक सकते हैं पर घट-घट वासी परमेश्वर से तो कुछ भी नही छिपाया जा सकता।

परमेश्वर के हजारों नेत्र है और वह दिन रात हमारे अच्छे बुरे कार्यो को देखता है ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्ष' सहस्रपात् ।
स भूमि ओम् सवत् स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ् गुलम् गुलम् ॥
—यजुर्वेद ३१।१

अर्थात् याद रखिए, जो परमात्मा असख्य सिर आँख और पाँव वाला है जो पाच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त है, उस नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्त स्वभाव परमात्मा की ही हम उपासना करें । इसी में हमे धर्म अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होगी ।

वेनस्तत्पश्यन्निहित गुहा सद्यत्र विश्वभवत्येकनीऽम् ।
तस्मिन्तिद ओम् स च विचैति सर्वं सओत. प्रोतश्चविभू' प्रजासु ॥
—यजुर्वेद ३२।८

अर्थात् जो विद्वानो के द्वारा ज्ञान से जाना जाता है, जो समस्त संसार को धारण किए है, उत्पत्ति और प्रलय का जो अधिष्ठाता है. वह परमात्मा सवत्र विद्यमान है । हम सदैव उसी की उपासना करें ।

समदर्शी परमेश्वर न्यायकारी भी है । उसकी न्याय व्यवस्था हर किसी के लिए एक समान है । वह हर पापी और अपराधी को दण्ड देता है ।

ईश्वर को हमारा हर पाप और अपराध मालूम होता है और वह आज या कल हमारे पापों का दण्ड भी देता है । हम अदालत और पुलिस की आंखों से शायद बच सकते है,परमेश्वर से नही । वह हर पाप की सजा देता है ।

जैसे ही तांगे वाले ने पत्थर उठाया, उसके हाथों में रस्सी जैसी कोई चीज लिपट वह गई आश्चर्य में था । वह उसके

दोनो हाथो पर लिपट गया और फुंकारने लगा। तागे वाला डरकर 'हाय ! हाय !! काले नाग से बचाओ !! यह मुझे डसने वाला है !! मैं मरा........साप मुझे डस लेगा।'

तांगे वाले ने अपने आपको काले नाग से भरसक छुडाने की कोशिश की, पर सर्प ने उसे माफ न किया। हर मिनट मौत उसके सामने मुह फैलाये थी।

वह फुसकारो से तांगे वाले को डराता रहा। तांगे वाले की हालत उस अपराधी की तरह थी, जिसे पुलिस ने जकड रक्खा हो। वह छुडाने की कोशिश करता, तो नाग जोर जोर से फुफ-कारता जब शान्त रहता, तो वह फन उसके मुँह के सामने किये खडा रहता। लाचार होकर तांगे वाला चुपचाप खडा रह गया, मूर्तिवान् !

स्त्री अचम्भे मे थी कि कहाँ से उसे गुप्त दैवी सहायता मिल गई थी। आज उसकी आस्तिकता का चमत्कार प्रकट हुआ था।

जब उसने तागे वाले को जकड़ा हुआ विवश देखा, तो उसने दौडकर बच्चे को उठा लिया। दूध पिलाया, तो उसमे पुनः जागृति आई। वह कुछ चैतन्य हुआ। उसकी जान मे जान आई। वह तागे के पास जा एक किनारे बैठकर बच्चे को दूध पिलाने लगी।

धीरे धीरे प्रात कालीन सूर्य की सुनहरी रश्मयाँ क्षितिज पर बिखरने लगी। मुसाफिरो का आना भी शुरू होने लगा। लोगो ने देखा कि तागे वाले को जकडे हुए सर्प देवता अभी तक फन सीधा किये उसी प्रकार क्रोधित मुद्रा मे खड़े थे।

लोगो ने इस घटना का रहस्य उस स्त्री से पूछा तो उसने रात की यात्रा वाला सारा किस्सा ज्यों का त्यो कह सुनाया।

'अच्छा तो, ईश्वर ही नाग देवता के रूप में सहायता के लिए आये हैं। जब हमे अपराधी के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करनी चाहिए।'

भीड़ में से एक व्यक्ति ने तांगा लिया। सारा जेवर उसी स्त्री को लौटा दिया वह जल्दी जल्दी ताँगा हाककर बस्ती मे गया और उस स्त्री के परिवार वालों को बुला लाया। साथ ही पुलिस मे रिपोर्ट भी दर्ज करा दी।

तब तक घटना स्थल पर सैकड़ों आने जाने वाले एकत्रित हो चुके थे। लोग तागे वाले पर व्यंग-बाण बरसा रहे थे। उसकी पाप वृत्ति पर लानत दे रहे थे। इतने में पुलिस के सिपाही वहाँ आ पहुँचे।

थानेदार ने तांगे वाले को नाग के फंदे छुड़ाने की भरसक कोशिश की, किन्तु नाग ने उसे पास नही फटकने दिया।

'अरे, कोई देव रूप है। कोई आध्यात्मिक उपाय करो।'

'नाग देवता से प्रार्थना करो कि अब अपराधी को छोड़ दे। कानून को अपना कार्य करने दे।' एक आस्तिक भक्त ने सुझाया।

'थानेदार साहब, नाग से अपराधी को छोड़ने की प्रार्थना कीजिए अब।' थानेदार को सबका सुझाव मानना पड़ा।

उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

हे नागदेव! मैं अब इस अपराधी को दंड देने आ गया हूँ। हम सबकी गैरहाजिरी मे आपने दोषी को गिरफ्तार रखा। यह ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति थी। कुमार्गी को सजा देनी ही चाहिए। आप इस दुष्ट को छोड दीजिए। अब मैं इसे गिरफ्तार कर थाने में ले जाऊँगा और कानूनी रूप में दण्ड दिलाऊँगा यह सब समाज और पुलिस की आँखों में धूल नही झोंक

सकता। आप अब कष्ट न कीजिए। इसे बन्धन मुक्त कर दीजिये अब—।'

लोगो ने आश्चर्य से देखा कि नाग ने अपनी जकड ढीली की। देखते-देखते वह तागे वाले के शरीर से उतर गया और समीप की झाड़ी मे अदृश्य हो गया।

थानेदार ने तागे वाले के हथकडी डाल दी।

उस झाडी को बहुत खोजा, पर न तो वहा कोई बिल था, न नाग के रगने के निशान ही। ढूंढने वाले लोग आश्चर्य चकित रह गए।

अपराधी तागे वाला थर-थर कांप रहा था। उसे आज मालूम हो गया था कि ईश्वर की दृष्टि है। हमारा गुप्त या प्रकट कोई बुराई आचरण, पाप, या बेईमानी का भाव घट-घट वासी परमेश्वर से छिप नही सकता। पाप की सजा जरूर मिलती है।

ईश्वर की सुनियोजित विचित्र व्यवस्था

'तुम कहा जा रहे हो ? यो चुपचाप, अकेले-अकेले ?

राजा के पास। और तुम किधर निकल पड़े मेरी ही तरह ?'

'अरे भाई, मैं भी उसी दानी राजा के पास जा रहा हूँ। दोनो एक ही जगह।'

'खूब, तुम्हारा उद्देश्य क्या है भला ?

वही शायद तुम्हारा भी इरादा है ?'

'क्या कहा, अच्छा बताओ मन मे क्या है?'

'तुम्ही बताओ न ? छिपाते क्यो हो, यार ?'

'नही,पहले तुम अपनी गुप्त इच्छा कहो ।'

'तो मैं ही कहता हूँ । लो सुनो ।'

एक बार दो मित्र किसी दानी राजा से सहायता की याचना करने जा रहे थे । वे अपनी इच्छा एक दूसरे से छिपाते आ रहे थे ।

एक मित्र बोला—'आज कल गरीबी और बेरोजगारी में धक्के खा रहा हूँ । कोई रोजगार नही है । भूखे पेट मुझे राजा के पास जाकर आर्थिक सहायता लेने की सूझी । सुनते है यह राजा हर किसी की सहायता करता रहा है । आज सोचा चुप-चाप रोजगार या व्यापार के लिये कुछ पूँजी राजा से सहायता के रूप मे लेनी चाहिए । लेकिन मित्र, तुम तो अच्छे खाते पीते सम्पन्न आदमी हो । तुम किस उद्देश्य से दानी राजा के पास चुपचाप जा रहे हो ?

मित्र ने जिज्ञासा से अपने साथी की ओर देखा ।

'ठीक है कि मेरे पास लक्ष्मी की कृपा है पर·······।

'पर, ऐसी क्या मुसीबत आ गई ? क्या किसी ने सता रखा है तुम्हे !'

'पिछले दिनो से घर श्मशान बन गया है ।'

'क्या मतलब ?'

'पत्नी मृत्यु के गाल में समा गई '

'उफ् ! यह तो बडा बुरा हुआ । तब क्या सोचा है आगे ?'

'यही, जो सब युवक सोचते हैं। दुबारा गृहस्थी जमाने की योजना।

'समझ गया ! समझ गया ! तुम राजा से दूसरे विवाह के लिए पत्नी मागने जा रहे हो।

'हाँ, हाँ मैं कलात्मक अभिरुचि का कलाकार हूँ। जीवन मे शारीरिक सौन्दर्य को सबसे अधिक महत्व देता हूँ। मैं दानी राजा से कहूँगा, 'मुझे आप धन-दौलत या पद नही, एक सुन्दरी दे दे।'

'ठीक है तो मैं रुपया माँगने और तुम अपनी सुन्दर जीवन सङ्गनी मागने जा रहे हो।''

इस प्रकार दोनो मित्र दानी राजा से सहायता माँगने जा रहे थे।

मार्ग मे इन्हे एक ऐसे आदमी से मुलाकात हुई, जो देखने में फक्कड और मस्त तबियत का लगता था। वह अपने ही विचारो मे फूला मुस्कराता फटे हाल मे हा शहन्शाह को शान से चला जा रहा था।

'इसे भी साथ ले चलें, तो एक अच्छा तमाशा रहेगा'—एक मित्र ने सुझाया।

वाकई, आदमी तो देखने मे मस्तमौला ही है। रास्ता अच्छी तरह कटेगा। दानी राजा का नगर काफी दूर है।

'अरे भाई, बात तो सुनो ! कहाँ चले ?' उन्होंने मस्त तबियत वाले व्यक्ति को बुला लिया।

'ईश्वर की सृष्टि मे सभी तरफ सुख और समृद्धि बिखरे पडे हैं। सौन्दर्य फैला हुआ है। जिधर परमात्मा ले जाय। उधर ही चले जायेंगे। तुम दोनो कहाँ जा रहे हो ?' उसने उत्तर दिया।

'हम लोग एक दानी राजा के पास अपनी-अपनी माँग करने जा रहे हैं। तुम्हें पता नही वह सबकी इच्छा पूर्ण करता है। आश्चर्य है तुमने उसकी दानशीलता की ख्याति नही सुनी है। वह सबसे बड़ा दानी है समझे ?'

'भाई, मैं तो ईश्वर को ही सबसे बड़ा दानी मानता हूँ। वही सबको देता है। उसी का दिया हम सब खाते पीते हैं। ईश्वर की इच्छा से ही सब को अन्न, भोजन, जल, निवास, समृद्धि मिलती है। उससे बड़ा दानी कोई नही मेरी दृष्टि में।'

दोनों मित्रों ने धीरे से फुस-फुसाकर कहा, "फटे हाल भिखारी जैसे इस आदमी की बातें तो सुनो। यदि ईश्वर ही देता, तो ईश्वर की दानशीलता में विश्वास करने वाले इस आदमी को क्यों फकीरी जैसी हालत में रखता। ईश्वर ही सब को देता है, ऐसा बहुत से बातूनी लोग कहते फिरते हैं परन्तु इसका प्रमाण आज तक नही देखा।'

"भले आदमी, यहा तो वह दानीशील राजा ही ईश्वर है। हमें तो राजा से मिलने वाली सहायता पर ही भरोसा है। ईश्वर की सहायता पर भरोसा नही है। हमे तो आज तक ईश्वर ने कुछ नही दिया। 'वे बोले, 'मित्रो, ईश्वर की इच्छा तुम्हें वे घर वार बनाकर भूखों मारने की नहीं है। तुम उसके पुत्र हो। संसार में तुम व्यर्थ पैदा नही हुए हो। ईश्वर तुमसे कुछ काम लेगा, उसका उपहार भी देगा। खाने को भोजन और रहने को निवास, अच्छा साथी, सभी कुछ देगा। चिन्ता मत करो। ईश्वर तुम्हारा सबका पिता है।' वह फक्कड आदमी मधुर मुस्कान से बोल उठा।

इन विचारों को सुनकर वे दोनों मित्र हँसने लगे, "इसे भी

राजा के पास ले चले। वह इससे भी कुछ मांगने के लिए कहेगा। देखें यह आदमी क्या दान मागता है। थोडा देर चुप्पल रहेगा।" उन्होने उसे अपने साथ ले लिया।

"आप तीनो किस उद्देश्य से पधारे है ?" दानी राजा ने पूछा ?

'महाराज, आने का उ श्य आपसे क्या छिपा होगा। न जाने आपके पास हम जैसे कितने आते है।"

"क्या आर्थिक सहायता चाहिए ?"

"महाराज, यदि आप मुझे कुछ धन दे दे, तो रोटा राजी की व्यवस्था हो जाय।'

"तुम्हे व्यापार के लिये पूंजी चाहिये ?"

"महाराज की कृपा हो जाय।"

"इन्हे राजकोष से दस हजार स्वर्ण मुद्रायें दे दी जायँ।

'निहाल हो गया महाराज! आपकी दानशीलता के विषय में जो सुना था, वैसा ही पाया। आप आज के युग के सबसे बडे दानी हैं। अन्त मे इस पूंजी से व्यापार करके अपना शेष जीवन शराफत से व्यतीत कर सकूंगा।'

अब राजा दूसरे मित्र की ओर देखने लगे।

"आपको क्या चाहिये।"

"महाराज कहते सकुचाहट होती है।"

"फिर भी कुछ तो सकेत दीजिए। मकान, खेती की जमीन, वस्त्रधन, दौलत या और क्या चाहिये ?"

"महाराज, ये सब हैं, पर............जीवन श्मशान बन गया है।"

"क्या कहा, पत्नी नही है तुम्हारे ?"

"महाराज, थी तो पर वह मृत्यु के पेट मे चली गई।'

"फिर....दुबारा गृहस्थ जीवन की इच्छा है क्या ?"

"क्षमा करें। मैं अभी गृहस्थ जीवन का पूरा सुख नहीं लूट सका हूँ मुझे आप एक सुन्दरी की व्यवस्था करा दें। आजन्म ऋणी रहूँगा।"

"ठीक है। तुम जो चाहते हो वही दिया जायगा। 'मन्त्री जी, इनके लिए एक सुन्दरी की व्यस्था कराद।"

आज्ञा की देर थी। उसके लिये एक अद्वितीय सुन्दरी का प्रबन्ध हो गया।

अब राजा बस मस्त तबियत के फक्कड़ की ओर आकृष्ट होकर पूछने लगे, 'आपको दान मे क्या चाहिए ?'

वह आदमी कुछ देर चुप रहा। राजा उसे निराश न करना चाहता था। उसके द्वार से कोई भी माँगने वाला खाली हाथ न गया था। वह इच्छुक भी उसके घर से क्यों निराश जाय ? क्या कहेगा यह मन-ही-मन सोचने लगा। लेकिन यह चुप क्यों खड़ा है ? क्या कोई बहुत बडी ऊँची आशा लेकर आया है ? कुछ न दूंगा तो उस पर मेरी दान शीलता का कोई प्रभाव न पड़ेगा। इसे अवश्य कुछ देना चाहिए जिससे यह भी मेरा गुणगान करता रहे। यह सोच कर राजा ने फिर पूछा—

"आपको दान में क्या लेना है ? मुझे आपको कुछ देने में प्रसन्नता होगी। कहिए क्या सेवा करूँ ?"

"महाराज, मनुष्य की इच्छाएँ असंख्य है। एक मांग के पश्चात् दूसरी चीज माँगने को इच्छा होती है। एक आवश्यकता पूर्ति पर दस नई जटिल और कृत्रिम आवश्यकताओं का जन्म हो जाता है। मनुष्य इस मांग में ही पगला हुआ फिरता रहता है। एक चाहत के बाद दूसरी चाहत जनम लेती है। इसलिए मैंने तो मागना ही छोड दिया है। जो देगा ईश्वर मेरी

जरूरते समझकर स्वंय ही दे देगा। ईश्वर को सबकी जरूरतो का स्वय ख्याल है। वास्तव मे वही सबको देने वाला है। हाथी को मन और चीटा का कण भोजन वही देता है।"

दानशील राजा ने नाराज होकर कहा, तुम फटे हाल ही रहोगे। मेरी सहायता से सम्पन्न गृहस्थ बन सकते थे। देखा नही अभी तुम्हारे सामने एक को दस हजार स्वर्ण मुद्राये और दूसरे को सुन्दरी दी है। वे अपना गृहस्थ-जीवन सुख-शान्ति से व्यतीत कर सकेंगे। अच्छा हमारे सामने से चले जाओ। हम तुम जैसे दम्भी निर्धन फक्कड का मुँह नही देखना चाहते।"

तीनो व्यक्ति बाहर निकल आये।

एक के पास स्वर्ण मुद्राओ की भारी थैली थी। मन से व्यापार द्वारा समृद्ध बनाने के बड़े-बड़े सपने लिये वह आगे बढता जा रहा था।

दूसरा सुन्दरी की ओर तिरछी दृष्टि से देखता, मन्द-मन्द मुस्कराता रोमानी कल्पनाओ में डूबा जा रहा था।

दोनो ही प्रसन्न ! अपनी-अपनी इच्छा पूर्ति से सन्तुष्ट ! काल्पनिक स्वर्ग मे जैसे उड़े जा रहे थे।

राजा फक्कड ईश्वर भक्त की अशिष्टता से जला भुना बैठा था। उसे क्रोध के आवेश आते थे, जिसमे उसकी विवेक शक्ति पगु हो जाती थी। उसके मन मे इतना तूफान उठा कि उसने एक सिपाही को बुलाकर आज्ञा दी।

"देखो, तीन यात्री अभी-अभी हमारी राजधानी छोड कर जा रहे हैं। उनमे से एक के पास दस हजार स्वर्ण मुद्राओ की थैली है। दूसरे के पास एक सुन्दरी है। उन दोनो को छोड तीसरा आदमी खाली हाथ जा रहा है, उसका सिर काटकर

हमारे सामने पेश करो। घोड़े से तुम फौरन उन दोनों को पकड़ लोगे।"

राजाज्ञा पाते ही सशस्त्र सैनिक चल पड़ा।

उधर जिस यात्री के पास मुद्राओं का थैला था, वह उनके भार से थक गया था। उसके हाथ दर्द कर रहे थे बोझ सम्हाले न सम्हलता था। आगे का मार्ग उस भार से चला न जाता था। उसे किसी मजदूर की आवश्यकता अनुभव हुई।

"अरे मित्र, तुम खाली हाथ चल रहे हो। कुछ दूर के लिये इसे ले चलो। मेरे हाथ दर्द कर रहे है।"

फक्कड़ ईश्वर भक्त को दया आ गई। विनती पर ध्यान दे, इस थैली को हाथ में ले लिया और चलने लगा।

उसी समय घोड़ा दौड़ाते हुए सशस्त्र सिपाही ने उन्हे पकड लिया। आव देखा न ताव, जो आदमी खाली हाथ था, वह उसका सिर काट कर ले चला। सबको बड़ा आश्चर्य था कि यह क्यो हुआ? स्वर्ण मुद्राएँ लेने वाले को क्यो कत्ल कराया गया?

-जब सैनिक राजा के पास पहुँचा, तो राजा ने डाटकर कहा, "मूर्ख तूने गलत आदमी की हत्या कर डाली है। इसे नही मारना था। उस फक्कड ईश्वर भक्त का सिर लाना था जो खाली हाथ यहाँ से गया था। खैर, अब तुम दुबारा जाओ। एक आदमी एक सुन्दर स्त्री के साथ जा रहा होगा। उसे छोड़ कर जो दूसरो व्यक्ति दिखाई दे, उसका सिर काटकर ले आओ। उसी को अशिष्टता की सजा देनी है। उसने मुझसे दान लेने से इन्कार कर दिया था।"

आज्ञा सुनते ही सशस्त्र सैनिक घोडा दौडाता, हुआ, वापिस लौट गया। वे काफी दूर निकल चुके थे। सयोग से उनके समीप

पहुँचते से पूर्व सुन्दरी वाले व्यक्ति को पेशाव की हालत हुई वह तो लघुशङ्का करने बैठ गया, तब तक वह सुन्दरी फकड ईश्वर भक्त के साथ आगे चलने लगी। ठीक इसी अवसर पर सैनिक वहां पहुँचा। उसने बिना देर किये, पेशाब करने वाले व्यक्ति का सिर काट डाला और उसे ले जाकर दम्भी राजा के सामने पेश कर दिया।

वह नारी विस्फरित नेत्रो से यह हत्या का दृश्य देख रही थी। उसे आश्चर्य था यह सब क्यो हो रहा है ?

अब वह ईश्वर भक्त और वह रमणी अकेले रह गये। पुरुष के हाथ मे दस सहस्र मुद्राओ की थैली थी। उनमे बाते होने लगी—

"ईश्वर की दुनिया है। ईश्वर सब को सब कुछ देता है, परन्तु इसका प्रमाण क्या है ?" उस नारी ने पुरुष से पूछा।

"सबूत उन्हीको मिलता है, जो उसके भरोसे रहकर चिन्ता न करते हुए अपना काम नित्यवत् करते रहते हैं।" आस्तिक पुरुष ने उत्तर दिया।

"और जो चिन्ता करते हैं ?"

"उनके मन मे अपने और ईश्वर के प्रति अविश्वास का एक कुहरा सा छाया हुआ रहता है। उसे दिव्य आदेश नही मिलते। जानती हो कुहरे मे तो साक्षात् सूर्य का प्रकाश भी नही दीखता।"

"आपको कहाँ से आदेश मिला था कि दान मे राजा से कुछ भी नही माँगना चाहिए।" नारी ने जिज्ञासा पूर्वक पूछा।

"दुनियाँ परमात्मा की है। जो उसके गुप्त सन्देश को ध्यान से सुनता है, उस पर पूर्ण आस्था रख कर प्रयत्न करता है,

उसका सब कुछ काम होता है। उसी के द्वारा सब को आदेश मिलता है। देखती नही, मुझे ईश्वर ने कैसे सुन्दरी जीवन-सङ्गनी और व्यापार के लिए आर्थिक सहायता का प्रबन्ध कर दिया !"

"भला तुम कुछ भी दानी राजा से क्यों नही माँग रहे ?" नारी की जिज्ञासा अभी शान्त नही हुई थी।

"मुझे मालूम था कि ईश्वर की इच्छा मुझे बे घर बार बना कर भूखो मारने की नही है। हम उसी परम पिता के पुत्र-पुत्री है। ससार मे व्यर्थ पैदा नही हुए है। ईश्वर हम से जो काम लेना चाहेगा, स्वय लेगा . वही हमे स्वय खाना-पोना निवास आदि की व्यवस्था भी करेगा। उसे खुद सबकी चिन्ता है। वह तुम्हारा हमारा सब का स्वामी है। जिस प्रकार तुम एक पैर जमा कर पिछला पैर उठाती हो, वैसा ही परमात्मा का प्रबन्ध है। अपना कर्म करती जाओ और ईश्वरीय सहायता के लिए निश्चिन्त रहो।"

"ओफ ! आज की यह घटना तो बड़ी आश्चर्यजनक रही।" नारी अचरज मे भरी थी।

"देवि, परमात्मा को धन्यवाद दो। सदैव आने वाली मुसीबत का मुस्कराते हुए स्वागत करो और निर्भय निश्चन्त रह परमात्मा को याद रक्खो।"

"देखते-देखते दो आदमी मृत्यु के मुँह मे चले गये और आप सकुशल रहे।"

"देवि ! तुम्हारे जीवन मे यह घटना तुम्हारी आत्म-श्रद्धा बढ़ाने और परमात्मा की सत्ता की याद दिलाने के लिये बीज-रूप है। इसे बढाती रहेगी, तो आगे चलकर तुम्हें ईश्वरीय

चमत्कार के और भी विचित्र अनुभव होगे।' नारी विचारो मे डूबी हुई थी। सचमुच ईश्वर की लीला विचित्र है। यह सारा विश्व एक दिव्य प्रबन्ध से सुव्यवस्थित चल रहा है।

जब लक्ष्मी के वरदान से घोर संकट उत्पन्न हुआ

उस दिन लक्ष्मी सात्विक मनोभावो मे निग्मन थी। जन-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर सोच रही थी कि मृत्यु लोक के पीडित, शोषित और दीन-हीन व्यक्तियो की सेवा भी उसे करनी चाहिए। जिसने भी लक्ष्मी के स्वर्ग से धरती पर उतरने के समाचार सुने, वही उसके स्वागत सत्कार की तैयारी करने मे जुट गया।

सर्वत्र स्वच्छ वातावरण हो उठा। घरो को लीपपोत कर रग-बिरगे रूपो मे सजाया गया। वे निखार से खिलखिला उठे। लोगो का तो कहना ही क्या, वे हर्ष और आह्लाद से उद्वेलित चरम आनन्द की मनः स्थिति मे थे। हर एक व्यक्ति यही चाहता था कि लक्ष्मी कुछ देर के लिये उसके घर मे अवश्य ठहरे। उसकी गरीबी दूर हो।

उधर स्वर्ग मे भी शोर मच गया, 'लक्ष्मी देवी आज धरती पर उतर रही हैं, कही सदा के लिये वही न ठहर जाये ?' सभी देवों ने आशकित होकर लक्ष्मी से अनुनय किया, 'देवी ! आप धरती से शीघ्र ही वापस लौटने का कष्ट करें।

और रक्त वर्ण के परिधान एवं नाना अलकरणो से परिवेष्टित, श्वेत हाथियो पर विराजित, हाथों में लाल कमल लिये धन की देवी लक्ष्मी ने स्वर्ग से मृत्युलोक के लिए प्रस्थान किया। धरती पर उसके आगमन का दृश्य नयनाभिराम था।

मृत्युलोक के देवता भी लक्ष्मी से मिलने के लिये आतुर थे। इनमे सबसे अधिक आतुर थी, रत्न-गर्भा पृथ्वी। पृथ्वी पर निवास कर रहे सभी मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट पतग तक लक्ष्मी का नाम सुनकर उत्फुल्ल हो उठे थे।

सबसे पहले लक्ष्मी का स्वागत धरती माता ने किया, 'आपको अपने राज्य मे पाकर मैं धन्य हुई देवी'

लक्ष्मी ने मुस्कारकर धरती माता को स्वागत के धन्यवाद दिया, तथा दूर दूर तक फैले धरती के साम्राज्य में घूमकर उसका अवलोकन किया। अन्त मे पुलकित होकर धरती से बोली—

'बहुत दिनों से इच्छा थी, धरती बहिन ! आपके साम्राज्य को देखूँ। मैंने आज आपके विपुल वैभव को देखूँ। मैंने आज आपके विपूल वैभव को खब देखा है उसमें सब लोगो को घोर परिश्रम करते हुए पाया है। आपके किसान प्रातः काल से सायंकाल तक पसीना बहाकर अन्न पैदा कर रहे हैं। दिन रात की परवाह किये बिना श्रमिक गण उद्योग-धन्धो मे लगे हुए हैं। दुकानदार और व्यापारी अपने कार्यो में दत्त-चित्त हैं। मैंने जिधर भी देखा, आपके सुपुत्रो को कठोर श्रम करते हुए पाया है। वहिन ! तुम धन्य हो। श्रम ही श्रेष्ठ पूजा है। मैं आपके यशस्वी पुत्रों के श्रम से बेहद खुश हूँ।'

धरती अपने पुत्रों की यह प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो उठी,

'देवी ! मैंने अपने पुत्रों को मेहनत कर आजीविका उपार्जन करना सिखाया है ।

लक्ष्मी ने उत्तर दिया, 'ठीक ही किया आपने । मेरा सिद्धान्त भी यही है कि पसीने की पुण्य कमाई से ही मनुष्य सुखी बनता है' मैं आपके परिश्रमी पुत्रों से खुश होकर इन्हें एक वरदान देना चाहती हूँ ।' लक्ष्मी ने पुनः आनन्द विभोर होकर अपने मन की बात प्रगट की । वह समझती थी कि वरदान की बात सुनकर धरती आनन्दित होगी । किन्तु बात दूसरी ही निकली । धरती गम्भीर हो गयी थी ।

'क्यों किस चिन्ता में पड़ गयी आप ?' लक्ष्मी ने पूछा ।

धरती फिर भी चुप थी ।

'कुछ तो कहिये ? मैं आपके परिश्रमी पुत्रों को वरदान देना चाहती हूँ । दारिद्रय् और कुछ नहीं, मनुष्य के शारीरिक और मानसिक आलस्य का ही प्रतिफल है । आपके सुपुत्र सारे दिन अनवरत श्रम करते हैं । वे सुखी हैं । मैं इनको सम्पन्न भी बनाना चाहती हूँ ।' लक्ष्मी ने कहा ।

धरती बोली, लक्ष्मीजी आपने रहस्य जान लिया है । पहले ये लोग आलसी थे । इनके न कोई साधन थे, न सहायक ही । फिर मैंने इन्हें परिश्रम और पुरुषार्थ सिखाया—बस इसी गुर से ये सब अभीष्ट लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ते चले गये । इस उन्नति के पीछे मेरे पुत्रों की एक ही साधना रही है—परिश्रम ... परिश्रम ... अधिक मेहनत .... घोर परिश्रम .... उसी का यह चमत्कार देखा है आपने ।'

'इसी उन्नति से खुश होकर मैं इन्हें वरदान देना चाहती हूँ ।'

'नहीं यह कृपा न करें ।' धीरे से धरती ने टोका ।

'क्या कहा, मेरा वरदान नहीं चाहिये ?' आश्चर्य से लक्ष्मी ने शंका व्यक्त की।

आप नाराज न हो देवी ! धृष्टता के लिये क्षमा करें।'

'फिर आपको मेरा वरदान क्यों अच्छा नही लगता ?'

धरती चुप थी। उसके बोलना उचित न समझा।

'म खुश होकर इन्हे वरदान देना चाहता हूँ '

दबे स्वर में धरती बोली—

'देवी। मेरे परिश्रमीं पुत्रों को वरदान मत देना।'

'आप मेरे वरदान की अवहेलना कर रही हैं ?'

'नही तो···नही तो····यह बात नहीं····।' धरती कुछ कहते-कहते रुक गयी।

'कुछ बात जरूर है। आप कहते-कहते रुक गई ?

लक्ष्मी बार-बार पूछने लगी। 'आखिर आप अपने पुत्रो के लिये वरदान क्यो नही चाहती ?'

'आज तक हर एक मेरे वरदान के लिए लालायित रहा है। न जाने आह क्यो मेरा वरदान नहीं चाहती ? जरूर इसमें कुछ रहस्य छिपा है ?'

'रहस्य····?'

'धरती बहिन, बताना पड़ेगा आज ?

अब धरती अधिक देर चुप न रह सकी। बोली, 'देवी ! मेरे परिश्रमी पुत्रों को वरदान मत देना। नहीं तो ··नहीं तो वे भी....स्वर्ग के देवताओं की....तरह....आलसी हो जायेंगे।'

बात सुनते ही लक्ष्मी क्रुद्ध हो गई। थोडी देर में वातावरण में भी तनाव-सा आ गया।

लक्ष्मी ने दर्प-व्यंग मिश्रित स्वर में कहना शुरू किया।

'धरती; मेरी प्यारी सखी ! मेरी कृपा प्राप्त करने के लिए सभी तरसते रहते है....मेरी कृपा बिना किसी का भी जीवन आनन्दमय नही हो सका !....इतना भी नही जानती तुम ?'

धरती कुछ न बोली। वैसे ही चुप रही।

'मैं तुम्हारे पुत्रो को सुखी बनाने के लिए आई हूँ .. बोलती नही....मेरे मन्तव्य को समझता हो !'

धरती फिर भी निरुत्तर थी।

'मैं तुम्हारे पुत्रो का भला चाहती हूँ, इसलिये उन्हे वरदान दूँगी। तुम मेरा महत्व नही समझ पा रही हो (क्रुद्ध स्वर में) ... .तुम्हारा मूर्खतार्ण अनुरोध मुझे बिल्कुल पसन्द नही है....।'

धरती कुछ कहना चाहती थी।

लेकिन नाराज लक्ष्मी ने उसे सफाई पेश करने का अवसर ही नही दिया ओर 'आपके पुत्र सम्पन्न हो।' इनके धन मैं कभी कमी न आये' वरदान दे ही डाला। फिर लक्ष्मी का हाथी आगे बढ गया।

अहह ! लक्ष्मी जी का भी क्या अद्भुत वरदान था ! कितना मनोरम ! कितना शानदार !! धन सम्पदा इनके साथ बिखरती चली। धरती के लोग धनाढ्य हो उठे। वे जिधर से भी निकली उधर से ही धन सम्पदा बरसी। कंगाल, निर्धन और दरिद्री सभी मालदार हो गये। देखते-देखते लोगो के घर सोने, चाँदी तथा आभूषणो से परिपूर्ण हो उठे रुपये पैसे की विपुलता हो गई। आखिर, जिस पर लक्ष्मी की कृपा हो, वह अर्थ सकट मे कैसे रह सकता हैं।

पृथ्वी पर रहने वाले लोग अब अपनी अमीरी पर इतराने लगे। उन्हे धन का मद हो गया। वे अपने सौभाग्य का सराहना करते हुए उल्लास भरे उत्सव मनाने लगे।

आमोद प्रमोद मे भला श्रम की ओर कौन ध्यान देता ? उन्हें तो अपनी मस्ती से ही फुरसत नही थी।

वर्षा ऋतु आई। खेतों को जोतने, बोने और फसल उगाने का मौसम आ गया। पर लोग मस्ती मे डूबे हुए थे। भोग-विलास में ऐसे रत थे कि उन्होने मेहनत करने को जरूरत ही नही समझी।

खेतो मे फालतू घास आई। घरों में भरे हुए पुराने अन्न भडार खाली हो गये उद्योग बन्द हो गये। व्यापार ठप्प हो गये। भूख से व्याकुल लोग सोना चाँदी लिये इधर-उधर फिरने लगे। उनका श्रम करने का अभ्यास ही छूट चुका था।

फल यह हुआ कि पृथ्वी पर भारी अकाल पड़ गया।

सीने से सोने-चांदी की ईंटे बांधे भूखे लोग जहाँ-तवाँ तड़प-तड़प कर प्राण छोडने लगे। त्राहि-त्राहि मच गई। कही युवतियाँ मर रही थी, तो कही भोजन के अभाव में अबोध बच्चे दम तोड रहे थे। उन्हे कोई रोग न था। केवल भूख का ही रोग था।

'अब क्या करू ?' वह सोचने लगी।

आखिर, उसने बचे-कूचे पुत्रों को इकट्ठा किया। बोली, 'मेरे पार मो पुत्रों ! तुम जागो। लक्ष्मी के वरदान को भूल जाओ। आकस्मिक लाभ का वरदार अभिशाप जेसा दुर्भाग्य-जनक होता है। तुम फिर से श्रम का जीवन अपनाओ। आलस्य और विलासिता को छाड़ दो।

धरती मौन हो गयी।

जब धन को ठोकर मारी जा रही थी

भारत में शाहशाह सिकन्दर विजयी हुए। सर्वत्र उनकी वीरता और पौरुष का डंका पिट गया। विजेता सिकन्दर सत्ता के मद मे चूर थे। बहुत बडा भूभाग जीत चुके थे। बडी भारी सेना उनके पीछे थी। भारत मे थोडी देर के लिये तो उनका आतङ्क छा गया था। सैन्य बल से सभी भारतीय भयभीत थे।

डरे हुए भारत ने उनका स्वागत किया। ससार ने सिकन्दर का लोहा माना था। जिसने उनकी वीरता की बात सुनी, वही उनके पौरुष से स्तब्ध रह गया। उनको मानप्रतिष्टा करने के लिये अनेक स्थानो पर आयोजन किये गये। राजा, महाराजा धनिक, सत्ताधारी तथा जनता के अनेक नेता सार्वजनिक रूप से उनका सम्मान करने एकत्रित हुए।

जो मिलने आया, सिकन्दर महान् के लिए कुछ उपहार लेकर ही हाजिर हुआ। एक से एक बहुमूल्य उपहार भेंट किये गये। भारत सोने को चिडिया कहलाता था। अत ये उपहार एक-से-एक बढ-चढकर थे। उन्हे भय था कि साधारण होने से कही विश्व-विजयी सिकन्दर रुष्ट न हो जायँ। यदि कही क्रुद्ध हो गये, तो शायद कयामत ही आ जायगी। प्रत्येक भारतीय कीमती भेंट देकर उन्हे खुश कर लेना चाहता था और यथा सम्भव सम्मान प्रदर्शित कर रहा था।

विजेता सिकन्दर के चरित्र मे वीरता और पौरुष प्रचुरता से थे, किन्तु धन का लालच और शक्ति का अहङ्कार भी कम न था। वे निरन्तर अपने साम्राज्य का विकास कर रहे थे बहुमूल्य माणिक, मोती, हीरे, पन्ने, असख्य स्वर्णमुद्राएँ, चाँदी-

सोने ढेर उन्होंने लकत्रित कर लिये थे, किन्तु यहा ! उनकी लाभवृत्ति, उनकी धनसग्रह तथा मत्तावि तार का लालसासतुष्ट नही हुई थी। कैसा दु:ख है कि जिन लोगो के पास अधिक धन-सम्पदा है, समाज में लोग उन्हीं को आदर और प्रतिष्ठा देने लगते हैं। वे मूख यह देखना नही चाहते कि इस धनवान् ने जो प्रचुर धन सग्रह किया है, वह किन मार्गो से किया है।

यदि धन मे किसी विजेता का बडप्पन नापा जाता, तो निःसंदेह विजेना सिकन्दर संसार का मबमे अधिक शाहंशाह था। एक ओर विश्वविजयी का स्वप्न, तो दूसरो ओर धन का लोभ !

बेईमानी या शोपण से धन लूट-खसोट लेने पर उस व्यक्ति का जब नवमानना और घृणा के स्थान पर सम्मान होने लगता है, तो दूसरे लोग भ वैमे हो अनुचित तराकों से धन एकत्रित करने लगते है ! आज भ्रष्टाचार, मिथ्याचार, चोरबाजारी, तस्कर व्यापार, मिलावट और नकलोपन ग्रन को अनुचित महत्व देने के—इस चोर पूजा के हा दुष्परिणाम हैं।

सिकन्दर के आतङ्क प्रभावित से कुछ भारतोय राजा उनसे मिलने आये

नियम यह था कि उनसे मिले, वर अपनी हैसियत में अनुसार को बहुमूल्य भट भो पेश करे। जो ऊँची हैसियत के धानक मिलने आये, वे भेंटस्वरूप भाँति-भाँति के,कोमतो उपहार भी लाये

फिर क्या था, देखते-देखते मम्राट् सिकन्दर के समान तरह-तरह को मूल्यवान् चोजो का ढेर लग गया। एक-से-एक बढकर वस्तुएँ सजी हुई थी।

लोभी मम्राट् उन्हें बडे घमंड मे देख रहा था।

उस अतुल सम्पदा के भारी मूल्य का अनुमान लगाना सहज न था। और फिर भी अनेक सत्ताधारी भारतीय राजा उनके सामने अपने उपहार भेंट करने वाले थे।

सभी नयी नयी वस्तुएं भेंट कर रहे थे एक से एक बढ़कर कीमती चीजें थी। हर व्यक्ति चाहता था कि अपनी कीमती भेंट से सिकन्दर को प्रसन्न कर ले। चूंकि सिकन्दर धनलोलुप थे, इसलिए वह अधिक से अधिक मूल्यवान् वस्तु भेंट मे देना चाहता था।

इतने मे एक भारतीय राजा भेंट करने आये। उन्होने सोने के थाल मे कुछ भेंट रक्खी था। ऊपर रेशमी वस्त्र से वह ढका हुआ था।

राजा ने बड़े आदरपूर्वक वह थाल शाहशाह सिकन्दर के चरणो के समीप रख दिया और स्वय शिष्टता से वे एक ओर खड़ हो गये। बोले—हजूर, इस अकिचन की यह विनीत भेंट स्वीकार फरमायी जाय। बडी श्रद्धा से लाये है। देखकर खुश हो जायेगे। बहुत लाजवाब चीज है।'

'क्या है इसमे ? इसका रेशमी वस्त्र हटाओ।' सिकन्दर ने उत्सुकता दिखाते हुए कहा।

नौकर ने थाल पर से वस्त्र हटाया। अजीब उपहार था वह !

'अरे, ये तो पके हुए फल हैं। पर ये सब सुनहरे क्यो है ? आगे करो, देखें कैसे हैं ? अजीब फल है। बड़े लुभावने नजर आते हैं।'

थाल आगे बढाया गया। सिकन्दर ने एक फल उठाया।

'आह ! यह तो सोन बना हुआ है। आहा कितना सुन्दर है वाकई कमाल हैं कमाल ! भारतीय शिल्पकार ने इन्हे बनाने मे कमाल ही कर दिया है। दूर से कोई पहचान ही नही पाता

कि असली हैं या किसी धातु के ? भारत में सुनारो को दर-असल कमाल हासिल है। उनकी इस बेहतरीन कारीगरी पर हम बेहद खुश हैं। खूब रही यह आपकी भेंट इन्हें हम यूनान ले जायेंगे और भारत की कारीगरी सबको दिखायेंगे।'

'शाहशाह को ये फल पसंद आये, यह जानकर हमें बड़ा संतोष हुआ ! ये असली साने के बने हुए हैं। बाहर से जितने खूबसूरत हैं, उतने ही मँहगे भी है। इनका मूल्य कई लाख रुपये हैं। सौन्दर्य और भारी मूल्य—ये दोनों विशेषताएं मौजूद हैं।'

'लेकिन एक बात समझ में ही न आयी !'

'वह क्या हैं ? हम उसे स्पष्ट करने को कोशिश करेंगे।' शिष्टतापूर्वक राजा बोले—

'यह बताइये कि इन्हे सोने का क्या बनवाया गया है ? यह और किसी धातु के, मिटटी, कागज लकड़ी अन्य किसी चीज के भी बने हुए हो सकते थे ? यह कारीगरी शायद तब और मोहक हो सकती थी।' सिकन्दर ने जिज्ञासा प्रकट की—

'हजूर आपको केवल एक ही धातु पसंद है। यह वह धातु है जो सबसे अधिक कीमती है। आपकी रुचि देखकर ही सोना चुन गया है....उम्मीद है कि हम आपको गलत नहीं समझे हैं।' राजा ने स्पष्टीकरण किया।

सिकन्दर इस व्यंग्य से कुछ चिढ़ गया। उसकी लालची वृत्ति पर कटुर प्रहार किया गया था। मन ही मन उसने अपनी मोह और लोभ वृत्ति पर लज्जा का अनुभव किया।

बात के टालने के इरादे से वह बोला—

'इस समय तो सोने के न होकर अगर ये सब फल सचमुच के फल ही होते, तो मैं कहीं ज्यादा पसन्द करता। भूख लगी

हुई है और ऐसा खाया नही जाता। हिन्दुस्तान के फलो को चखने की बडी इच्छा होती है। आपके देश मे रंग-बिरगे, बड़े लाजवाब मधुर फल मिलते हैं। खास तौर पर आमो को देख कर तो मुँह मे पानी भर आता है। बडे मीठे होते हैं, इस देश के ये फल !'

'जी हाँ, यह देश उपजाऊ खेतो और कलकल निनादिनी सरिताओ का देश है। प्रकृति ने सबसे अच्छी चीजे इसे दी हैं। फल, शाक और तरकारियाँ उसी की देन हैं। यहाँ दूध की नदियां बहती हैं।'

इतने मे बाहर कुछ व्यक्तियो के झगड़ने की आवाज आयी। सिकन्दर—'ये बाहर कौन लोग झगड रहे है। इन्हे हमारे सामने हाजिर करो।'

नौकर बाहर गये।

दो व्यक्ति झगड रहे थे। उनके पास अशर्फियों से भरा हुआ एक कलश था। उसी के स्वामित्व पर दोनो में झगडा चल रहा था।

'तुम क्यो झगड़ रहे हो ?' नौकर ने पूछा।

'हम इस अशर्फियो के कलश पर झगड रहे हैं।'

नौकर बोले—'धन पर झगड़ा हमेशा चलता ही रहता है। हम समझ गये। तुम्हारे समझाने की जरूरत नही है। तुम दोनो ही इस धन को लेना चाहते होगे। यह प्रश्न सिकन्दर महान् ही तय कर सकते हैं।'

नौकर ने वह धन का कलश उससे छीन लिया।

उन्हे पकडकर हुक्म दिया—'तुम दोनो हमारे पीछे-पीछे चले आओ। तुम्हे सम्राट् सिकन्दर के सामने पेश किया जायगा। वे ही तुम्हारे मुकदमे का फैसला करेंगे। यहाँ बाहर खड़े-खड़े

'हम तो स्वयं ही अपने मामले का निपटारा कराने सम्राट् सिकन्दर के सास आये हैं।' वे बोले।

दोनो झगड़ने वाले भारतीय नौकर के पीछे-पीछे चलकर सिकन्दर महान् के सामने हाजिर हुए थे।

नौकर ने मुहरो का कलश सम्राट् के समक्ष रख दिया और बड़ी शिष्टता पूर्वक निवेदन किया—'हजूर, इन दोनों में इस अशर्फियो के कलश को लेकर झगड़ा हो रहा था। मैं दोनों को पकड़ लाया हूँ। अब आप इनका फैसला कीजिये।'

'तुम क्यों झगड़ रहे हो?' सिकन्दर ने एक से पूछा।

'हुजूर, मेरे खेत मे से यह अशर्फियों का कलश निकला है।

'ठीक है। फिर इन अशर्फियों पर तुम्हारा ही हक बनता है। तुम यह ले लो। झगड़े की क्या बात है? जिसके खेत में धन निकला, उसी का वह है।'

'हजूर, यह खेत मैंने इनसे (दूसरे व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए) खरीदा था।'

'कोई हर्ज नही। तुमने खेत खरीद लिया। तुम उसके मालिक हो गये।'

'हुगूर, मैं इनसे कहता हूँ कि मैंन तो केवल खेत ही खरीदा था। उसके अन्दर गड़े हुए धन पर मेरा अधिकार नहा बनता। इसलिये आप इस अशफियो के कलश को ले लीजिये, क्योकि आपका ही है। ये उसे स्वीकार नही करते।'

सिकन्दर ने दूसरे आदमी से कहा—'आप क्यो इस धन को कबूल नहीं करते? आता हुआ धन है। ले लीजिये। ये अपनी मर्जी से दे रहे है, तो लेने मे क्या हर्ज है?'

वह कहने लगा—'श्रीमान्, जब मैंने खेत इन्हें बेच दिया और उसकी पूरी रकम वसूल कर ली, तो उसमे पैदा होने या पायी जाने वाली प्रत्येक चीज ही इनकी हो गयी। यह गड़ा धन

भी इन्ही का है। उस पर इन्ही का नैतिक हक बनता है। यह धन इनसे छीनना मेरे लिये पाप है। बेईमानी से कमाया धन कभी किसी के पास नही ठहरता।'

सिकन्दर ने फिर पहले व्यक्ति की ओर संकेत किया,'आपको कुछ और सफाई पेश करनी है ? आप क्यो धन नही स्वीकार करते ?'

'हजूर ! मैं खेत मे फसल पैदा कर लेता हूँ ? सालभर मेहनत करता हूँ। पाँचो अंगुलियो के श्रम से पैदा हुआ धन ही मेरे हक की कमाई है। उसका मे सहर्ष उपभोग करता हूँ, वह मुझे फलता है, ईमानदारी से कमाया ही धन ठहरता है। जिस धन के लिए मैंने कोई मेहनत नही की है, जो न्यायोपार्जित नही है, जो इनकी जमीन मे पहले से गडा है, वह तो मेरे लिये चोरी का धन है. उसे लेना पाप है। उसे मैं लूंगा, तो ईश्वर के न्याय के अनुसार स्वय अपनी पुण्य की कमाई भी खो बैठूंगा। बेईमानी की, बिना हक की सम्पत्ति पापपूर्ण है। मैं उस धन को लेकर दुर्गुणी नही बनना चाहता। पापी को विपुल सम्पदा भी स्वल्पकाल मे नष्ट हो जाती है। मुझे मुफ्त का माल नही चाहिये। मैं क्यो पाप का भागी बनूं ?'

'ओह ! अजीब उलझन है। अशर्फियो से भरा यह कलश दोनो मे से कोई भी नही लेना चाहता।' सिकन्दर ने निःश्वास भरते हुए कहा, 'इसके पहले कि हम अपना फैसला दे, आपको एक बार फिर अपना पक्ष स्पष्ट करने की इजाजत दी जाती है।'

'हजूर, मैं तो अपने पक्ष को पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ। पराया धन — पाप की कमाई मैं कभी न लूंगा।' पहले ने कहा।

दूसरा कहने लगा, 'सरकार, पसीने की पुण्य कमाई से ही मनुष्य मे बरकत आती है। ईमानदारी से अर्जित धन ही ठहरता है। यह धन यदि मैं स्वीकार भी कर लूँ तो आप की तरह क्षण भर मे किसी न किसी रूप मे मेरे हाथ से निकल जायगा। धन उन्ही के पास ठहरता है जो सद्गुणी हैं।' उत्तर सुनकर सिकन्दर अजीब हैरानी मे पड़ गया! वह सोचने लगा—

एक बार फिर उसने उन्हे जांचा।

पहले कहा 'इतनी बडी रकम को ठोकर मार रहे हो अब भी मजूर कर लो, अन्यथा बाद में पछताओगे।'

'जी, मैं मुफ्त के माल से सख्त नफरत करता हूँ। मुझे ये पैसे नही लेने है।'

दूसरे से भी उसी सवाल को दोहराया।

उसने उत्तर दिया, 'जिस पैसे को मैंने कमाया नही है, जो पराया है वह मुझ किसी हालत मे स्वीकार नही है।'

'अच्छा, एक बात वताइये?'

(पहले व्यक्ति से) तुम्हारे कोई विवाह योग्य सतान है?'

'मेरा पुत्र पच्चीस वष का हो चुका है। अभी विवाह के लिये प्रयत्न कर रहा हूँ।'

(दूसरे से), तुम्हारे कोई विवाह के योग्य सतान है?'

'जी, मेरी पुत्री सोलह वर्ष की हो चुकी है। योग्य वर की खोज-बीन हो रही है।'

'ठीक है! काम बन गया! देखो, तुम दोनो ही नैतिक दृष्टि से एक से एक बढकर सज्जन हो। तुम्हारा जीवन आदर्श है। यदि तुम परस्पर सम्बन्धी बन जाओ, पुत्र पुत्री का रिश्ता तय कर लो, तो कितना अच्छा रहे! दोनो पक्ष सज्जन मिल जायँ, तो उनकी सतान भी बडी उत्तम होगी। मेरा दोनों पक्षों से आग्रह है कि यह रिश्ता स्वीकार कर लो।'

दोनों ने यह सुझाव सुना। उस पर विचार किया, दोनो को लगा कि सुझाव तो अच्छा है।

शुभ कार्य मे ईश्वर सहायक और प्रेरक होता है। ईश्वर के हाथ सदा पवित्रता में हमे बढाते रहते है।

प्रत्येक मनुष्य मे अनेक दैवी शक्तियाँ गुप्त रूप से विराजमान हैं, परन्तु जिनमें उन शक्तियो का विकास हो चुका है ऐसे सत्पुरुषो से जब किसी का मानस-सम्बन्ध होता है तब उसमें भी आध्यात्मिक शक्तियाँ जाग उठती हैं।

यदि स्वार्थ और लोभ के अपवित्र विचारो का लोप हो जाय, तो मनुष्य स्वय यह अनुभव करता है कि वह एक दिव्य आत्मा है और प्रेममय भावनाओ से परिपूर्ण है।

'ठीक है यह रिश्ता हमे मजूर है।' वे बोले।

सिकन्दर ने प्रसन्न होकर कहा, बस यह अशर्फियो का कलश हम नये-वर-वधू को उपहार स्वरूप देते हैं। बच्चे इस धन से अपना नया कारोबार शुरू कर सकते हैं।'

यह खूब न्याय रहा! मानो यह ईश्वर का ही न्याय हो!

वे बोले, 'अब यह धन एक सम्राट् की ओर से वर-वधू के लिए मगल उपहार है। सम्राट् की ओर से मिला हुआ धन पुण्य का धन है। बच्चो को आगे बढाने के लिये एक प्रकार का आर्थिक सहायता है। अतः हम दोनो इस उपहार को मजूर करते।'

दोनो प्रसन्न होकर चले गये।

सिकन्दर को धन विषयक एक बड़ी शिक्षा मिली। वह सोचने लगा, 'धन तो ऊँचे उद्देश्य के लिये एक साधन मात्र हैं, साध्य नही। मैं गलती पर था। धन व्यक्ति का नही, प्राणिमात्र का है। उस पर कब्जा करने की कोशिश मेरी मूर्खता ही थी। उसका सबकी उन्नति तथा सुख के लिये सदुपयोग ही होना चाहिये।'

॥ समाप्त ॥

अ. भा. ओंकार परिवार की स्थापना

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम हैं। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र राज, बीजमंत्र और मन्त्रो का सेतु आदि उपाधियो से विभूषित किया जाता है। इसे श्रेष्ठतम् महानतम् और पवित्रतम् मन्त्र की सज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व मे इसकी तुलना का कोई मन्त्र नही है। ॐ सभी मन्त्रो को अपनी शक्ति से भावित करता है। सभी मन्त्रो की शक्ति ओकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता है। भौतिक व आत्मिक उत्थान के लिए कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नही हैं।

सभी ऋषिमुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते रहे है। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रो की तरह व्यापक प्रचार नही है। इस कमी का अनुभव करते हुए अ. भा. ओकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहा इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करे। शाखा स्थापना का सारा साहित्य नि शुल्क रूप से प्रधान कार्यालय, बरेली से मगवा ले, आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओकारोपासना आरम्भ करके ४ अन्य मित्रो व सम्बन्धियो को प्रेरित करें और सभी सकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दे। इस वर्ष २७००० साधको द्वारा ९०० करोड मन्त्रो के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है ओकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के इस श्रेष्ठतम् आध्यात्मिक महायज्ञ मे सम्मिलित होकर महान पुण्य के भागी बनेगे।

ओकार रहस्य, ओकार दैनिक विधि, ओकार चालीसा, ओकार कीर्तन और ओकार भजनावली नामक १५ पैसे मूल्य वाली सस्ती पुस्तिकाओ को अधिक से अधिक सख्या मे वितरित करे।

विनीत :—

संस्कृति संस्थान **चमनलाल गौतम**

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००३ (उ प्र)

एक मौन व्यक्तित्व का मौन समर्पण

डा. चमन लाल गौतम-एक व्यक्ति का नही वरन् ऐसे विशाल धार्मिक सस्थान का नाम है जो सतत् २४ वर्षों से ऋषि प्रणीत आर्ष साहित्य के शोध, प्रकाशन और व्यापक साहित्य प्रचार का कार्य देश विदेश में करता रहा है। यह उनकी तप साधना का ही परिणाम है कि किसी भी आर्थिक सहयोग के बिना वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतिया, पुराण व मन्त्र-तन्त्र आदि साधनात्मक साहित्य की ३०० से अधिक पुस्तको को प्रकाशित करके घर घर मे पहुचाने की पवित्रतम साधना कर रहे हैं। मन्त्र-तन्त्र, योग, वेदान्त व अन्य धार्मिक विषयो पर १५० खोज पूर्ण ग्रन्थो का लेखन, सम्पादन एक ऐसा अविस्मरणीय व असाधारण कार्य है जिस पर उनके अथक श्रम, गम्भीर अध्ययन, तप, प्रतिभा और मौलिक सूझ बूझ की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। स्वस्थ साहित्य की रचना और प्रचार का उनकी जीवन योजना का यह पहला चरण पूरा हुआ।

पिछले २४ वर्षों से लगातार चल रही आध्यात्मिक साधना के महापुरश्चरण का दूसरा चरण भी समाप्त हो रहा है। तीसरे चरण-आध्यात्मिक साधनाओ और अनुभुतियो के विश्वव्यापी विस्तार का शुभारम्भ अ. भा. ओकार परिवार की स्थापना के साथ बसन्तपञ्चमी की परम पवित्र बेला के साथ हो गया है। अतः उनका शेष जीवन तीसरे चरण की सफलता, ओकार परिवार की शाखाओ के व्यापक विस्तार के माध्यम से करोडो व्यक्तियो को ओकार साधना मे प्रविष्ट करके उच्च आध्यात्मिक भूमिका मे प्रशस्त करना, ओकार अथवा उच्च आध्यात्मिक साहित्य की रचना व प्रचार-प्रसार को समर्पित हैं।

इस आध्यात्मिक महायज्ञ मे सभी धार्मिक जन अपनी एक एक अंगुली लगा देगे तो यह ईश्वर प्रेरित महा पुरश्चरण निश्चित रूप से पूर्ण होगा।

स्वामी सत्य भक्त